Printed & Puvlished by Ramswarup Sharma
at the Sanatan Dharm Press Moradabad
20-4-1923

श्रीः

महाभारत-आश्रमवासिकपर्वकी विषयसूची

महाभारत–मौसलपर्वकी विषयसूची

महाभारत–महाप्रस्थानिकपर्वकी विषयसूची

महाभारत–स्वर्गारोहणपर्वकी विषयसूची

श्रीहरिः ।



महाभारत



आश्रमवासिक पर्व

आश्रमवास पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच । प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा मे पितामहाः । कथमासन्महाराज्ञि धृतराष्ट्रे महात्मनि ? स तु राजा हतामात्यो हतपुत्रो निराश्रयः । कथमासीद्धतैश्वर्यो गान्धारी च यशस्विनी ॥ २ ॥ कियन्तं चैव कालन्ते मम पूर्वपितामहाः । स्थिता राज्ये महात्मानस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा हतशत्रवः । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य

श्रीनारायण, नरोंमें उत्तम नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके फिर (उनके नामका) जयघोष वा जय नामक महाभारतका आरम्भ करे ॥ ॐ ॥ जनमेजयने कहा, कि-मेरे महात्मा पितामहोंने अपने पिताके राज्यको पाकर महात्मा महाराज धृतराष्ट्रके साथ कैसा वर्त्ताव किया ? ॥ १ ॥ उन महाराज धृतराष्ट्रके पुत्र और मंत्री मारेगये थे, वह विना आश्रयके थे तथा उनका ऐश्वर्य जाता रहा था, वह और तपस्विनी गान्धारी किसप्रकार रहते थे ? ॥ २ ॥ वे मेरे पूर्व पितामह कितने दिनों तक राज्य पर स्थित रहे, यह सब बतानेके आप योग्य हैं ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने उत्तर दिया, कि-शत्रुओं

पृथिवीं पर्यपालयन् ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्रमुपातिष्ठद्विदुरः सञ्जय-
स्तथा । वैश्यापुत्रश्च मेधावी युयुत्सुः कुरुसत्तम ॥ ५ ॥
पाण्डवाः सर्वकार्याणि सम्पृच्छन्ति स्म तं नृपम् । चक्रुस्ते-
नाऽभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दश पञ्च च ॥ ६ ॥ सदा हि गत्वा
ते वीराः पर्युपासंत तं नृपम् । पादाभिवादनं कृत्वा धर्म-
राजमते स्थिताः ॥ ७ ॥ ते मूर्ध्नि समुपाघ्राताः सर्वका-
र्याणि चक्रिरे। कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारीमन्ववर्त्तत ८
द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः । समां
वृत्तिमवर्त्तन्त तयोः श्वश्र्वोर्यथाविधि ॥ ९ ॥ शयनानि
महार्हाणि वासांस्याभरणानि च। राजार्हाणि च सर्वाणि

का नाश करनेवाले महात्मा पाण्डव राज्य पानेके अनन्तर धृतराष्ट्रको आगे करके अच्छे प्रकारसे पृथ्वीका पालन करनेलगे ॥ ४ ॥ हे कुरुसत्तम ! विदुर, सञ्जय तथा धृतराष्ट्रकी वैश्य स्त्रीसे उत्पन्न हुआ बुद्धिमान् पुत्र युयुत्सु ये धृतराष्ट्रकी सेवा किया करते थे ॥ ५ ॥ पाण्डव सब कामोंमें राजा धृतराष्ट्रसे संमति लेलिया करते थे, पांडवोंने उनकी आज्ञाके अनुसार दश और पाँच (पन्द्रह) वर्ष तक काम किया ॥६॥ धर्मराजकी संमतिके अनुसार चलनेवाले वे वीर पाण्डव सदा धृतराष्ट्रके पास जा उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी सेवा किया करते थे ॥ ७ ॥ जब धृतराष्ट्र उनके मस्तकको सूँघ लेते थे तब वे सब काम करते थे और कुन्तिभोजकी पुत्री (कुन्ती) गांधारीकी आज्ञामें चलती थी ॥ ८ ॥ द्रौपदी, सुभद्रा तथा पाण्डवोंकी और जो स्त्रियें थीं वे सब, कुन्ती और गान्धारी दोनों सासोंमें एकसा भाव रखकर वर्त्ताव करती थीं ॥९॥ हे महाराज ! बहुमूल्य शय्या, वस्त्र और गहने

मद्यभोज्यान्यनेकशः ॥ १० ॥ युधिष्ठिरो महाराज धृत-
राष्ट्रेऽभ्युपाहरत् । तथैव कुन्ती गान्धार्यां गुरुवृत्तिमव-
र्त्तत ॥ ११ ॥ विदुरः सञ्जयश्चैव युयुत्सुश्चैव कौरवः ।
उपासते स्म तं वृद्धं हतपुत्रं जनाधिपम् ॥ १२ ॥ श्यालो
द्रोणस्य यश्चासीद्दयितो ब्राह्मणो महान् । स च तस्मिन्म-
हेष्वासः कृपः समनवर्त्तत ॥ १३॥ व्यासश्च भगवान्नि-
त्यमासाञ्चक्रे नृपेण ह । कथाः कुर्वन् पुराणर्षिदेवर्षिपितृ-
रक्षसाम् ॥१४॥ धर्मयुक्तानि कार्याणि व्यवहारान्विलानि
च । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो विदुरस्तान्यकारयत् ॥ १५ ॥
सामन्तेभ्यः प्रियाण्यस्य कार्याणि सुबहून्यपि । प्राप्यन्तेथैः
सुलघुभिः सुनयाद्विदुरस्य वै ॥१६॥ अकरो द्बन्धमोक्षञ्च

तथा मद्य भोज्यके अनेकों पदार्थ तथा राजाके योग्य पदार्थ युधिष्ठिर धृतराष्ट्रको अर्पण किया करते थे तथा कुन्ती गान्धारीको अपनी बड़ी मानकर सब बर्त्ताव करती थी ॥ १०-११ ॥ हे कुरुवंशी ! जिसके पुत्र मारेगये थे ऐसे बूढे राजा धृतराष्ट्रके पास विदुर सञ्जय और युयुत्सु बैठा करते थे ॥ १२ ॥ द्रोणका साला, जो उनको बड़ा प्यारा था वह महाधनुषधारी ब्राह्मण कृपाचार्य भी राजा धृतराष्ट्रके पास ही रहता था ॥ १३ ॥ और भगवान् व्यासजी नित्य उस राजा धृतराष्ट्रके पास आकर बैठा करते थे तथा उसको पुराण, ऋषि, देवर्षि, पितर और राक्षसोंकी कथायें सुनाया करते थे ॥ १४ ॥ विदुरजी धृत-राष्ट्रकी आज्ञानुसार व्यवहारके सब काम धर्मपूर्वक कर-वाया करते थे ॥१५॥ विदुरकी उत्तम नीतिसे और थोड़ेसे ही धनके व्ययसे उनके बहुतसे प्यारे काम सामन्तोंसे सिद्ध होजाते थे ॥ १६ ॥ विदुर कैदियोंको छोड़देते थे

वध्यानां मोक्षणं तदा । न च धर्मसुतो राजा कदाचित् किञ्चिदब्रवीत् ॥ १७ ॥ विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः । सर्वान् कामान् महातेजाः प्रददावम्बिकासुते ॥१८॥ आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा । उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा ॥१९॥ वासांसि च महार्हाणि माल्यानि विविधानि च । उपाजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ॥ २० ॥ मैरेयमत्स्यमांसानि पानकानि मधूनि च । चित्रान् भक्ष्यविकारांश्च चक्रुस्तस्य यथा पुरा ॥ २१ ॥ ये चापि पृथिवीपालाः समाजग्मुस्ततस्ततः । उपातिष्ठन्त ते सर्वे कौरवेन्द्रं यथा पुरा ॥२२॥ कुन्ती च द्रौपदी चैव सात्वती च यशस्विनी । उलूपी नाग-

और जो मारने योग्य होते थे उनको छोड़देते थे तब भी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर कभी कुछ नहीं कहते थे ॥ १७ ॥ और विहारयात्राओंके अवसरों पर महातेजस्वी कुरुराज युधिष्ठिर सकल उपभोगकी वस्तुएँ धृतराष्ट्रको अर्पण करते थे ॥ १८ ॥ शाकभाजी तयार करनेवाले, भोजनके पदार्थ बनानेवाले, और रागखाण्डिक (पीपल सोंठ शर्कराका और मूँगका रस बनानेवाले) दुर्योधनके समयके अनुसार ही राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें हाजिर रहते थे १९ बहुमूल्य वस्त्र और नानाप्रकारकी मालायें पांडव धृतराष्ट्रको ठीक समय पर देते थे ॥ २० ॥ चटपटे जल, मत्स्य, मांस सर्वत आदि पानक और नानाप्रकारके भक्ष्य पदार्थ उनको दुर्योधनके समयके अनुसार ही देते थे ॥ २१ ॥ देश२से जो राजे हस्तिनापुरमें मिलनेको आते थे वे सब भी पहलेकी समान ही कौरवेन्द्र राजा धृतराष्ट्रके पास मिलनेको जाते थे ॥२२॥ हे पुरुषश्रेष्ठ जनमेजय ! कुन्ती,

कन्या च देवी चित्रांगदा तथा॥ २३ ॥ धृष्टकेतोश्च भगिनी जरासन्धसुता तथा। एताश्चान्याश्च बह्वयो वै योषितः पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥ किंकराः पर्युपातिष्ठन् सर्वाः सुबलजां तदा। यथा पुत्रवियुक्तोयं न किंचित् दुःखमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ इति तानन्वशाद् भ्रातॄन् नित्यमेव युधिष्ठिरः। एवन्ते धर्मराजस्य श्रुत्वा वचनमर्थवत् ॥ २६ ॥ सविशेषमवर्त्तन्त भीममेकं तदा विना। न हि तत्तस्य वीरस्य हृदयादपसर्पति। धृतराष्ट्रस्य दुर्बुद्धया यद् वृत्तं द्यूतकारितम्॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि
आश्रमवासपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्रौपदी और यश पानेवाली सात्वतनन्दिनी सुभद्रा, नागकन्या उलूपी और देवी चित्राङ्गदा, धृष्टकेतुकी बहिन और जरासन्धकी पुत्री ये तथा दूसरी सब स्त्रियें और बहुतसी सेविका ये सब मिलकर सुबलकुमारी गांधारी की सेवा करती थीं, जिससे कि पुत्रोंकी वियोगिनी वह गान्धारी अपने चित्तमें कुछ दुःख न माने ॥ २३–२५ ॥ इसप्रकार युधिष्ठिर नित्य अपने भाइयोंको शिक्षा देते रहते थे और वे धर्मराजके ऐसे अर्थ भरे वचनोंको सुन कर उस समय एक भीमके सिवाय और सब विशेषरूपसे उनकी आज्ञानुसार ही बर्त्ताव करते थे, क्योंकि–जुएके खेलमें जो कुछ अनर्थ हुआ था वह सब धृतराष्ट्रकी दुष्ट बुद्धिके कारणसे ही हुआ था यह बीत बार भीमसेनके हृदयमेंसे नहीं हटती थी ॥ २६ ॥ २७ ॥ पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवं सम्पूजितो राजा पाण्डवैर-म्बिकासुतः । विजहार यथा पूर्वमृषिभिः पर्युपासितः १ ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरूद्वहः । तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वपद्यत ॥ २ ॥ आनृशंस्यपरो राजा प्रिय-माणो युधिष्ठिरः । उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च मही-पतिः ॥ ३ ॥ मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः । निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत्॥४॥ विपरीतश्च मे शत्रुर्निरस्यश्च भवेन्नरः । पितृवृत्तेषु चाहःसु पुत्राणां श्राद्धकर्मणि । सुहृदांश्चैव सर्वेषां यावदस्य चिकीर्षि-तम् ॥ ५ ॥ ततः स राजा कौरव्यो धृतराष्ट्रो महामनाः।

वैशम्पायन कहते हैं, कि-पाण्डवोंसे इसप्रकार अच्छे प्रकार आदर पातेहुए राजा धृतराष्ट्र पहलेकी समान ही ऋषियोंके साथ गोष्ठी करतेहुए समय बितानेलगे ॥ १ ॥ कुरुवंशके भारको उठानेवाले राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणोंको देनेयोग्य बड़े२ दान देते थे और राजा युधिष्ठिर उन सब कामोंमें अपनी सहानुभूति दिखाते थे ॥ २ ॥ जिनमें कठोरताका नाम भी नहीं था ऐसे सबको प्रसन्न रखने वाले महीपति राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे तथा मंत्रियोंसे कहनेलगे, कि-मुझे और तुम्हें सबको राजा धृतराष्ट्रका सन्मान करना चाहिये, जो इनकी आज्ञाका पालन करेगा वही मेरा मित्र है और जो इनके विपरीत चलेगा उसको मैं अपना शत्रु मानूँगा और दंड दूँगा ३-४ और श्राद्धके दिन आने पर उनके पुत्रोंके तथा सम्ब-न्धियोंके श्राद्धकर्ममें राजा युधिष्ठिर उनकी इच्छानुसार धन खरचते थे ॥५॥ और उदारमनवाले कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणोंको उनकी योग्यतानुसार बहुतसा धन

ब्राह्मणेभ्यो यथार्हेभ्यो ददौ वित्तान्यनेकशः ॥ ६ ॥ धर्मराजश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि । तत् सर्वमन्ववर्त्तन्त तस्य प्रियचिकीर्षया ॥ ७ ॥ कथं नु राजा वृद्धः स पुत्रपौत्रवधार्दितः । शोकमस्मत्कृतं प्राप्य न म्रियेतेति चिन्त्यते ॥ ८ ॥ यावद्धि कुरुवीरस्य जीवत्पुत्रस्य वै सुखम् । बभूव तदवाप्नोति भोगांश्चेति व्यवस्थिताः ॥ ९ ॥ ततस्ते सहिताः पंच भ्रातरः पाण्डुनन्दनाः । तथाशीलाः समातस्थुर्धृतराष्ट्रस्य शासने ॥ १० ॥ धृतराष्ट्रश्च तान् सर्वान् विनीतान् नियमे स्थितान् । शिष्यवृत्तिं समापन्नान् गुरुवत् प्रत्यपद्यत ॥ ११ ॥ गान्धारी चैव पुत्राणां विविधैः श्राद्धकर्मभिः । आनृण्यमगमत् कामान् विप्रे-

---

देते थे ॥ ६ ॥ धर्मराज, भीमसेन और नकुल सहदेवने धर्मराजको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे यह सब किया ॥७॥ पुत्र और पौत्रोंके मरणसे दुःखी हुए यह बूढे राजा, हमारी ओरसे कोई शोकका कारण पाकर कहीं मर न जायँ इस बातकी वे सब बड़ी चिन्ता रखते थे ॥ ८ ॥ कुरुवीर धृतराष्ट्रको अपने पुत्रोंकी जीवित दशामें जितना सुख मिलता था वैसे ही सब सुख और ठीक कियेहुए भोगोंको भोगते थे ॥ ९ ॥ इसप्रकार वे सब पांडुके पुत्र पाँचों भाई इकट्ठे होकर अपने स्वभावको सम्हालेहुए धृतराष्ट्रकी आज्ञामें रहनेलगे ॥ १० ॥ धृतराष्ट्रने भी, विनयवान्, नियममें रहनेवाले, शिष्योंकेसे वर्त्तावका पालन करनेवाले उन सबके साथ गुरु (पिता अथवा बड़े) केसा वर्त्ताव किया ॥ ११ ॥ गान्धारी भी ऐसा ही करती थी, पुत्रोंके अनेकों प्रकारके श्राद्धकर्मसे और ब्राह्मणोंकी कामनाओंको पूरी करके वे दोनों ऋणमुक्त हुए १२

भयः प्रतिपाद्य सा ॥ १२ ॥ एवं धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः । भ्रातृभिः सहितो धीमान् पूजयामास तं नृपम् ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । स राजा सुमहातेजा वृद्धः कुरुकुलोद्वहः । न ददर्श तदा किंचिदप्रियं पाण्डुनन्दने ॥ १४ ॥ वर्तमानेषु सद्वृत्तिं पांडवेषु महात्मसु । प्रीतिमानभवद्राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥१५॥ सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोकमपास्य तम् । सदैव प्रीतिमत्यासीत्तनयेषु निजेष्विव ॥१६॥ प्रियाण्येव तु कौरव्यो नाप्रियाणि कुरूद्वहः । वैचित्रवीर्ये नृपतौ समाचरत वीर्यवान् ॥ १७ ॥ यद्यद् ब्रूते च किञ्चित् स धृतराष्ट्रो जनाधिपः।गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च तपस्विनी१८

इसप्रकार धर्मका पालन करनेवालोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान्, धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंके सहित उन राजा धृतराष्ट्रका सत्कार करतेरहे ॥१३॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–कुरुकुलको चलानेवाले महातेजस्वी उन वृद्ध राजा धृतराष्ट्रने पांडुके पुत्र युधिष्ठिरमें कोई भी अपनेको अप्रिय लगने वाला वर्त्ताव नहीं देखा।।१४।।महात्मा पांडवोंको अच्छा वर्त्ताव करतेहुए देखकर अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र प्रसन्न होगया ॥ १५ ॥ और सुबलकी पुत्री गांधारी भी अपने पुत्रोंके शोकको भूलकर उनके ऊपर सदा अपने पुत्रोंकीसी प्रीति रखनेलगी ॥ १६ ॥ कुरुकुलको चलाने वाले वीर युधिष्ठिरने विचित्रवीर्यके पुत्र राजा धृतराष्ट्रका प्रिय काम ही किया, अप्रिय काम कभी नहीं किया ।१७। हे महाराज ! छोटे या बड़े जिन कामोंको भी करनेके लिये राजा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारी कहते थे उन कामोंको, वीर शत्रुओंका नाश करनेवाले, पांडवोंमें

तं स राजा महाराज पाण्डवानां धुरन्धरः । पूजयित्वा वचस्तस्य अकार्षीत् परवीरहा ॥१९॥ तेन तस्याभवत् प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः अन्वतप्यच्च संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसम् ॥ २० ॥ सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः । आशास्ते पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम् ॥२१ ॥ ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्याथ हुत्वा चैव हुताशनम् । आयुष्यं पाण्डुपुत्राणामाशंसत नराधिपः ॥ २२ ॥ न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स कुरूद्वहः । यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः सदावाप तदा नृपः ॥२३॥ ब्राह्मणानां यथा वृत्तः क्षत्रियाणां यथाविधिः । तथा विट्शूद्रसंघानामभवत् स प्रियस्तदा ॥२४॥ यच्च किंचित्तदा पापं धृतराष्ट्रसुतैः कृतम् ।

धुरन्धर राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्रका सन्मान करके उनके कहनेके अनुसार ही करते थे ॥ १८ ॥ १९ ॥ उनके ऐसे बर्त्तावसे राजा धृतराष्ट्र उनके ऊपर प्रसन्न रहते थे और अपने मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधनको याद करके पछताते थे २० राजा धृतराष्ट्र सदा प्रातःकालके समय उठते और शौच स्नान आदिसे शुद्ध हो जप करके पाण्डवोंको युद्धोंमें विजय मिलनेका आशीर्वाद दिया करते थे ॥ २१ ॥ फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा अग्निमें होम करके वह राजा पांडुके पुत्रोंकी दीर्घायुके लिये आशीर्वाद दिया करते थे २२ राजा धृतराष्ट्रकी जैसी प्रीति पांडवोंके ऊपर सदा रहने लगी ऐसी प्रीति पहले अपने पुत्रोंके ऊपर भी नहीं थी २३ राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणोंको जैसे प्यारे होगये थे और क्षत्रियोंको जैसे अपने मालूम होते थे तैसे ही वैश्य और शूद्रोंकी टोलियोंको भी प्यारे लगते थे ॥ २४ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्रोंने जो कुछ भी बुराई की थी, उस सबको

अकृत्वा हृदि तत् पापं तं नृपं सोऽन्ववर्त्तत ॥ २५ ॥ यश्च
कश्चिन्नरः किंचिदप्रियं चाम्बिकासुते । कुरुते द्वेष्यतामेति
स कौन्तेयस्य धीमतः ॥ २६ ॥ न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च
दुर्योधनस्य वै । उवाच दुष्कृतं कश्चिद्युधिष्ठिरभयान्नरः २७
धृत्या तुष्टो नरेन्द्रस्य गान्धारी विदुरस्तथा । शौचेन चा-
जातशत्रोर्न तु भीमस्य शत्रुहन् ॥ २८ ॥ अन्ववर्तत
भीमोऽपि निश्चितो धर्मजो नृपम् । धृतराष्ट्रश्च संप्रेक्ष्य सदा
भवति दुर्मनाः ॥२९॥ राजानमनुवर्त्तंत धर्मपुत्रममित्रहा ।
अन्ववर्त्तत कौरव्यो हृदयेन पराङ्मुखः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अपने हृदयमेंसे दूर करके राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके साथ सद्व्यवहार करते थे ॥ २५ ॥ जो कोई भी मनुष्य धृतराष्ट्रके चित्तके प्रतिकूल काम करता था, उसको बुद्धिमान् युधिष्ठिर अपना शत्रु समझते थे ॥२६॥ राजा युधिष्ठिरके डरके मारे कोई भी मनुष्य राजा धृतराष्ट्रके या दुर्योधनके अनुचित कामोंकी चर्चा नहीं करता था २७ अजातशत्रु युधिष्ठिरके धीरजसे नरेन्द्र धृतराष्ट्र, गांधारी और विदुर सन्तुष्ट होगये थे, शत्रुनाशक राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीको भीमसेनके बर्त्तावसे सन्तोष नहीं हुआ ॥ २८ ॥ दृढ़तावाला भीम धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार चलता था, परन्तु धृतराष्ट्रको देखकर वह सदा अप्रसन्न ही होता था ॥२९॥ वह शत्रुहन्ता भीम, धृतराष्ट्रके अनुकूल बर्त्ताव करनेवाले धर्मपुत्रके अनुकूल बर्त्ताव करता था, परन्तु मनमें वह धृतराष्ट्रके विरुद्ध और बड़े ही क्रोधमें भरा रहता था ३० दूसरा अध्याय समाप्त २

वैशम्पायन उवाच । युधिष्ठिरस्य नृपतेर्दुर्योधनपितु
स्तथा । नान्तरं ददृशू राज्ये पुरुषा प्रणयं प्रति ॥ १ ॥
यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार दुर्मतिम् । तदा भीमं
हृदा राजन्नपध्यानि स पार्थिवः ॥२॥ तथैव भीमसेनोऽपि
धृतराष्ट्रं जनाधिपम् । नामर्षयत राजेन्द्र सदैव दुष्टध-
ध्रुदा ॥ ३ ॥ अप्रकाशान्यप्रियाणि चकारास्य वृकोदरः ।
आज्ञां प्रत्यहरच्चापि कृतकैः पुरुषैः सदा ॥४॥ स्मरन्
दुर्मन्त्रितं तस्य वृत्तान्यप्यस्य कानिचित् । अथ भीमः
सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तदाकरोत् ॥ ५ ॥ संश्रवे धृतराष्ट्रस्य
गान्धार्याश्चाप्यमर्षणः । स्मृत्वा दुर्योधनं शत्रु कर्णदुःशा-

वैशम्पायन कहते हैं, कि—उनके राज्यमें मनुष्योंने
राजा युधिष्ठिर और धृतराष्ट्रके परस्परके प्रेममें जरा भी
भेदभाव नहीं पाया ॥ १ ॥ जिससमय भी कौरवराज
धृतराष्ट्र अपने मूर्खपुत्र दुर्योधनको याद करता था उसी
समय हे राजन् ! उसके मनमें भीमसेनका ध्यान आजाता
था ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसे ही भीमसेन भी राजा धृत-
राष्ट्रके दुर्गुणोंको हृदयसे क्षमा नहीं करता था ॥ ३ ॥
भीमसेन गुप्तरीतिसे, धृतराष्ट्रके मनको बुरे लगनेवाले
काम किया करता था और सदा ढोंगी मनुष्योंसे उनकी
आज्ञाका भङ्ग कराया करता था ॥४॥ धृतराष्ट्रकी खोटी
सलाहें और कितने ही अवसरोंको याद करके (वह
बारम्बार यह सुनाया करता था, (कि—"हतास्ते मन्दचे-
तसः" वे मन्द बुद्धिवाले मारेगये) एक दिन भीमसेनने
मित्रोंके बीचमें भुजदण्डों पर थपकी मारनेका शब्द
किया ॥५॥ फिर अपने शत्रु—दुर्योधन, कर्ण और दुःशा-
सनको याद करके, धृतराष्ट्र और गान्धारीको सुनाते

सनावपि ॥६॥ प्रोवाचेदं सुसंरब्धो भीमः सपरुषं वचः
अन्धस्य नृपतेः पुत्रा मया परिघबाहुना । नीता लोकममुं
सर्वे नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः ॥ ७ ॥ इमौ तौ परिघप्रख्यौ
भुजौ मम दुरासदौ ॥ ८ ॥ ययोरन्तरमासाद्य धार्त्तराष्ट्राः
क्षयंगताः । ताविमौ चन्दनेनाक्तौ चन्दनार्हौ च मे भुजौ॥९
याभ्यां दुर्योधनो नीतः क्षयं ससुतबान्धवः । एता-
श्चान्याश्च विविधा शल्यमूला नराधिप॥१०॥ वृकोदरस्य
ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत् । सा च बुद्धिमती देवी
कालपर्य्यायवेदिनी। गान्धारी सर्वधर्मज्ञा तान्यलीकानि
शुश्रुवे ॥ ११ ॥ ततः पंचदशे वर्षे समतीते नराधिपः ।

हुए किसीके अपमानको न सहसकनेवाले भीमसेनने
बड़ेही आवेशमें आकर ऐसे कठोर वचन कहे, कि-लोहेके
दण्डोंकी समान भुजदण्डवाले मैंने, अनेकों अस्त्रशस्त्रोंसे
युद्ध करनेवाले अन्धराज धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको इस
लोकसे बिदा करदिया है,ये वे ही लोहदण्डकी समान मेरे
दोनों भुजदण्ड हैं, कि-जो कभी थकते ही नहीं ।६-८।
।और जिनके सपाटेमें आकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका क्षय हो
गया, ये मेरे दोनों भुजदण्ड चन्दनसे पुते हुए और
चन्दनके योग्य हैं ॥९॥ इन ही भुजाओंसे मैंने दुर्योधन
जैसे राजाका, उनके भाइयोंका और पुत्रोंका तथा इसके
समान ही शल्य आदि दूसरे राजाओंका खोज खोदिया
है ॥ १० ॥ वृकोदरकी इस बातको सुनकर राजा धृत-
राष्ट्रके चित्तमें बड़ा ही दुःख हुआ तथा बुद्धिमती और
समयके उलटफेरको तथा सकल धर्मोंको जाननेवाली
गान्धारी देवीने भी ये कठोर वचन सुने, परन्तु (सुशीला
कुन्तीकी ओरको ध्यान देकर उसको शाप देनेका विचार

राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः ॥१२॥ नान्वबु
ध्यत तद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥ श्वेताश्वो
वाथ कुन्ती वा द्रौपदी वा यशस्विनी।माद्रीपुत्रौ च धर्म्म-
ज्ञौ चित्तं तस्यान्ववर्त्तताम् ॥१४॥ राज्ञस्तु चित्तं रक्षन्तौ
नोचतुः किंचिदप्रियम्। ततः सम्मानयामास धृतराष्ट्रः
सुहृज्जनम्॥ १५ ॥ बाष्पसन्दिग्धमत्यर्थमिदमाह च तान्
भृशम् । धृतराष्ट्र उवाच । विदितं भवतामेतत् यथा
वृत्तः कुरुक्षयः ॥१६॥ ममापराधात् तत् सर्वमनुज्ञातश्च
कौरवैः । योऽहं दुष्टमतिं मन्दो ज्ञातीनां भयवर्द्धनम् १७
दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।यच्चाहं वासु-
देवस्य नाश्रौषं वाक्यमर्थवत् ॥ १८ ॥ वध्यतां सा-

नहीं किया) तदनन्तर पन्द्रह वर्ष बीत जाने पर हे राजन् !
राजा धृतराष्ट्र भीमसेनकी वाणीरूप बाणोंसे पीड़ित
होनेर अकुला उठा, कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरको इस
बातकी कुछ खबर नहीं थी ॥११-१३॥ अर्जुन, कुन्ती,
यशस्विनी द्रौपदी और धर्मको जाननेवाले माद्रीके दोनों
पुत्र उनके चित्तके अनुकूल ही वर्ताव किया करते थे १४
अपने चित्तको वशमें रखकर उन दोनोंने धृतराष्ट्र तथा
गान्धारीको कोई बुरी लगनेवाली बात नहीं कही, तद-
नन्तर धृतराष्ट्रने अपनी मित्रमण्डलीको बुलवाया ।१५।
और उनसे नेत्रोंमें आँसू भरकर व्याकुलताके साथ
कहनेलगे, धृतराष्ट्रने कहा, कि-कौरवोंका नाश किसप्रकार
हुआ, यह तुम्हें मालूम ही है ॥ १६ ॥ यह सब घटना
मेरे अपराधसे ही हुई तथा कौरवोंने ऐसा किया, वह
मन्दबुद्धि मैं ही हूँ, कि-जिसने ज्ञातियोंके भयको बढ़ाने
वाले दुष्टबुद्धि दुर्योधनको कौरवोंके राजपद पर अभिषेक

ध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः । पुत्रस्नेहाभिभूतस्तु
हितमुक्तो मनीषिभिः॥१९॥ विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन
च कृपेण च । पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना॥२०॥
संजयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यते च माम् । यच्चाहं पाण्डु
पुत्रेषु गुणवत्सु महात्मसु ॥ २१ ॥ न दत्तवान् श्रियं दीप्तां
पितृपैतामहीमिमाम् । विनाशं पश्यमानो हि सर्वराज्ञां
गदाग्रजः ॥२२॥ एतत् श्रेयस्तु परमममन्यत जनार्दनः ।
सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनस्तदा ॥२३॥ हृदये
शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः । विशेषतस्तु पश्यामि

किया, कृष्णकी हितभरी बातको न सुननेवाला मैं ही हूँ ॥ १७-१८ ॥ "इस दुष्टबुद्धि पापी दुर्योधनको इसके मंत्री और मित्रोंके सहित मरवादेना चाहिये" बुद्धिमान् मनुष्योंकी कहीहुई इस हितकारी बातको पुत्रके स्नेहसे हारेहुए मैंने सुना ही नहीं ॥ १९ ॥ विदुर, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यने भी मुझसे ऐसा ही कहा था, उदार मनवाले भगवान् व्यासदेवने भी पगपर यही बात कही थी ॥ २० ॥ सञ्जयने तथा दुर्योधनकी माता गान्धारीने भी मुझसे यही बात कही थी, परन्तु मैंने सुना ही नहीं, इसकारण ही आज मुझे पछताना पड़रहा है,और मैंने गुणवान् महात्मा पाण्डवोंको उनके पिता और प्रपिता-महकी यह प्रकाशमयी राज्यलक्ष्मी लौटाकर नहीं दी, इसकारण ही मुझे सन्ताप होरहा है, सब राजाओंके विनाशको गदके बड़ेभाई बलरामने देखा था, पर-न्तु ॥ २१-२२ ॥ श्रीकृष्णने तो इसको परमकल्याणरूप ही माना था, ये सब खोटे काम जिसके कारणसे हुए वह मैं ही हूँ ॥ २३ ॥ मेरे हृदयमें वे हजारों अवसर

वर्षे पंचदशेऽद्य वै ॥२४॥ अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं नियतोऽस्मि सुदुर्म्मतिः। चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे२५ तृष्णाविनयनं भुंजे गान्धारी वेद तन्मम। करोत्याहारमिति मां सर्वः परिजनः सदा ॥ २६ ॥ युधिष्ठिरभयाद्वेति भृशं तप्यति पाण्डवः। भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिन संवृतः ॥२७॥ नियमव्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी। हतं शतन्तु पुत्राणां ययोर्युद्धेऽपलायिनाम् ॥ २८ ॥ नानुतप्यामि तच्चाहं क्षत्रधर्म्मं हि ते विदुः॥ इत्युक्त्वा धर्म्मराजानमभ्यभाषत कौरवः ॥२९॥ भद्रन्ते यादवीमातर्व-

---

काँटेकी समान रक्खे हैं, फिर भी मैं जीरहा हूं, विशेषकर दश पन्द्रह वर्ष बाद आज मेरी आँखें खुली हैं २४ इसलिये उस पापके प्रायश्चित्तके लिये मन्दबुद्धिवाले मैंने यह निश्चय किया है, कि-नियत किये हुए चौथे २ अथवा कदाचित् आठवें भागमें तृष्णाको वशमें रखनेके लिये ही खाया करूँ, मेरे इस विचारको गान्धारी जानती है, दूसरे सब लोगोंको यही मालूम है, कि-मैं पेट भरके खाया करता हूँ॥ २५-२६ ॥ सब लोग युधिष्ठिरके डरके मारे मेरे पास आते हैं, युधिष्ठिरको खबर होने पर उनको बड़ा दुःख होगा, ऐसा विचार कर ही मेरे पास आते रहते हैं, कहीं युधिष्ठिरको खबर न होजाय, इसलिये मैं मृगछाला ओढ कर जप करता २ भूमि पर कुशा बिछाकर सोरहा करता हूँ ॥ २७ ॥ नियमका पालन करनेके कारणसे यशस्विनी गान्धारी भी ऐसा ही किया करती है, हम दोनोंके, युद्धमें से पीठ दिखाकर न भागनेवाले, सौ पुत्र मारेगये हैं २८ वे मारेगये, इसकारणसे मुझे जरा भी दुःख नहीं होता है, क्योंकि-उनको क्षत्रियके धर्मकी खबर थी (और

चक्षेदं निबोध मे। सुखमस्म्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः ॥३०॥ महादानानि दत्तानि श्राद्धानि च पुनः पुनः। प्रकृष्टं च मया पुत्र पुण्यं चीर्णं यथाबलम् ॥३१॥ गान्धारी हतपुत्रेयं धैर्येणोदीक्षते च माम्। द्रौपद्या ह्यपकर्त्तारस्तव चैश्वर्यहारिणः ॥३२॥ समतीता नृशंसास्ते स्वधर्मेण हता युधि। न तेषु प्रतिकर्त्तव्यं पश्यामि कुरुनन्दन ३३ सर्वे शस्त्रकृताँल्लोकान् गतास्तेभिमुखं हताः। आत्मनस्तु हितं पुण्यं प्रतिकर्त्तव्यमद्य वै ३४ गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातुमर्हसि। त्वन्तु शस्त्रभृतां श्रेष्ठ सततं धर्म्मवत्सल ३५ राजा गुरुः प्राणभृतां तस्मादेतद्

क्षत्रियधर्मका घोर अभिमान करनेसे ही उनका नाश हुआ है) ऐसा कहकर धृतराष्ट्रने धर्मराजसे कहा, कि–॥ २९ ॥ हे यादवी माताके तेजस्वी पुत्र! तेरा भला हो, तू मेरी यह बात सुन, हे पुत्र ! तेरे परिपालनसे मैं सुखमें रहा हूँ ॥ ३० ॥ और मैंने बार २ बड़े २ दान और श्राद्ध किये हैं और हे पुत्र ! मैंने यथाशक्ति बहुतसे बड़े २ पुण्यकर्म किये हैं ॥ ३१ ॥ जिसके पुत्र मारेगये हैं ऐसी यह गांधारी धीरजके साथ मुझे देखरही हैं, द्रौपदीके ऊपर अत्याचार करनेवाले और तेरे ऐश्वर्यको लूटनेवाले वे सब पापी युद्धमें अपने धर्मका पालन करनेमें मारेगये हैं और इस लोकसे बिदा होगये हैं, हे कुरुनन्दन ! मैं उनकेलिये कुछ करनेयोग्य नहीं देखता॥३२॥३३॥वे सामने पड़कर मारेगये हैं, इस लिये वे सब शस्त्रधारी क्षत्रियोंके लोकोंमें गये हैं, अब तो मुझे अपने लिये पुण्ययुक्त हितका काम करना शेष रहगया है ॥ ३४ ॥ तथा गांधारीका भी हित करना है,

ऽधीप्यहम् । अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्य-
हम्॥३६॥ चीरवल्कलभृद्राजन् गान्धार्या सहितोऽनया।
तवाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः॥ ३७ ॥ उचितं
नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ । पुत्रेष्वैश्वर्य्यमाधाय
वयसोऽन्ते वनं नृप ॥ ३८ ॥ तत्राहं वायुभक्षो वा निरा-
हारोऽपि वा वसन् । पत्न्या सहानया वीर चरिष्यामि
तपः परम् ॥३९॥ त्वञ्चापि फलभाक्तात तपसः पार्थिवो
ह्यसि । फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा॥४०॥
युधिष्ठिर उवाच । न मां प्रीणयते राज्यं त्वय्येवं दुःखिते

इसलिये हे राजेन्द्र! अब तुम्हें उचित है, कि–मुझे ऐसा करनेकी आज्ञा दो, तुम शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और सदा धर्मके प्रेमी हो ॥ ३५ ॥ राजा प्राणियोंका गुरु होता है, इसलिये मैं ऐसा कहरहा हूँ, हे वीर! तेरी आज्ञा होने पर मैं वनमें जाकर रहूँगा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! चीर वल्कल धारण करके इस गान्धारीके साथ मैं तुझे आशी-र्वाद देताहुआ वनवासी बनूँगा ॥ ३७ ॥ हे तात! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर! हमारे कुलमें यह सबको ही करना चाहिये, कि—अन्तकी अवस्थामें (बुढ़ापेमें) पुत्रोंको ऐश्वर्य देकर वनमें जाकर रहें ॥३८॥ हे वीर!तहाँ मैं वायुका भक्षण करके अथवा निराहारही इस अपनी स्त्रीके साथ रहकर परम तप करूँगा ॥३९॥ हे तात! तू भी उस तपके फलका भागी होगा,क्योंकि-तू राजा है, राजे अपने राज्यमें होनेवाले भले या बुरे कर्मके फलके भागी होते हैं ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया, कि-हे राजन्! आपके ऐसे दुःखित रहने पर यह राज्य मुझे अच्छा नहीं लगता, धिक्कार है मुझसरीखे

नृप । धिङ् मामस्तु सुदुर्बुद्धिं राज्यसक्तं प्रमादिनम् ।४१।
योऽहं भवन्तं दुःखार्तमुपवासकृशं भृशम् । जिताहारं
क्षितिशयं न विन्दे भ्रातृभिः सह ॥ ४२ ॥ अहोऽस्मि
वञ्चितो मूढो भवता गूढबुद्धिना । विश्वासयित्वा पूर्वं
मां यदिदं दुःखमश्नुथाः ॥ ४३ ॥ किं मे राज्येन भोगैर्वा
किं यज्ञैः किं सुखेन वा । यस्य मे त्वं महीपाल दुःखान्ये-
तान्यवाप्तवान् ॥ ४४ ॥ पीडितं चापि जानामि राज्यमा-
त्मानमेव च । अनेन वचसा तुभ्यं दुःखितस्य जनेश्वर४५
भवान् पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः । भवता
विप्रहीणा वै क्व नु तिष्ठामहे वयम् ॥ ४६ ॥ औरसो
भवतः पुत्रो युयुत्सुर्नृपसत्तम । अस्तु राजा महाराज

राज्य पर प्रेम रखनेवाले, प्रमादी और महादुष्ट बुद्धि-वालेको॥४१॥कि-अपने भाइयों सहित मैं दुःखसे पीड़ित, उपवाससे अत्यन्त सूखतेहुए, भोजनको जीतनेवाले और भूमिपर सोतेहुए आपको जान न सका ॥ ४२ ॥ ओः ! आपसरीखे गहरी बुद्धिवालेसे मैं मूढ़ धोखा खा गया, कि-जो पहले मुझे विश्वास दिलाकर भी आपने यह दुःख भोगा ! ॥४३॥ मेरा यह राज्य, ये भोग, ये यज्ञ और सुख किस कामका था ? जब कि-हे राजन् ! आप मेरे पास रहकर इतने दुःख भोगते रहे ! ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! दुःख भोगते हुए आपके इन वचनोंसे आज मैं इस राज्यको और अपने आपको पीड़ा पाया हुआ समझता हूँ ॥ ४५ ॥ आप ही मेरे पिता हो, आप ही मेरी माता हो और आप ही मेरे परम गुरु हो, आपसे जुदे होकर हम कहाँ रहेंगे ? ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम ! आपका औरस पुत्र युयुत्सु अथवा हे महाराज ! दूसरे जिस किसी

यमन्यं मन्यते भवान् ॥ ४७ ॥ अहं वनं गमिष्यामि भवान् राज्यं प्रशास्तु । न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि ॥ ४८ ॥ नाहं राजा भवान्राजा भवता पर-वानहम् । कथं गुरुं त्वां धर्मज्ञमनुज्ञातुमिहोत्सहे ॥४९॥ न मन्युर्हृदि नः कश्चित् सुयोधनकृतेऽनघ । भवितव्यं तथा तद्धि वयं चान्ये च मोहिताः ॥ ५० ॥ वयं पुत्रा हि भवतो यथा दुर्योधनादयः । गांधारी चैव कुन्ती च निर्विशेषे मते मम ॥ ५१ ॥ स मां त्वं यदि राजेन्द्र परि-त्यज्य गमिष्यसि । पृष्ठतस्त्वानुयास्यामि सत्यमात्मा-नमालभे ॥ ५२ ॥ इयं हि वसुसम्पूर्णा मही सागरमे-

---

को आप अपना समझते हों उसको राजा बना दीजिये ॥ ४७ ॥ मैं वनको जाता हूं और आप राज्यका शासन कीजिये, मैं पहले ही अपयशसे भस्म होरहा हूं अब आप मुझे और अधिक न जलाइये ॥ ४८ ॥ मैं राजा नहीं हूं, आप ही राजा हैं, मैं तो आपका वशीभूत (ताबेदार) हूँ धर्मको जाननेवाले तथा मेरे गुरु ऐसे आपको इस विषयमें आज्ञा देनेका उत्साह ही मुझे कैसे होसकता है? ॥ ४९ ॥ हे निर्दोष राजन् ! दुर्योधनके कारणसे हमारे हृदयमें जरा भी क्रोध नहीं है, जैसा होना था वैसा हो गया, हम और दूसरे इस विषयमें मोहमें पड़गये थे ५० जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे वैसे ही हम भी हैं, मैं अपने मनसे गान्धारी और कुन्तीमें कोई भेद नहीं मानता ॥५१॥ हे राजेन्द्र ! यदि आप मुझे सर्वथा छोड़ कर चलेजाओगे तो मैं आत्माकी शपथ खाकर सत्य कहता हूँ, कि—मैं भी आपके पीछे ही आऊँगा ॥ ५२ ॥ यह धनसे भरी हुई समुद्रकी मेखलावाली पृथिवी आपका

खला। भवता विप्रहीनस्य न मे प्रीतिकरी भवेत्॥ ५३ ॥ भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये। त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥५४॥ भवितव्यमनुप्राप्तो मन्ये त्वं वसुधाधिप। दिष्ट्या शुश्रूषमाणस्त्वं मोक्षिष्ये मनसो ज्वरम् ॥५५॥ धृतराष्ट्र उवाच। तापस्ये मे मनस्तात वर्त्तते कुरुनन्दन। उचितं च कुलेऽस्माकमरण्यगमनं प्रभो ॥ ५६ ॥ चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया। वृद्धं मामप्यनुज्ञातुमर्हसि त्वं नराधिप ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन उवाच। इत्युक्त्वा धर्मराजानं वेपमानः कृतांजलिः।उवाच वचनं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ५८

वियोग होने पर मुझे प्रसन्नता नहीं देगी ॥ ५३ ॥ हे राजेन्द्र ! यह सब आपका ही है, मैं आपको मस्तक नवाकर कहता हूँ, कि–हम सब आपके अधीन हैं, आप अपने मनके सन्तापको दूर करदीजिये ॥५४॥ हे राजन्! मेरी समझमें जो भवितव्य था वह फलभोग आपको प्राप्त हुआ है, यदि मैं सेवा करके आपके मनके सन्तापको दूर करसका तो अपना सौभाग्य समझूँगा ॥ ५५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे तात कुरुनन्दन ! अब तो मेरा मन तपकी ओरको ही जाता है, हे प्रभो ! (अन्तकी अवस्थामें) वनको जाना हमारे कुलका कर्त्तव्य चला आया है ॥५६॥ हे बेटा ! मैं तेरे पास चिरकाल तक रहा और तूने बहुत दिनों तक मेरी सेवा की, हे राजन् ! अब तुझे यह उचित है, कि–मुझ वृद्धको वनमें जानेकी आज्ञा देदे ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–धृतराष्ट्रने ऐसा कहा तो धर्मराज काँपतेर हाथ जोड़कर खड़े होगये, तब अम्बिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्रने महात्मा सञ्जय और

संजयं च महात्मानं कृपं चापि महारथम् । अनुनेतुमिहेच्छामि भवद्भिर्वसुधाधिपम् ॥५९॥ ग्लायते मे मनो हीदं मुखंच परिशुष्यति । वयसा स्वप्रकृष्टेन वाग्व्यायामेन चैव हि ॥ ६० ॥ इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरूद्वहः । गान्धारीं शिश्रिये श्रीमान् सहसैव गतासुवत् ॥ ६१ ॥ तन्तु दृष्ट्वा समासीनं विसंज्ञमिव कौरवम् । आर्त्तिं राजागमत्तीव्रां कौन्तेयः परवीरहा ॥६२॥ युधिष्ठिर उवाच । यस्य नागसहस्रेण शतसंख्येन वै बलम् । सोऽयं नारीं व्यपाश्रित्य शेते राजा गतासुवत्६३ आयसी प्रतिमा येन भीमसेनस्य सा पुरा । चूर्णीकृता बलवता सोऽबलामाश्रितः स्त्रियम् ॥६४॥ धिगस्तु मामधर्मज्ञं धिग्बुद्धिं धिक् च मे श्रुतम् । यत्कृते पृथिवीपाल

महारथी कृपाचार्यसे कहा, कि-मैं चाहता हूँ, कि-राजा युधिष्ठिरको आप मेरी ओरसे समझादें ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ अवस्थाके कारण तथा अधिक बोलनेके परिश्रमसे मेरा मन घबड़ायासा जाता है और मुख सूखाजाता है।६०। ऐसा कहकर कुरुकुलको चलानेवाला वह धर्मात्मा बुद्धिमान् बूढ़ा राजा एकसाथ प्राणहीनसा होकर गान्धारीके ऊपरको गिरगया ॥६१॥ मूर्छितसे हुए धृतराष्ट्रको गिराहुआ देखकर शत्रुओंके वीरोंका नाश करनेवाले कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर बड़े ही दुःखी हुए ६२ युधिष्ठिरने कहा, कि-ओः! जिनमें सैंकड़ों और सहस्रों हाथियोंकी समान बल था वह राजा प्राणहीनसे होकर एक स्त्रीका सहारा लेकर सोरहे हैं ॥ ६३ ॥ ओः! जिसने पहले भीमसेनकी उस लोहेकी प्रतिमाका चूर२ करडाला था वह बली आज एक अबलाका सहारा लेरहा है ॥६४॥

शेतेऽयमतथोचितः ॥ ६५ ॥ अहमप्युपवत्स्यामि यथैवायं गुरुर्ममायदि राजा न भुंक्तेऽयं गान्धारी च यशस्विनी६६ वैशम्पायन उवाच । ततोऽस्य पाणिना राजन् जलशीतेन पाण्डवः । उरो मुखञ्च शनकैः पर्यमार्जत धर्मवित् ६७ तेन रत्नौषधिमता पुण्येन च सुगन्धिना । पाणिस्पर्शेन राज्ञः स राजा संज्ञामवाप ह ॥ ६८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । स्पृश मां पाणिना भूयः परिष्वज च पाण्डव । जीवामी-वातिसंस्पर्शात् तव राजीवलोचन ॥ ६९ ॥ मूर्द्धानं च तवाघ्रातुमिच्छामि मनुजाधिप । पाणिभ्यां च परिस्पृष्टं प्रीणनं हि महन्मम ॥ ७० ॥ अष्टमो ह्यद्य कालोऽयमाहा-

धिक्कार है मुझ धर्मके न जाननेवालेको ! धिक्कार है मेरी बुद्धिको ! और धिक्कार है मेरे शास्त्र पढ़नेको ! कि-जिसके कारणसे यह राजा अपने अयोग्य स्थान पर सो रहे हैं ॥ ६५ ॥ यदि यह राजा और यशस्विनी गांधारी भोजन नहीं करेंगे तो मैं भी इनकी समान ही उपवास करूँगा ॥ ६६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! फिर धर्मको जाननेवाले युधिष्ठिरने शीतल जल लेकर अपने हाथसे धीरे २ उनके हृदय और मुखको धोया ६७ तब राजा युधिष्ठिरके रत्न और औषधवाले, पवित्र तथा सुगन्धिवाले हाथके स्पर्शसे राजा धृतराष्ट्रको चेत हुआ ॥ ६८ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे पाण्डव ! अपने हाथसे मुझे फिर स्पर्श कर और हृदयसे लगा, हे कमल-नयन ! तेरे सुखदायक स्पर्शसे ही मैं जीरहा हूँ ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! तेरा मस्तक सूँघनेको मेरा जी चाहता है, तू दोनों हाथोंसे चिपटाता है तो मुझे बड़ा ही अच्छा लगता है ॥ ७० ॥ आज भोजन कियेहुए मुझे आठवाँ समय

रस्य कृशोऽस्य मे। येनाहं कुरुशार्दूल शक्नोमि न विचेष्टितुम् ॥ ७१ ॥ व्यायामश्चायमत्यर्थं कृतस्त्वामभियाचता। ततो ग्लानमनस्तात नष्टसंज्ञ इवाभवम् ॥ ७२ ॥ तव चामृतरसप्रख्यं हस्तस्पर्शमिमं प्रभो। लब्ध्वा संजीवितोऽस्मीति मन्ये कुरुकुलोद्वह ॥ ७३ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पित्रा ज्येष्ठेन भारत। पस्पर्श सर्वगात्रेषु सौहार्दात्तं शनैस्तदा ॥ ७४॥ उपलभ्य ततः प्राणान् धृतराष्ट्रो महीपतिः। बाहुभ्यां संपरिष्वज्य मूर्ध्न्याजिघ्रत पाण्डवम्॥७५॥ विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशम्। अतिदुःखात्तु राजानं नोचुः किंचन

है, इसलिये हे कुरुसिंह! मुझमें हाथ पैर हिलाने तककी शक्ति नहीं है ॥ ७१ ॥ हे तात! तुझसे याचना करनेमें भी मुझे इस समय बड़ा परिश्रम पड़ा है, इससे मेरा मन ग्लानि पागया और मुझे मूर्छासी आगयी ॥ ७२ ॥ हे कुरुकुलके भारको उठानेवाले राजन्! तेरा हाथका स्पर्श मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसीने अमृत छिड़कदिया, इसलिये मेरी समझमें मैं दुसराकर जीवित होगया हूँ ॥ ७३ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे जनमेजय! पिताके बड़े भाईने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे ऐसा कहा, तब युधिष्ठिरने धीरे२ मित्रभावसे उनके सब अङ्गोंपर हाथ फेरा ॥७४॥ तब तो राजा धृतराष्ट्रने मानो अपनेमें प्राण (बल) आगया हो, इसप्रकार दोनों भुजाओंसे गोदीमें लेकर युधिष्ठिरका मस्तक सूँघा ॥ ७५ ॥ और विदुर आदि वे सब लोग अतिदुःखी होतेहुए इस स्नेहभावको देखकर प्रेमके मारे रो पड़े, परन्तु युद्धमें हुई मारकाटके कारण अतिदुःखसे व्याकुलहुए उन्होंने कसठ

पाण्डवम् ॥ ७६ ॥ गान्धारी त्वेव धर्म्मज्ञा मनसोद्वहती भृशम् । दुःखान्यधारयद्राजन्मैवमित्येव चाब्रवीत् ॥७७॥ इतरास्तु स्त्रियः सर्वाः कुन्त्या सह सुदुःखिताः । नेत्रैरागतविक्लेदैः परिवार्य स्थिताभवन् ॥ ७८ ॥ अथाब्रवीत् पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् । अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ ॥ ७६ ॥ ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः । न मामतः परं पुत्र परिक्लेष्टुमिहार्हसि ॥ ८० ॥ तस्मिंस्तु कौरवेन्द्रे तं तथा ब्रुवति पाण्डवम् । सर्वेषामेव योधानामार्त्तनादोऽभवन्महान् ॥ ८१ ॥ दृष्ट्वा कृशं विवर्णं च राजानमतथोचितम् । उपवासपरिश्रान्तं त्वगस्थिपरिवारणम् ॥ ८२॥ धर्मपुत्रः स्वपितरं

मर आनेसे युधिष्ठिरसे कुछ नहीं कहा ॥ ७६ ॥ परन्तु धर्मको जाननेवाली गान्धारी तो मनमें ही बड़ी दुःखी होरही थी, हे राजन् ! वह दुःखको मनमें ही दबाकर कहनेलगी, कि–ऐसा न करो ॥ ७७ ॥ कुन्तीके साथमें महादुःखित होती हुई दूसरी सब स्त्रियें भी नेत्रोंमें आँसू भरेहुए उसको घेरकर खड़ी होगयीं ॥ ७८ ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे फिर इसप्रकार कहा, कि–हे भरतसत्तम राजन् ! तू मुझे तप करनेकी आज्ञा दे ॥ ७६ ॥ हे तात ! वार २ कहते २ मेरा मन घबड़ाया जाता है, हे पुत्र ! अब मुझे इससे अधिक दुःख देना तुझे उचित नहीं है ॥ ८० ॥ जब वह कौरवेन्द्र धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहरहे थे उस समय तहाँ सब योधाओंका एक बड़ाभारी दुःखभरा शब्द होरहा था ॥ ८१ ॥ उन राजा धृतराष्ट्रको दुर्बल हुए, फीके पड़ेहुए, वर्त्तमान दशाके अयोग्य, उपवासके कारण अत्यन्त थकेहुए और केवल

परिष्वज्य महाप्रभम् । शोकजं बाष्पमुत्सृज्य पुनर्वचन-
मब्रवीत् ॥८३॥ न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवीं तथा।
यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परन्तप ॥ ८४ ॥ यदि
चाहमनुग्राह्यो भवतो दयितोऽपि वा । क्रियतां तावदा-
हारस्ततो वेत्स्याम्यहं परम् ॥ ८५ ॥ ततोऽब्रवीन्महा-
तेजा धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् । अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुंजी-
यामिति कामये ॥ ८६ ॥ इति ब्रुवति राजेन्द्रे धृतराष्ट्रे
युधिष्ठिरम् । ऋषिः सत्यवतीपुत्रो व्यासोऽभ्येत्य वचो-
ऽब्रवीत् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि धृतराष्ट्रनिर्वेदे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हड्डी चमड़ामात्र शेष रहे देखकर ॥८२॥ धर्मपुत्र युधि-
ष्ठिरने उन महाप्रभुको छातीसे लगाया और शोकसे
उत्पन्नहुए आँसुओंको बहातेहुए फिर यह बात कहने
लगे, कि–॥८३॥ हे नरेन्द्र ! मुझे जीनेकी या इस राज्य
की कुछ चाहना नहीं है, हे राजेन्द्र ! हे शत्रुतापन !
जिसमें आपकी प्रसन्नता हो मैं वही करना चाहता
हूँ ॥ ८४ ॥ यदि मैं आपके अनुग्रह करने योग्य होऊँ
अथवा यदि मैं आपको प्रिय लगता होऊँ तो कुछ भोजन
करलीजिये, और कुछ मुझे पीछेसे सूझेगा ॥ ८५ ॥ यह
सुनकर महातेजस्वी धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा, कि–हे
पुत्र ! मेरी भी इच्छा है, कि–तेरे कहनेसे कुछ खालूँ ८६
राजेन्द्र धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहरहे थे, कि–इतनेमेंह
सत्यवतीके पुत्र व्यास ऋषि तहाँ आपहुँचे और उन्होंने
यह बात कही ॥ ८७ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

व्यास उवाच । युधिष्ठिर महाबाहो यथाह कुरुनन्दनः।
धृतराष्ट्रो महातेजास्तत् कुरुष्वाविचारयन् ॥ १ ॥ अयं
हि वृद्धो नृपतिर्हतपुत्रो विशेषतः । नेदं कृच्छ्रं चिचरितं
सहेदिति मतिर्मम ॥ २ । गान्धारी च महाभागा प्राज्ञा
करुणवेदिनी । पुत्रशोकं महाराज धैर्येणोद्वहते भृशम् ३
अहमप्येतदेव त्वां ब्रवीमि कुरु मे वचः । अनुज्ञां लभतां
राजा मा वृथेह मरिष्यति ॥४॥ राजर्षीणां पुराणानामनु-
यातु गतिं नृपः।राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमुपाश्रयः॥५
वैशम्पायन उवाच ।इत्युक्तः स तदा राजा व्यासेनाद्भुत-
कर्म्मणा । प्रत्युवाच महातेजा धर्मराजो महामुनिम् ६

व्यासजीने कहा, कि–हे महाबाहु युधिष्ठिर ! हे महा-
तेजस्वी कुरुनन्दन ! धृतराष्ट्रने जैसा कहा है, ऐसा ही
करो, इसमें कुछ विचार न करो ॥ १ ॥ यह राजा बूढ़ा
होगया है, विशेषकर इसके पुत्र नष्ट होगये हैं, मेरी
समझमें तो यह अब इस दुःखको अधिक समय तक नहीं
सहसकेगा ॥२॥ और हे महाराज ! महाभाग्य, बुद्धिमती
दयाजनक भावको समझने वाली यह गान्धारी भी पुत्र-
मरणके महाशोकको धीरज धरकर सहरही है ॥ ३ ॥ मैं
भी तुझसे यही कहता हूँ, तू मेरा कहना कर, तू इस
राजाको आज्ञा देदे, इसका यहाँ मरना निरर्थक है, ऐसा
नहीं होना चाहिये ॥ ४ ॥ यह राजा पुरातन राजर्षियोंके
मार्गसे चले, यही ठीक है, सब राजर्षि अन्तकालमें
वनका ही आश्रय लेते आये हैं ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते
हैं, कि–अद्भुतकर्मा व्यासजीके ऐसा कहनेपर उस समय
महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने महामुनि व्यासजीको
उत्तर दिया, कि–॥ ६ ॥ हे भगवन् ! आप ही हमारे

मगवानेव नो मान्यो भगवानेव नो गुरुः । भगवानस्य राज्यस्य कुलस्य च परायणम् ॥ ७ ॥ अहं ते पुत्रो भगवन् पिता राजा गुरुश्च मे । निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तः स तु तं प्राह व्यासो वेदविदांवरः । युधिष्ठिर महातेजाः पुनरेव महाकविः ॥ ९ ॥ एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत । राजायं वृद्धतां प्राप्तो प्रमाणे परमे स्थितः ॥ १० ॥ सोऽयं मयाभ्यनुज्ञातस्त्वया च पृथिवीपतिः । करोतु स्वमभिप्रायं माऽस्य विघ्नकरो भव ॥ ११ ॥ एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर । समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ पित्रा तु तव राजेन्द्र पाण्डुना पृथिवी-

---

मान्य हैं और आप ही हमारे गुरु हैं तथा इस राज्य और कुलके परम आश्रय भी आप ही हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरे पिता हैं, और यह राजा धृतराष्ट्र भी मेरे बड़े हैं, धर्म यही है, कि–पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करे ॥८॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी महाकवि व्यासजीने राजा युधिष्ठिरसे फिर कहा, कि–॥ ९ ॥ हे भरतवंशी महाबाहो ! तू जैसा कहरहा है, वह सत्य ही है, यह राजा बूढ़ा होगया और अब अन्तिम अवस्थाको पहुँचगया है ॥ १० ॥ इसलिये मेरी और तेरी संमतिसे यह राजा भले ही अपनी इच्छानुसार वनको जाय, तू इसमें विघ्न न डाल ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर ! राजर्षियोंका यही परमधर्म है, कि–या तो रणमें मरण हो, नहीं तो वनमें जाकर शास्त्रकी विधिके अनुसार शरीरको त्याग दें ॥१२॥ हे राजेन्द्र ! तेरे पिता

त्विला । शिष्यवृत्तेन राजायं गुरुवत् पर्युपासितः ॥१३॥ क्रतुभिर्दक्षिणावद्भी रत्नपर्वतशोभितैः । महद्भिरिष्टं गौर्भुक्ता प्रजाश्च परिपालिताः ॥ १४ ॥ पुत्रसंस्थश्च विपुलं राजन् विप्रोषिते त्वयि । त्रयोदशसमा भुक्तं दत्तञ्च विविधं वसु ॥ १५ ॥ त्वया चायं नरव्याघ्र गुरुशुश्रूषयानघ । आराधितः सभृत्येन गांधारी च यशस्विनी ॥ १६ ॥ अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपोविधौ । न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोऽपि युधिष्ठिर ॥१७॥ वैशम्पायन उवाच।एतावदुक्त्वा वचनमनुमान्य च पार्थिवम्। तथास्त्विति च तेनोक्तः कौन्तेयेन ययौ वनम् ॥ १८ ॥ गते भगवति व्यासे राजा पांडुसुतस्तदा । प्रोवाच पितरं

पृथिवीपति पाण्डुने शिष्यभावसे इस राजाकी गुरुकी समान सेवा की थी ॥१३॥ इसने दक्षिणाओंवाले, रत्नोंके बड़े २ पर्वतोंसे शोभायमान यज्ञ करलिये, पृथ्वीका राज्य भोगलिया और प्रजाका पालन भी किया ॥१४॥ जब तू तेरह वर्षतक देशके बाहर रहा था, उस समय इसने विशाल राज्य पुत्रोंको देकर उसका सुख भोगा और भाँति २ के धनोंका दान किया ॥ १५ ॥ और हे निष्पाप राजन् ! अब तूने और तेरे सेवकोंने अपना बड़ा मानकर इसकी और यशस्विनी गान्धारीकी सेवा की १६ हे युधिष्ठिर ! अपने पितासमान धृतराष्ट्रको आज्ञा दे, अब इसका समय तपस्यामें ही बीतना चाहिये, तेरे ऊपर इसको जरा भी क्षोभ नहीं है ॥ १७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रको आज्ञा दी और जब युधिष्ठिरने बहुत अच्छा कहकर स्वीकार करलिया तब व्यासजी वनको चलेगये ॥१८॥ भगवान् व्यासजीके

वृद्धं मन्दं मन्दमिवाब्रवीत् ॥ १९ ॥ यदाह भगवान् व्यासो यच्चापि भवतो मतम् । यथाह च महेष्वासः कृपो विदुर एव च ॥२०॥ युयुत्सुः संजयश्चैव तत् कर्त्तास्म्यहमञ्जसा । सर्वे एव हि मान्या मे कुलस्यास्य हितैषिणः॥२१ इदन्तु याचे नृपते त्वामहं शिरसा नतः। क्रियतां तावदाहारस्ततो गच्छाश्रमं प्रति ॥ २२ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् । ययौ स्वभवनं राजा गांधार्यानुगतस्तदा॥१॥ मन्दप्राणगतिर्धीमान् कृच्छ्रादिव समुद्वहन्। पदानि स

चलेजाने पर राजा युधिष्ठिरने नीचेको मुख करके धीरे २ अपने बूढ़े ताऊसे कहा, कि-॥१९॥ भगवान् व्यासजीने जो कुछ कहा, जो कुछ आपने विचारा है, तथा महाधनुषधारी कृपाचार्य और विदुरने जो कुछ कहा है।२०। तथा युयुत्सु और सञ्जयने जो कुछ कहा है मैं निःसन्देह ऐसा ही करूँगा, ये सब मेरे मान्य और इस कुरुकुलके हितैषी हैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे राजन् ! मैं शिर झुकाकर आपसे इतना ही माँगता हूँ, कि-आप दोनों पहले भोजन करलीजिये, तब आश्रमको जाइये ॥२२॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर प्रतापी राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ अपने महलमें चलेगये ॥१॥ जिसका प्राण (बल) मन्द पड़गया था, इसकारण जिसकी चलनेकी शक्ति मन्द पड़गयी थी ऐसा वह बुद्धिमान राजा एक बूढ़े गजराजकी

महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा ॥२॥ समन्वगच्छद्विदुरो विद्वान् सूतश्च सञ्जयः । स चापि परमेष्वासः कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ३ ॥ स प्रविश्य गृहं राजन् ,कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठानाहारमकरोत्तदा ॥ ४ ॥ गान्धारी चैव धर्मज्ञा कुन्त्या सह मनस्विनी । वधूभिरुपचारेण पूजिताभुंक्त भारत ॥ ५ ॥ कृताहारं कृताहाराः सर्वे ते विदुरादयः । पाण्डवाश्च कुरुश्रेष्ठमुपातिष्ठन्त तं नृपम् ॥ ६ ॥ ततोऽब्रवीन्महाराज कुन्तीपुत्रमुपह्वरे । निषण्णं पाणिना पृष्ठे संस्पृशन्नम्बिकासुतः ॥ ७ ॥ अप्रमादस्त्वया कार्यः सर्वथा कुरुनन्दन । अष्टाङ्गे राजशार्दूल राज्ये धर्मपुरस्कृते ॥ ८ ॥ तत्तु शक्यं महाराज

समान बड़े दुःखसे शरीरको लेकर पैदल चलसका ॥२॥ विद्वान् विदुर, सूत सञ्जय और शरद्वान्के पुत्र महाधनुषधारी कृपाचार्य ये तीनों धृतराष्ट्रके पीछे २ गये ॥३॥ राजा धृतराष्ट्रने महलमें जाकर अपनी पूर्वाह्णकी क्रिया की और फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करदिया तब भोजन किया ॥ ४ ॥ हे भारत ! धर्मको जाननेवाली और बुद्धिमती गांधारीने भी कुन्तीके सहित अपने बहुओंके हाथ से सत्कारके साथ भोजन किया ॥ ५ ॥ इनके भोजन करलेने पर विदुर आदि सबोंने भोजन किया, तथा पांडव भी भोजनसे निबटकर कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रके पास फिर आये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! उस समय अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने एकान्तमें पास बैठेहुए युधिष्ठिरसे उनकी पीठपर अपना हाथ फेरते हुए कहा ॥ ७ ॥ हे राजसिंह ! हे कुरुनन्दन ! कभी असावधान न रहना धर्म जिनमें सबसे आगे है ऐसे आठ अङ्गोंवाले राज्यको

रक्षितुं पाण्डुनन्दन । राज्यं धर्मेण कौन्तेय विद्वानसि निबोध तत् ॥९॥ विद्यावृद्धान् सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर । शृणुयास्ते च यद् ब्रूयुः कुर्याश्चैवाविचारयन्॥१०॥ प्रातरुत्थाय तान् राजन् पूजयित्वा यथाविधि । कृत्यकाले समुत्पन्ने पृच्छेथाः कार्यमात्मनः ॥ ११ ॥ ते तु सम्मानिता राजंस्त्वया कार्या हितार्थिना । प्रवक्ष्यन्ति हितं तात सर्वथा तव भारत ॥ १२ ॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत् परिपालय । हितायैव भविष्यन्ति रक्षितं द्रविणं यथा ॥१३॥ अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहान् शुचीन् । दान्तान् कर्मसु पुण्यांश्च पुण्यान् सर्वेषु योजयेः ॥ १४ ॥ चारयेथाश्च सततं चारैरविदितैः

बड़ी सावधानीसे चलाना ॥ ८ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! हे कुन्तीके पुत्र ! हे महाराज ! राज्यकी रक्षा धर्मसे हो सकती है,तू समझदार है, इसलिये उस धर्मको मुझसे सुन॥९॥हे युधिष्ठिर ! जो विद्यामें बड़े हों । उनका सदा सङ्ग करना, वे जो कुछ कहें उसको सुनना और बिना सङ्कोचके वैसा ही करना १० हेराजन् ! प्रातःकाल ही उठकर उनका यथाविधि पूजन करना और जब काम करनेका समय आवे तो उनसे अपने कर्त्तव्यको बूझना ११ हे राजन् ! अपना काम और हित साधनेके लिये तू उनका सन्मान करना, हे तात ! ये सर्वथा तेरे हितकी ही बात कहेंगे ॥ १२ ॥ और अपनी सब इन्द्रियोंको घोड़ोंकी समान वशमें रखना, तब वे रक्षा कियेहुए धनकी समान तेरा हित ही करेंगी॥१३॥ प्रामाणिकपनमें परीक्षा लियेहुए, पिता और पितामहके समयके, शुद्ध बर्त्तावचाले, संयमी, कुलीन और पुण्यकर्म करनेवाले

परैः। परीक्षितैर्बहुविधैः स्वराष्ट्रपरिवासिभिः ॥ १५ ॥ पुरं च ते सुगुप्तं स्याद् दृढप्राकारतोरणम्। अट्टाट्टालकसम्बाधं षट्पदं सर्वतो दिशम्॥ १६॥ तस्य द्वाराणि सर्वाणि पर्याप्तानि बृहन्ति च। सर्वतः सुविभक्तानि यन्त्रैरारक्षितानि च ॥१७॥ पुरुषैरलमर्थस्ते विदितैः कुलशीलतः। आत्मा च रक्ष्यः सततं भोजनादिषु भारत ॥ १८ ॥ विहाराहारकालेषु माल्यशय्यासनेषु च। स्त्रियश्च ते सुगुप्ताः स्युर्वृद्धैराप्तैरधिष्ठिताः ॥ १९ ॥ शीलवद्भिः

मन्त्रियोंको ही सदा काममें लगाना॥१४॥ और बहुत कुछ परीक्षा करके देखेहुए, तेरे अपने ही राज्यमें रहनेवाले और जिनको शत्रु न पहिचानते हों ऐसे दूतोंके द्वारा तू निरन्तर ध्यान लगाकर काम कराना ॥ १५ ॥ अपने नगरकी खूब रक्षा किये रहना, उसकी दीवारें और तोरण (सदर दरवाजा) खूब मजबूत रखना, किले पर जहाँ तहाँ ऊँची अट्टालिकायें (बुरुज) होनी चाहियें और वे बुरुज चारों ओर छः २ पगकी दूरी पर होने चाहियें ॥ १६ ॥ उसके सब द्वार अच्छे बड़े होने चाहियें, सब ओर ठीक बटेहुए और उनकी खोलने तथा बन्द करनेके यंत्रोंसे रक्षा करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे राजन्! जिनका कुल और शील मालूम हो ऐसे पुरुषोंसे अपना काम साधना और हे राजन्! भोजन आदिमें सदा अपने आत्माकी रक्षा करना ॥१८॥ तथा विहार और आहारके समय, मालायें पहरते समय तथा शय्या और आसन पर जाते समय निरन्तर अपनी रक्षा करना, अपनी स्त्रियोंकी अच्छी तरह रक्षा करना और उनकी देख रेखके लिये वृद्ध तथा आप्त पुरुषोंको नियत करना ॥ १९ ॥ हे

कुलीनैश्च विद्वद्भिश्च युधिष्ठिर । मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान् विद्याविशारदान् ॥२०॥ विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून् । तैः सार्द्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह॥२१॥समस्तैरपि च व्यस्तैर्व्यपदेशेन केनचित् । सुसंवृत्तं मन्त्रगृहं स्थलं चारुह्य मन्त्रयेः ॥ २२ ॥ अरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथंचन । वानराः पक्षिण-श्चैव ये मनुष्यानुसारिणः ॥२३॥ सर्वे मन्त्रगृहे वर्ज्या ये चापि जडपङ्गवः । मन्त्रभेदे हि ये दोषा।भवन्ति पृथि-वीक्षिताम्२४न ते शक्याः समाधातुं कथञ्चिदिति मे मतिः॥

युधिष्ठिर ! वे स्त्रियोंके रक्षक शीलवान्, कुलीन और विद्वान् होने चाहियें तथा विद्यामें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपने मंत्री बनाना ॥ २० ॥ वे विनयवान्, कुलीन, धर्म और अर्थके विषयमें कुशल तथा सरल-सच्चे हों, उनके साथ गुप्त विचार करना, परन्तु बहुतसोंके साथ और अधिक समय तक न करना ॥ २१ ॥ कभी कारणवश उन सबोंके साथ संमति करना अथवा उनके एक भागके साथ करना, अच्छे प्रकारसे रक्षित मंत्रणागृहमें या किसी स्थान पर जाकर संमति करना ॥२२॥ अथवा झाड़झङ्काररहित वनमें जाकर संमति करना, परन्तु रातमें तो कभी संमति करना ही नहीं, बन्दर, पक्षी तथा मनुष्योंके पीछे२ चलनेवाले जो प्राणी हों, उन सबोंको तथा मूर्ख और पङ्गुओंको भी मंत्रणागृहमेंसे बाहर निकालदेना, क्योंकि-पृथिवीकी इच्छा रखनेवालोंको संमतिके प्रकट होजानेसे जो हानि होती है ॥ २३-२४ ॥ मेरी समझमें उसकी सम्हाल किसीप्रकार भी नहीं हो सकती, संमति प्रकट होजानेकी हानियें अपने मंत्रिमण्डल

दोषांश्च मन्त्रभेदस्य ब्रूयास्त्वं मन्त्रिमण्डले ॥ २५ ॥ अभेदे च गुणा राजन् पुनः पुनररिन्दम। पौरजानपदानां च शौचाशौचे युधिष्ठिर ॥ २६ ॥ यथा स्याद्विदितं राजंस्तथा कार्यं कुरूद्वह । व्यवहाराश्च ते तात नित्यमाप्तैरधिष्ठितैः ॥२७॥ योज्यास्तुष्टैर्हितै राजन् नित्यश्चारैरधिष्ठिताः॥ परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत॥२८॥प्रणयेयुर्यथान्यायं पुरुषास्ते युधिष्ठिर। आदानरुचयश्चैव परदाराभिमर्शिनः ॥२९॥ उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्याव्याहारिणस्तथा। आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हर्तारः साहसप्रियाः॥३०॥

को सदा सुनाते रहना ॥ २५ ॥ तथा हे शत्रुओंको दबाने वाले राजन्! मंत्रभेद न होनेके गुण भी सुनाना, हे कुरुकुलको चलानेवाले राजा युधिष्ठिर! तेरे नगर और प्रान्तोंमें रहनेवालोंके भले और बुरे बर्त्तावकी तुझे खबर रहे, ऐसा प्रबन्ध रखना और हे राजन्! न्यायनिर्णयके कामका अधिकार विश्वासपात्र पुरुषोंको सौंपना २६-२७ हे युधिष्ठिर! न्यायाधिकार पर सन्तोषी और तेरा हित चाहनेवाले पुरुषोंको ही नियत करना और उनके पीछे ऐसे ही दूत लगाये रखना, क्योंकि-हे भारत! जैसा अपराध हो उसको समझकर दण्ड देने योग्यको ही दण्ड देना चाहिये ॥ २८ ॥ हे युधिष्ठिर! तेरे अधिकारियोंको यथोचित न्याय करना चाहिये, हे युधिष्ठिर! जिनका स्वभाव धन लेनेका(रिश्वत लेनेका)हो और जो परस्त्रियों पर बलात्कार करते हों२९जो उग्र दण्ड देनेमें लुब्ध हों तथा जो मिथ्या बकवाद करनेवाले हों, जो परनिन्दक, लोभी, धन छीननेवाले तथा जो साहस (खून करना आदि) के प्रेमी हों॥३०॥ जो सभा और विहारस्थानोंको

समाविहारसंसारो वर्णानां च प्रदूषकाः । हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्त्तव्या देशकालतः ॥३१॥प्रातरेव हि पश्येथा ये कुर्युर्व्ययकर्म ते । अलङ्कारमथो भोज्यमत ऊर्ध्वं समाचरेः॥३२॥पश्येथाश्च ततो योधान् सदा त्वं प्रतिहर्षयन् । दूतानां च चराणां च प्रदोषस्ते सदा भवेत् ॥ ३३ ॥ सदा चापररात्रान्ते भवेत् कार्यार्थनिर्णयः । मध्यरात्रे विहारस्ते मध्याह्ने च सदा भवेत् ॥ ३४ ॥ सर्वे त्वौपयिकाः कालाः कार्याणां भरतर्षभ । तथैवालंकृतः काले तिष्ठेथा भूरिदक्षिण॥३५॥चक्रवत्तात कार्याणां पर्यायो दृश्यते सदा । कोषस्य निचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा॥३६॥ विवि-

---

भङ्ग करनेवाले हों तथा जो वर्णोंको अतिदूषित करनेवाले हों इन सर्वोंको देशकालके अनुसार सुवर्ण मुद्राओंका दण्ड देना चाहिये या मरवादेना चाहिये ॥३१॥ जिनको तेरे खर्चका अधिकार हो उनसे प्रातःकाल ही मिलना चाहिये, फिर राजाको शृङ्गार करना चाहिये और तदनन्तर भोजन करना चाहिये ॥३२॥ तदनन्तर नित्य सेनापतियोंसे मिलना चाहिये और उनको सदा प्रसन्न रखना चाहिये तथा साँझके समय नित्य दूतोंसे तथा चरोंसे (दूसरे राज्योंका समाचार लानेवालोंसे) मिलना चाहिये ॥ ३३ ॥ और सदा पहरभर रात्रि बीतजाने पर कार्यका तथा अर्थका निर्णय करना चाहिये, मध्यरात्रिमें और मध्याह्नके समय भी घूमना चाहिये ॥३४॥ हे भरतसत्तम ! काम करनेके लिये सब समयको योग्य जानना तथा समयानुसार वस्त्राभूषणोंसे सजकर खूब दक्षिणा (इनाम)देना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे तात ! चक्रकी समान कार्योंका क्रम सदा घूमता रहता है, और राजाको सदा

धस्य महाराज विपरीतं विवर्जयेः । चारैर्विदित्वा शत्रूंश्च ये राज्ञामन्तरैषिणः॥३७॥तानाप्तैः पुरुषैर्दूराद्धातयेथा नराधिप । कर्म दृष्ट्वाथ भृत्यांस्त्वं वरयेथाः कुरूद्वह॥३८॥कारयेथाश्च कर्माणि युक्तायुक्तैरधिष्ठितैः । सेनाप्रणेता च भवेत्तव तात दृढव्रतः ॥३९॥ शूरः क्लेशसहश्चैव हितो भक्तश्च पूरुषः॥सर्वे जनपदाश्चैव तव कर्माणि पांडव४० गोवद्रासभवच्चैव कुर्युर्ये व्यवहारिणः । स्वरन्ध्रं पररन्ध्रञ्च स्वेषु चैव परेषु च॥ ४१॥उपलक्षयितव्यन्ते नित्य-

न्यायसे खजाना भरनेका उद्योग करना चाहिये ॥३६॥ हे महाराज ! अनेकों प्रकारके विपरीत भावोंको त्यागदेना चाहिये और राजाओंके भीतरी भावको जानना चाहनेवालोंको गुप्त दूतोंके द्वारा उनमेंसे शत्रुओंको पहचान कर ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! दूरसे ही अपने विश्वासपात्र पुरुषोंके द्वारा उनको मरवादेना चाहिये, हे कुरुकुलको चलानेवाले ! कामकाज देखकर तुझे अपने नौकर देखने चाहियें ॥ ३८ ॥ और नियुक्त कियेहुए तथा नियुक्त न कियेहुए अधिकारियोंसे अपने काम करवाने चाहियें हे तात! तेरा सेनापति, दृढव्रतधारी होनाचाहिये (जैसा कहे वैसा ही करे) ॥ ३९ ॥ शूर, दुःख सहसकनेवाला, तेरा हित चाहनेवाला, तेरा भक्त तथा पुरुषार्थी होना चाहिये, हे पाण्डव ! प्रान्तोंमें रहनेवाले सब लोगोंको तेरे काम करने चाहियें ॥ ४० ॥ गौकी समान (केवल भोजनमात्रको वेतन लेकर काम करनेवाले) अथवा गधेकी समान बैठे रहनेवाले जो तेरे कार्यकर्त्ता हों, उनको काम करना चाहिये, तथा अपनेमें अपने छिद्रोंको और दूसरोंमें दूसरोंके छिद्रोंको ॥ ४१ ॥ हे युधिष्ठिर ! सदा

मेव युधिष्ठिर। देशजाश्चैव पुरुषा विक्रान्ताः स्वेषु कर्मसु॥४२॥ याभिरनुरूपाभिरनुग्राह्या हितास्तथा। गुणार्थिनां गुणः कार्यो विदुषा वै जनाधिप। अविचार्याश्च ते ते स्युरचला इव नित्यशः॥ ४३॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासि पर्वणि आश्रमवास-पर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

धृतराष्ट्र उवाच। मण्डलानि च बुध्येथाः परेषामात्मनस्तथा। उदासीनगणानां च मध्यस्थानां च भारत १ चतुर्णां शत्रुजातानां सर्वेषामाततायिनाम्। मित्रं चामित्र-मित्रं च योद्धव्यन्तेऽरिकर्षण२ तथामात्या जनपदा दुर्गाणि

ध्यानमें रखना तथा जो अपने देशमें उत्पन्न हुए हों और अपने काममें चतुर हों॥ ४२॥ उनसे व्यावहारिक काम करवाकर उनके हितके लिये तुझे अनुग्रह करना चाहिये, हे राजन्! चतुर मनुष्यको चाहिये, कि-लाभ चाहने वाले पुरुषोंसे काम लेकर उनका लाभ करदेय और उन मनुष्योंके विषयमें अधिक विचार या चिन्ता न करे, क्योंकि-वे पर्वतकी समान अटल होते हैं॥४३॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥ ❀ ॥ ❀ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे भारत! तुझे दूसरोंके, अपने, उदासीन और तटस्थ टोलियोंके जो मण्डल(कर देनेवाले राजे या स्वतंत्र राजे) हों,उनको जानते रहना चाहिये १ हे शत्रुसूदन! चार प्रकारके शत्रुओंको और आततायी मण्डलोंको भी जानते रहना चाहिये, शत्रुको और शत्रुके मित्रको भी जानना चाहिये॥ २॥ तथा उनके मंत्री, प्रान्तके लोग, अनेकों प्रकारके किलोंके रक्षक और सेनाके लोग भी हे कुरुश्रेष्ठ! मनमाना वर्त्ताव करनेवाले होते हैं,

विविधानि च। बलानि च कुरुश्रेष्ठ भवत्येषां यथेच्छकम् ३
ते च द्वादश कौन्तेय राज्ञां वै विषयात्मकाः। मन्त्रिप्रधानाश्च गुणाः षष्टिर्द्वादश च प्रभो ॥४॥ एतन्मण्डलमित्याहुराचार्या नीतिकोविदाः। तत्र षाड्गुण्यमायत्तं युधिष्ठिर निबोध तत् ॥ ५ ॥ वृद्धिक्षयौ च विज्ञेयौ स्थानञ्च कुरुसत्तम। द्विसप्तत्यां महाबाहो ततः षाड्गुण्यजा गुणाः६यदा स्वपक्षो बलवान् परपक्षस्तथाऽबलः। विगृह्य शत्रून् कौन्तेय जेयः क्षितिपतिस्तदा ॥ ७ ॥ यदा परे तु बलिनः स्वपक्षश्चैव दुर्बलः। सार्द्धं विद्वांस्तदा क्षीणः परैः संधिं समाश्रयेत् ॥८॥ द्रव्याणां संचयश्चैव कर्त्तव्यः

उनको भी जानते रहना चाहिये ॥ ३ ॥ हे कुन्तीनन्दन! ये बारह (चार प्रकारके शत्रु, छः प्रकारके आततायी, शत्रु और शत्रुके मित्र) तो राजाओंके खास विषय हैं अर्थात् इनके ऊपर तो राजाओंको अपने आप ही दृष्टि रखनी चाहिये और हे प्रभो! मंत्री आदिके साठ और बारह मुख्य गुण राजाओंके हैं ।।४।। राजनीतिको जानने वाले आचार्य इसको मण्डल कहते हैं, हे युधिष्ठिर! छः गुणों (संगति, युद्ध, चढ़ाई, स्थान, भेद डालना और समझना) का आधार इनके ऊपर है ।।५।। हे कुरुसत्तम! वृद्धि और क्षय इन दोनोंको जानें और स्थितिको भी जानें तथा हे महाबाहो! बहत्तरको छः गुणोंमेंसे उत्पन्न हुए गुण जानना चाहिये ।। ६ ।। और जब अपना पक्ष बलवान् होय तथा शत्रुका पक्ष निर्बल होय, उस समय शत्रुके साथ विग्रह करके हे कुन्तीनन्दन! शत्रुको जीत लेय ।। ७ ।। जब शत्रु बलवान् हो और अपना पक्ष कमजोर हो, उस समय क्षीणहुए समझदार राजाको शत्रुओंके

सुमहांस्तथा। यदासमर्थो यानाय न चिरेणैव भारत ९ तदा सर्वं विधेयं स्यात् स्थाने न स विचारयेत्। भूमिरल्पफला देया विपरीतस्य भारत ॥१०॥ हिरण्यं कुप्यभूयिष्ठं मित्रं क्षीणमथोऽबलम् । विपरीतान्निगृह्णीत् स्वयं सन्धिविशारदः ॥११॥ संन्ध्यर्थं राजपुत्रं वा लिप्सेथा भरतर्षभ । विपरीतं न तत् श्रेयः पुत्रः कस्यांचिदापदि ॥१२॥ तस्य प्रमोक्षे यत्नञ्च कुर्य्याः सोपायमन्त्रवित् । प्रकृतीनां च राजेन्द्र राजादीनां विभावयेत् ॥१३॥ क्रमेणायुगपत् सर्वं व्यवसायं महाबलः । पीडनं स्तम्भनञ्चैव कोशभङ्गस्त-

---

साथ सन्धि करलेनी चाहिये ॥ ८ ॥ राजाको पदार्थोंका बड़ाभारी संग्रह करना चाहिये, हे भारत ! जब बिना विलंब चढ़ाई करनेकी शक्ति रखता हो॥ ९ ॥ उस समय अपने२ स्थान पर सब करने योग्य तयारियें होनी चाहियें ऐसा विचार रक्खे, हे भारत ! यदि उलटा फल निकले-अपने आप हारजाय तो उस राजाको चाहिये, कि-थोड़ा फल देनेवाली भूमि शत्रुको देदेय॥१०॥चाँदी मिलाहुआ बहुतसा सोना देय, क्षीणहुए निर्बल मित्रको जमानत में देय, परन्तु संधि करनेमें जो राजा चतुर हो तो वह शत्रुसे इसके विपरीत लेय ॥ ११ ॥ हे भरतसत्तम! संधि करनेके लिये शत्रुके राजपुत्रकी ही इच्छा करे (उसको ही जमानतमें माँगे) हे पुत्र ! किसी आपत्तिके समय इसके विपरीत वर्त्ताव करना अच्छा नहीं है ॥ १२ ॥ (यदि दुःख आपड़े तो) मंत्र जाननेवाले राजाको उसमेंसे छूटनेका उपाय करना चाहिये, हे राजेन्द्र ! राजाको अपनी प्रजामें दीन पुरुषोंका सत्कार करना चाहिये१३एक महाबली राजा भी,नित्य शत्रुको पीड़ा न देसके उसको ऐसा

थैव च ।१४॥कार्यं यत्नेन शत्रूणां स्वराज्यं रक्षता स्वयम्। न च हिंस्योऽभ्युपगतः सामन्तो वृद्धिमिच्छता॥१५॥कौन्तेय तं न हिंसेथा यो महीं विजिगोषते । गणानां भेदने योगमीप्सेथा सह मन्त्रिभिः ॥ १६ ॥ साधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणात्तथा । दुर्बलाश्चापि सततं नान्वेष्टव्या बलीयसा ॥१७॥ तिष्ठेथा राजशार्दूल वैतसीं वृत्तिमास्थितः । यद्येनमभियायाच्च बलवान् दुर्बलं नृपः ॥ १८ ॥ सामादिभिरुपायैस्तं क्रमेण विनिवर्त्तयेः । अशक्नुवंश्च युद्धाय निपतेत् सह मन्त्रिभिः ॥१९॥ कोषेन पौरैर्दण्डेन

जड़, धीरे२ वा एक साथ बनादेना चाहिये, उसके भण्डारको तोड़डालनेका उद्योग करना चाहिये ॥ १४ ॥ अपने राज्यकी रक्षा करनेके साथ२ शत्रुके साथ ऐसा वर्त्ताव यत्नके साथ करे, परन्तु अपनी वृद्धि चाहनेवाला सामने आयेहुए सामन्त राजाको मारे नहीं ॥१५॥ हे युधिष्ठिर! पृथिवीका विजय चाहनेवाला तो उसको कदापि न मारे, किन्तु उसके मंत्रियोंसे मिलकर शत्रुमण्डलमें भेद डालने की इच्छा रक्खे ॥१६॥ अच्छे कामोंका और मनुष्योंका संग्रह करे तथा पापियोंको अंकुशमें रक्खे, परन्तु बलवान् राजा दुर्बलोंका नाश कभी न करे ॥१७॥ हे राजशार्दूल! तुझे बेतकीसी नम्रवृत्ति रखना चाहिये, यदि कोई बलवान् राजा दुर्बलके ऊपर चढ़ाई करे ॥१८॥ तो दुर्बल राजा साम आदि उपायोंसे धीरे२ उसको पीछेको लौटादेय, यदि ऐसा न करसके तो अपने मंत्रियों सहित युद्ध करनेको उसके ऊपर टूटपड़े ॥ १९ ॥ और अपने कोशसे नगरवासियोंसे तथा दण्डसे उसको समझावे, कि–जो

ये चास्य प्रियकारिणः । असम्भवे तु सर्वस्य यथामुख्येन निष्पतेत्।क्रमेणानेन मुक्तिः स्यात् शरीरमिति केवलम् २०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच । सन्धिविग्रहमप्यत्र पश्येथा राजसत्तम । द्वियोनिं त्रिविधोपायं बहुकल्पं युधिष्ठिर ॥१॥ कौरव्य पर्युपासीथाश्छित्वा द्वैविध्यमात्मनः । तुष्टपुष्टबलः शत्रुरात्मवानिति च स्मरेत् ॥२॥ पर्युपासनकाले तु विपरीतं विधीयते । आमर्दकाले राजेन्द्र व्यपसर्पेस्ततः परम् ॥३॥ व्यसनं भेदनञ्चैव शत्रूणां कारयेत्ततः । कर्षणं

उसका भला चाहनेवाले हों, परन्तु इन सब उपायोंसे काम न होय तो अपनी मुख्य सेनाको लेकर उसके ऊपर टूटपड़े, इस प्रकार अपना बचाव होता है ॥ २० ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे राजसत्तम ! संधि और विग्रह दोनोंका इस विषयमें विचार करना चाहिये, हे युधिष्ठिर ! (संधि और विग्रह हरएक) दो मूलवाले हैं, इनके उपाय त्रिविध और अनेकों प्रकारके हैं ॥ १ ॥-हे कुरुनन्दन !स्थिर होकर अपनी दोनों प्रकारकी (बलवान्पनेकी और निर्बलताकी) दशाको देखकर शत्रुसे व्यवहार करे और शत्रु अपनी समान तुष्ट और पुष्ट सेनावाला है, यह याद रक्खे ॥ २ ॥ शत्रुको सहायता देनेके समय असन्तोषी और दुर्बल सेनासे काम लेय और हे राजेन्द्र ! जब शत्रुसे लड़नेका अवसर आवे तो श्रेष्ठ सेनाको काममें लावे ॥ ३ ॥ शत्रुओंको दुःखी करना, शत्रुओंमें आपसमें भेद डलवाना, उनको सुखादेना,(अन्न जल

भीषणञ्चैव युद्धं चैव बलक्षयम् ॥४॥ यथास्थमानो नृप त्रिविधां परिचिन्तयेत् । आत्मनश्चैव शत्रोश्च शक्ति शास्त्रविशारदः ॥५॥उत्साहप्रभुशक्तिभ्यां मन्त्रशक्त्या च भारत । उपपन्नो नृपो यायाद्विपरीतं च वर्जयेत् ६ आददीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा । अटवीबलं भृतञ्चैव तथा श्रेणीबलं प्रभो ॥७॥तत्र मित्रबलं राजन् मौलं चैव विशिष्यते । श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्ये एवेति मे मतिः ८ तथा चारबलं चैव परस्परसमं नृप । विज्ञेयं बहुकालेषु राज्ञा काल उपस्थिते ॥ ९ ॥ आपदश्चापि बोद्धव्या बहु-

---

आदिका अकाल डलवाकर दुर्बल करदेना) भयदेना, और युद्धमें उसकी सेनाका नाश करना चाहिये ॥ ४ ॥ धावाकरना चाहनेवाला नीतिशास्त्रमें चतुर राजा अपनी तथा शत्रुका तीन प्रकारकी शक्तिको खूब विचार करलेय ५ हे भारत ! उत्साहशक्ति, प्रभुशक्ति और मंत्रशक्तिवाले राजाको चढ़ाई करनी चाहिये, परन्तु अपनी ये शक्तियें ठीक न हों तो चढ़ाई न करे ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! राजाको परम्पराकी (जगीरदारोंकी) मूलसेना, मित्रसेना, जङ्गलियोंकी सेना, नौकरी पर रक्खीहुई सेना तथा देशके मनुष्योंमेंसे चुनीहुई सेनाका संग्रह करना चाहिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इनमें मित्रोंका और जागीरदारोंका सेनादल सबसे बढ़कर होता है और देशवासियोंमेंसे चुनाहुआ तथा नौकरी पानेवाला सेनादल ये दोनों मेरी समझमें एकसे हैं ॥८॥ तथा हे राजन् ! चारों (दूतों) का सेनादल भी परस्पर एकसा ही होता है, राजाको समय आने पर अधिकतर अवसरोंमें इस तत्वको समझे रहना चाहिये ९ हे राजन् ! आपत्तियें भी बहुत प्रकारकी हैं, उनको समझे

रूपा नराधिप। भवन्ति राज्ञां कौरव्य यास्ताः पृथगतः शृणु ॥ १० ॥ विकल्पा बहुधा राजन्नापदां पाण्डुनन्दन। सामादिभिरुपन्यस्य गणयेत्ता नृपः सदा ॥ ११ ॥ यात्रां गच्छेद्बलैर्युक्तो राजा षड्भिः परन्तप। युक्तश्च कालदेशाभ्यां बलैरात्मगुणैस्तथा ॥ १२ ॥ हृष्टपुष्टबलो गच्छेद्राजा वृद्ध्युदये रतः। अकृशश्चाप्यथो यायादनृतावपि पाण्डव १३ तूणाश्मानं वाजिरथप्रवाहां ध्वजद्रुमैः संवृतकूलरोधसम्। पदातिनागैर्बहुकर्दमां नदीं सपत्ननाशे नृपतिः प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥ अथोपपत्त्या शकटं पद्मवज्रञ्च भारत। उशना

रखना चाहिये, हे कुरुनन्दन! राजाओंके ऊपर जो आपत्तियें आकर पड़ती हैं उनको अलग२ कहता हूँ, सुनो १० हे पांडुनन्दन राजन्! आपत्तियोंके बहुतसे भेद हैं, राजाको चाहिये, कि-साम आदिसे आरम्भ करके उनकी गिनती करे ॥ ११ ॥ हे परन्तप! राजा श्रेष्ठ सेनादलोंको साथमें लेकर चढ़ाई करे, देश और कालको जानकर अपनी सेना और अपने गुणोंसे युक्त हुआ ॥ १२ ॥ आनन्दी और बलवान् सेनावाला राजा यदि अपनी वृद्धि और उदयकी चाहना रखता हो तो चढ़ाई करदेय, हे पाण्डव! यदि अशक्त न होय तो बिना मौसमके भी चढ़ाई करदेय ॥ १३ ॥ राजा शत्रुका नाश करनेके लिये भाथेरूप पत्थरोंवाली, घोड़े और रथरूप प्रवाहवाली, ध्वजारूप वृक्षोंसे छायेहुए किनारे और कराड़ोंवाली तथा पैदल और हाथियोंके चलनेसे बहुत ही किचौंदी बनीहुई नदीसे काम लेय (इन सबोंको लेकर चढ़ाई करे) ॥ १४ ॥ फिर हे भारत! युक्ति करके शकटव्यूह, पद्मव्यूह या वज्रव्यूहकी रचना करे, हे विभो! शुक्राचार्य जिस अर्थशास्त्रको जानते थे उसमें

वेद यच्छास्त्रं तत्रैतत् विहितं विभो ॥ १५ ॥ चारयित्वा परबलं कृत्वा स्वबलदर्शनम् । स्वभूमौ योजयेद्युद्धं परभूमौ तथैव च ॥१६ ॥ बलं प्रसादयेद्राजा निक्षिपेद्बलिनो नरान् । ज्ञात्वा स्वविषयं तत्र सामादिभिरुपक्रमेत् ॥१७॥ सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह । प्रेत्य चेह च कर्त्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम् ॥ १८॥ एवमेतन्महाराज राजा सम्यक् समाचरन् । प्रेत्य स्वर्गमवाप्नोति प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ १९॥ एवं त्वया कुरुश्रेष्ठ वर्त्तितव्यं प्रजाहितम्। उभयोर्लोकयोस्तात प्राप्तये नित्यमेव हि ॥ २० ॥भीष्मेण सर्वमुक्तोऽसि कृष्णेन विदुरेण च । मयाप्यवश्यं वक्तव्यं

यह बात कही है ॥१५॥ शत्रुकी सेनाकी संख्या आदिको गुप्त दूतोंके द्वारा जानकर और अपने बलको देखकर अपनी भूमिमें या शत्रुकी भूमिमें युद्ध करनेका उद्योग करे ॥ १६ ॥ राजा अपनी सेनाको पारितोषिक आदिसे प्रसन्न रक्खे, बलवान् मनुष्योंको सुहाने पर रक्खे या निक्षेप (रिजर्व) रक्खे, अपनी दशाको देखकर युद्धके विषयमें साम आदि उपायोंका आरम्भ करदेय ॥ १७ ॥ हे महाराज ! इस लोकमें सब ही प्रकारसे अपने शरीरकी रक्षा करे, इस लोकमें तथा परलोकमें अपने आत्माका परमश्रेय करे ॥ १८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार इन सब बातोंका ठीकर पालन करनेवाला और प्रजाकी धर्मसे रक्षा करनेवाला राजा मरकर स्वर्ग पाता है ॥१९॥ हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ ! हे तात ! इसप्रकार दोनों लोकोंमें सुख पानेके लिये तुझे सदा प्रजाका हित करना चाहिये ॥ २० ॥ भीष्मने, कृष्णने और विदुरने तुझसे सब कुछ कहदिया है और हे राजेन्द्र ! मैं भी तेरे ऊपर प्रीति होनेके कारण

प्रीत्या ते नृपसत्तम ॥ २१ ॥ एतत् सर्वं यथान्यायं कुर्वीथा भूरिदक्षिण । प्रियस्तथा प्रजानां त्वं स्वर्गे सुखमवाप्स्यसि॥२२॥अश्वमेधसहस्रेण यजेत पृथिवीपतिः। पालयेद्वापि धर्मेण प्रजास्तुल्यफलं लभेत् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।एवमेतत् करिष्यामि यथात्थ पृथिवीपते। भूयश्चैवानुशास्योऽहं भवता पार्थिवर्षभ ॥ १ ॥ भीष्मे स्वर्गमनुप्राप्ते गते च मधुसूदने । विदुरे सञ्जये चैव कोऽन्यो मां वक्तुमर्हति ॥ २ ॥ यत्तु मामनुशास्तीह भवानद्य हिते स्थितः । कर्त्तास्मि तन्महीपाल निर्वृतो भव

यह अवश्य कहने योग्य बात कहता हूँ ॥ २१ ॥ हे बहुत सी दक्षिणा देनेवाले ! यह सब तुझे न्यायके साथ करना चाहिये, ऐसा करनेसे तू प्रजाओंका प्यारा होगा और स्वर्गमें सुख पावेगा ॥ २२ ॥ जो राजा हजार अश्वमेध यज्ञ करता है अथवा जो धर्मसे प्रजाका पालन करता है इन दोनोंको समान फल मिलता है ॥ २३ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ॥ छ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि–हे महाराज ! आपने जो कुछ कहा है मैं ऐसा ही करूँगा, हे राजसत्तम ! आप मुझे अभी और उपदेश दीजिये ॥ १ ॥ भीष्म स्वर्गको गये, कृष्ण द्वारकाको चलेगये और अब विदुर तथा सञ्जय भी जारहे हैं, फिर यहाँ और कौन है,जो मुझे उपदेश देगा ॥२ हे महीपाल ! आपने मेरा हित विचारकर इस समय मुझे जो२ उपदेश दिया है, हे राजन् ! मैं ऐसा ही करूँगा, इसके लिये आप निश्चिन्त रहें ॥३॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–

पार्थिव । वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मरा-
जेन धीमता । कौन्तेयं समनुज्ञातुमियेष भरतर्षभ ॥ ४॥
पुत्र संशाम्यतां तावन्ममापि बलवान् श्रमः । इत्युक्त्वा
प्राविशद्राजा गान्धार्या भवनं तदा ॥ ५ ॥ तमासनगतं
देवी गान्धारी धर्मचारिणी । उवाच काले कालज्ञा प्रजा-
पतिसमं पतिम् ।।६।। अनुज्ञातः स्वयं तेन व्यासेन त्वं महर्-
षिणा । युधिष्ठिरस्यानुमते कदारण्यं गमिष्यसि ॥ ७ ॥
धृतराष्ट्र उवाच । गान्धार्यहमनुज्ञातः स्वयं पित्रा महा-
त्मना । युधिष्ठिरस्यानुमते गन्तास्मि न चिराद्वनम् । ८ ।
अहं हि तावत् सर्वेषां तेषां द्यूतदेविनाम् । पुत्राणां
दातुमिच्छामि प्रेतभावानुगं वसु ॥ ६ ॥ सर्वप्रकृतिसा-

हे भरतसत्तम ! बुद्धिमान् धर्मराजके ऐसा कहने पर उन राजर्षिने चाहा, कि–अब युधिष्ठिर मुझे आज्ञा देदे ॥ ४ ॥ और हे पुत्र! अब शान्त हो, मुझे भी बहुत परिश्रम पड़ा है, ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके महलमें चले गये ।।५।। तदनन्तर समयको समझनेवाली धर्मचारिणी देवी गान्धारीने अवसर देखकर आसन पर बैठेहुए प्रजापतिकी समान अपने पतिदेवसे कहा, कि–॥ ६ ॥ महर्षि व्यासजीने स्वयं तुम्हें आज्ञा दे दी है और युधिष्ठिर की भी अनुमति मिलगयी है, अब तुम वनको कब चलोगे? ||७|| धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे गान्धारी ! महात्मा पिताजीने मुझे स्वयं आज्ञा दे दी है और युधिष्ठिरकी भी संमति मिलगयी है, इसलिये अब मैं वनको जानेमें विलंब करना नहीं चाहता ||८|| बस इतनी ही देर है, कि–उन सब जुएका खेलना जैसे दुष्कर्मको करनेवाले पुत्रोंके प्रेतको पहुँचजाय, ऐसी रीतिसे धनका दान करना चाहता हूँ, ९

न्निवर्यं कारयित्वा स्ववेशमनि । वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा धर्मराजाय प्रेषयामास वै तदा ॥ १० ॥ स च तद्वचमात् सर्वं समानिन्ये महीपतिः । ततः प्रतीतमनसो ब्राह्मणाः कुरुजाङ्गलाः ॥ ११ ॥ क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव समाययुः । ततो निष्क्रम्य नृपतिस्तस्मादन्तःपुरात्तदा ॥ १२॥ ददृशे तं जनं सर्वं सर्वाश्च प्रकृतीस्तथा। समवेतांश्च तान् सर्वान् पौरान् जानपदांस्तथा ॥ १३ ॥ तानागतानभिप्रेत्य समस्तांश्च सुहृज्जनम् । ब्राह्मणांश्च महीपाल नानादेशसमागतान् ॥ १४ ॥ उवाच मतिमान् राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । भवन्तः कुरवश्चैव चिरकालं सहोषिताः ॥ १५ ॥ परस्परस्य सुहृदः परस्परहिते रताः । यदिदानीमहं ब्रूयामस्मिन् काल उपस्थिते ॥१६॥

मैं अपने महलमें सब प्रजाओंके सामने ऐसा करकेजाऊँगा वैशम्पायन कहते हैं, कि–उन्होंने ऐसा कहकर धर्मराजको बुलानेके लिये एक नौकरको भेजा ॥१०॥ और धर्मराजने उनके कहनेके अनुसार सब सामग्री लाकर दे दी, फिर जिनके मनमें विश्वास था ऐसे कुरुजाङ्गलदेशमें रहनेवाले ब्राह्मण ॥ ११ ॥ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तहाँ इकट्ठे हुए और फिर उस महलमेंसे बाहर निकल कर राजा धृतराष्ट्रने ॥ १२ ॥ उन सब लोगोंको, सब प्रजाको, नगरके मनुष्योंको तथा ग्रामोंके लोगोंको, इकट्ठे हुए सबोंको ही देखा ॥ १३ ॥ उनको तथा सकल मित्रजनोंको, जुदे २ देशोंसे आयेहुए ब्राह्मणोंको तथा राजाओंको तहाँ उपस्थित देखकर ॥ १४ ॥ अम्बिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि–आप तथा कौरव चिरकाल तक एक साथ रहे हो ॥ १५ ॥ एक दूसरेके मित्र हो, प्रेमके साथ

तथा भवद्भिः कर्त्तव्यमविचार्य वचो मम। अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे ॥ १७ ॥ व्यासस्यानुमते राज्ञस्तथा कुन्तीसुतस्य मे। भवन्तोऽप्यनुजानन्तु मा च वोऽभूद्विचारणा ॥ १८ ॥ अस्माकं भवताञ्चैव येयं प्रीतिर्हि शाश्वती। न च साऽन्येषु देशेषु राज्ञामिति मतिर्मम ॥१९॥ श्रान्तोऽस्मि वयसानेन तथा पुत्रविनाकृतः। उपवासकृशश्चास्मि गान्धारीसहितोऽनघाः ॥ २० ॥ युधिष्ठिरगते राज्ये प्राप्तश्चास्मि सुखं महत्। मन्ये दुर्योधनैश्वर्याद्विशिष्टमिति सत्तमाः २१ मम चान्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य

एक दूसरेका हित करते हो, इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ ॥ १६ ॥ वह मेरी बात तुम सबोंको जरा भी विचार न करके माननी चाहिये, मैंने गान्धारीके सहित वनमें जानेका विचार किया है ॥ १७ ॥ व्यासदेवने मुझे आज्ञा देदी है और कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरने भी मुझे आज्ञा देदी है, अब तुम सब भी मुझे आज्ञा दो और इस विषय में कुछ विचार न करो ॥ १८ ॥ क्योंकि—हमारा तुम्हारा प्रेम सदासे चला आता है, मेरी समझमें दूसरे देशोंमें राजाओंका ऐसा प्रेम नहीं होगा ॥ १९ ॥ मैं इस वृद्ध अवस्थाके कारण शान्त होगया हूँ और पुत्रहीन भी हो गया हूँ, हे निर्दोष महानुभावों! मैं और गान्धारी दोनों उपवास करनेसे दुर्बल होगये हैं ॥ २० ॥ युधिष्ठिरके हाथ में राज्य पहुँचने पर मैंने बड़ा सुख पाया है, हे उत्तम पुरुषों! मैं समझता हूँ, कि—दुर्योधनके ऐश्वर्यसे भी अधिक सुख भोगनेको मिला है॥२१॥नहीं तो अन्ध वृद्ध और पुत्रहीनकी वनको चले जानेके सिवाय और क्या गति होसकती है? इसलिये हे महाभाग्यशाली पुरुषों!

का गतिः । अनुमन्तुमर्हथ वनं महाभागास्तन्मानुज्ञातुमर्हथ॥२२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे ते कुरुजांगलाः। बाष्पसन्दि-
ग्धया वाचा रुरुदुर्भरतर्षभ ॥२३॥ तानविब्रुवतः किञ्चित्
सर्वान् शोकपरायणान्। पुनरेव महातेजा धृतराष्ट्रोऽब्रवी-
दिदम् ॥ २४ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि धृतराष्ट्रकृतवनगमनप्रार्थनेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच। शान्तनुः पालयामास यथावद्वसुधा-
मिमाम्। तथा विचित्रवीर्यश्च भीष्मेण परिपालितः ॥ १ ॥
पालयामास वस्तात विदितार्थो न संशयः ॥ १ ॥ यथा
च पाण्डुर्भ्राता मे दयितो भवतामभूत्। स चापि पाल-
यामास यथावत्तच्च वेत्थ ह ॥ २ ॥ मया च भवतां सम्यक्

अब मुझे आज्ञा देनी चाहिये ॥ २२ ॥ हे भरतसत्तम
जनमेजय! धृतराष्ट्रकी इस बातको सुनकर सब कुरु-
जाङ्गलदेशके रहनेवाले नेत्रोंमें आँसू भरकर गद्गद कंठसे
रोपड़े ॥ २३ ॥ उन सब शोकसे व्याकुल हो अड़खड़ाती
हुई वाणीमें बोलतेहुए मनुष्योंसे महातेजस्वी धृतराष्ट्रने
नीचे लिखे अनुसार फिर कहा-२४ आठवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्रने कहा, कि-शान्तनुने जिसप्रकार इस पृथिवी
की यथोचित रक्षा की थी, तैसे ही भीष्मकी रक्षामें रह
कर हमारे पिता विचित्रवीर्यने भी की थी, यह सब तुम
जानते हो, इसमें सन्देह नहीं है और जैसे मेरे भाई
पाण्डुने इस पृथिवीकी रक्षा की थी और वह आप सबों
का प्यारा रहा था, यह सब भी तुम जानते ही हो और
हे निर्दोष पुरुषों! मैंने भी भली या बुरी तुम्हारी जो
कुछ सेवा, हे महाभाग्यशाली पुरुषों! जब दुर्योधन इस

शुश्रूषा या कृतानघाः ॥३॥ अजस्यमाना महाभागास्तत्
त्वन्तव्यमतन्द्रितैः । यथा दुर्योधनेनेदं भुक्तं राज्यमकण्ट-
कम् ॥ ४ ॥ अपि तत्र न वो मन्दो दुर्बुद्धिरपराद्धवान् ।
तस्यापराधाद्दुर्बुद्धेरभिमानान्महीक्षिताम् ॥ ५ ॥ विमर्दः
सुमहानासीदनयात् स्वकृतादथ । तन्मया साधु वापीदं
यदि वासाधु वै कृतम् ॥ ६ ॥ तद्वो हृदि न कर्त्तव्यं मया
बद्धोऽयमञ्जलिः । वृद्धोऽयं हतपुत्रोऽयं दुःखितोऽयं नरा-
धिपः ॥७॥ पूर्वराज्ञाञ्च पुत्रोऽयमिति कृत्वा तु जानथ ।
इयञ्च कृपणा वृद्धा हतपुत्रा तपस्विनी ॥ ८ ॥ गान्धारी
पुत्रशोकार्त्ता युष्मान् याचति वै मया । हतपुत्राविमौ
वृद्धौ विदित्वा दुःखितौ तथा ॥ ९ ॥ अनुजानीत भद्रं वो

राज्यको निष्कंटक भोगरहा था उस समय की है, वह यदि ठीक न हुई हो तो उसकी आप लोगोंको ध्यान देकर क्षमा करदेनी चाहिये ॥१-४॥ यद्यपि उस दुष्टबुद्धि मूर्ख दुर्योधनने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया था तो भी उस दुष्टबुद्धिके अपराधसे और मेरे अपने कियेहुए अन्यायसे क्षत्रियोंका महान् नाश होगया और आपको भी बड़ा कष्ट उठाना पड़ा यह मैंने भला किया या बुरा इसको आप अपने हृदयमें न रखिये, इसके लिये मैं यह हाथ जोड़रहा हूँ, यह आपका राजा (मैं) बूढ़ा होकर हाथ जोड़रहा हूँ तथा पुत्रोंके मारेजानेसे मैं बड़ा दुःखी होरहा हूँ ॥ ५-७॥ यह पहले राजाओंका पुत्र है, ऐसा विचारकर मुझे आज्ञा दो तथा यह विचारी बूढ़ी हतपुत्रा, तपस्विनी, पुत्रोंके शोकसे पीड़ा पातीहुई गान्धारी मेरे साथमें आपसे याचना करती है, हम दोनोंके पुत्र मारेगये हैं,हम बड़े हैं और दुःखी हैं,ऐसा जानकर आप

प्रजाश्च: शरणं च वः। अयश्च कौरवो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १०॥ सर्वैर्भवद्भिर्द्रष्टव्यः समेषु विषमेषु च। न जातु विषमं चैव गमिष्यति कदाचन ॥ ११॥ चत्वारः सचिवा यस्य भ्रातरो विपुलौजसः। लोकपालसमा ह्येते सर्वधर्मार्थदर्शिनः॥ १२॥ ब्रह्मेव भगवानेष सर्वभूतजगत्पतिः। युधिष्ठिरो महातेजा भवतः पालयिष्यति ॥ १३॥ अवश्यमेव वक्तव्यमिति कृत्वा ब्रवीमि वः। एष न्यासो मया दत्तः सर्वेषां वो युधिष्ठिरः ॥१४॥ भवन्तोऽस्य च वीरस्य न्यासभूताः कृता मया। यदेव तैः कृतं किंचिद्व्यलीकं वः सुतैर्मम ॥ १५॥ यदन्येन मदीयेन तदनुज्ञातुमर्हथ। भवद्भिर्न हि मे मन्युः कृत-

हमें आज्ञा दीजिये, आपका कल्याण हो, हम आपकी शरण हैं, यह कौरवराज कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं॥८-१०॥ इनकी ओरको अब तुम सब ऊँच नीचके अवसरों पर दृष्टि रखना, इनके हाथसे तुम्हें कभी दुःख नहीं मिलेगा ११ क्योंकि-बड़े तेजस्वी चारों भाई इनके मंत्री हैं, वे सब लोकपालोंकी समान धर्म और अर्थको समझनेवाले हैं १२ सकल प्राणी और जगत्के पति भगवान् ब्रह्माजीकी समान महातेजस्वी युधिष्ठिर तुम्हारा पालन करेंगे॥१३॥ यह मुझे अवश्य कहना चाहिये था, इसलिये आप लोगोंसे कहरहा हूँ, इन युधिष्ठिरको मैं आप लोगोंको धरोहड़के रूपमें सौंपता हूँ ॥१०॥ तथा इस वीरपुरुषके हाथमें तुम्हें भी मैंने धरोहड़के रूपमें सौंपा है, मेरे उन पुत्रोंने यदि आपका कुछ अपराध किया हो ॥१५॥ तथा मेरे किसी औरने आपका कुछ बिगाड़ किया हो वह आपको क्षमा करना चाहिये, आप लोगोंने कभी मेरे

पूर्वः कथञ्चन ॥ १६ ॥ अत्यन्तगुरुभक्तानामेषोऽञ्जलि-
रिदं नमः। तेषामस्थिरबुद्धीनां लुब्धानां कामचारिणाम् १७
कृते याचेऽद्य वः सर्वान् गान्धारीसहितोऽनघाः। इत्यु-
क्तास्तेन ते सर्वे पौरजानपदा जनाः। नोचुर्बाष्पाकुलाः
किंचिद्वीक्षांचक्रुः परस्परम्। १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रम-
वासपर्वणि धृतराष्ट्रप्रार्थने नवमोऽध्यायः ॥९॥

वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तास्तु ते तेन पौरजानपदा
जनाः। वृद्धेन राज्ञा कौरव्य नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ १ ॥
तूष्णींभूतांस्ततस्तांस्तु बाष्पकण्ठान्महीपतिः। धृतराष्ट्रो
महीपालः पुनरेवाभ्यभाषत ॥२॥ वृद्धं हतपुत्रञ्च धर्म-

सामने क्रोध नहीं किया है ॥१६॥ आप जैसे गुरुभक्तोंके
सामने मैं हाथ जोड़ता हूँ और नमस्कार करता हूँ,
हे निर्दोषो ! चंचलबुद्धिवाले, लोभी और स्वेच्छाचारी
अपने पुत्रोंके कियेहुए कर्मोंके लिये तुम सबोंसे गान्धारी-
सहित मैं क्षमा-प्रार्थना करता हूँ, धृतराष्ट्रने उनसे
इसप्रकार कहा तब उन नगरनिवासियों और ग्रामवा-
सियोंने आँखोंमें आँसू भरकर कुछ उत्तर नहीं दिया,
किन्तु आपसमें एक दूसरेका मुख देखनेलगे ॥१७-१८॥
नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे कुरुवंशी जनमेजय ! उस
बूढ़े राजाने उनसे ऐसा कहा, तब वे नगरनिवासी और
ग्रामवासी ऐसे होगए, कि–मानो उनको कुछ भान ही
नहीं रहा ॥ १ ॥ नेत्रोंमें आँसू भर गद्गदकण्ठ और चुप
हुए उन लोगोंसे पृथ्वीपति राजा धृतराष्ट्रने फिर कहा,
कि–॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ पुरुषो ! मैं बूढ़ा हूँ, मेरे पुत्र मारे

पत्न्या सहानया। विलपन्तं बहुविधं कृपणं चैव सत्तमाः ३
पित्रा स्वयमनुज्ञातं कृष्णद्वैपायनेन वै। वनवासश्च धर्मज्ञा
धर्मज्ञेन नृपेण ह ॥ ४ ॥ सोऽहं पुनः पुनश्चैव शिरसा-
वनतोऽनघाः। गान्धार्या सहितं तन्मां समनुज्ञातुमर्हथ ५
वैशम्पायन उवाच। तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य वाक्यानि करु-
णानि ते। रुरुदुः सर्वशो राजन् समेताः कुरुजाङ्गलाः ६ उत्त-
रीयैः करैश्चापि संच्छाद्य वदनानि ते। रुरुदुः शोकसंतप्ता
मुहूर्त्तं पितृमातृवत् ॥ ७ ॥ हृदयैः शून्यभूतैस्ते धृतराष्ट्र-
प्रवासजम्। दुःखं सन्धारयन्तो हि नष्टसंज्ञा इवाभवन् ८
ते विनीय तमायासं धृतराष्ट्रवियोगजम्। शनैः शनैस्त-

गये हैं, मैं अपनी इस पत्नीके साथ विलाप करते२ दीन होगया हूँ ॥ ३ ॥ ऐसे मुझे हे धर्मात्माओं! मेरे पिता कृष्ण द्वैपायन व्यासने तथा धर्मको जाननेवाले धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने स्वयं वनवास करनेकी आज्ञा दे दी है ॥ ४ ॥ हे निष्पाप पुरुषों! यही मैं बार२ मस्तक नमाकर प्रार्थना करता हूँ, इसलिये गान्धारी सहित मुझे आप आज्ञा दे दीजिये ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे राजन्! कुरुराजके इन करुणाभरे वचनों को सुनकर तहाँ इकट्ठेहुए सब कुरुजाङ्गल देशवासी रोनेलगे ॥ ६ ॥ अपने ऊपरके वस्त्रों तथा हाथसे अपने मुखको ढककर शोकसे व्याकुलहुए वे ऐसे रोनेलगे जैसे अपने माता पिताके लिये रोते हों ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्रके वनको जानेके समाचारसे उत्पन्नहुए दुःखको शून्य हृदयमें धारण करतेहुए वे मूर्छितसे होगये ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रके (होनेवाले) वियोगसे उत्पन्नहुए दुःखको वशमें करके धीरे२ अपना२ मत दिखातेहुए वे आपसमें एक दूसरेसे

द्गान्योऽन्यमब्रुवन् स्वमतान्युत ॥ ९ ॥ ततः सन्धाय ते सर्वे वाक्यान्यथ समासतः। एकस्मिन् ब्राह्मणे राजन्निवेश्योचुर्नराधिपम् ॥१०॥ ततः स्वाचरणो विप्रः संमतोऽर्थविशारदः। साम्बाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रमे ॥११॥ अनुमान्य महाराजं तत् सदः संप्रसाद्य च। विप्रः प्रगल्भो मेधावी स राजानमुवाच ह ॥ १२ ॥ राजन् वाक्यं जनस्यास्य मयि सर्वं समार्पितम्। वक्ष्यामि तदहं वीर तज्जुषस्व नराधिप ॥ १३ ॥ यथा वदसि राजेन्द्र सर्वमेतत्तथा विभो। नात्र मिथ्या वचः किञ्चित् सुहृत्त्वं नः परस्परम् ॥ १४ ॥ न जात्वस्य च वंशस्य राज्ञां कश्चित् कदाचन। राजासीद्यः प्रजापालः प्रजानामप्रियोऽभवत् १५

बूझनेलगे और फिर उन सबोंने एकमत हो किसी एक ब्राह्मणको अग्रणी बनाकर हे राजन्! राजा धृतराष्ट्रको उत्तर देनेका विचार किया ॥ ९-१० ॥ तदनन्तर सदाचरणी, अर्थको समझनेमें चतुर, सकल ऋचाओंके ज्ञाता एक साम्ब नामके ब्राह्मणको चुनागया, हे राजन्! उसने इसप्रकार कहनेका आरम्भ किया ॥११॥ उन महाराजको मान देकर और उस सभाकी आज्ञा लेकर उस प्रगल्भ और बुद्धिमान् ब्राह्मणने राजासे कहा, कि-॥ १२ ॥ हे राजन्! इन लोगोंकी संमति कहनेका काम मुझे सौंपा गया है, हे वीर! इन लोगोंकी संमति मैं कहता हूँ हे राजन्! उसको आप सुनिये ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र! हे विभो! आप जो कुछ कहते हैं, यह सब ठीक है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, क्योंकि-हमारा परस्पर मित्रभाव है १४ इस वंशके राजाओंमें कभी कोई ऐसा राजा हुआ ही नहीं, कि-जो प्रजापालक होकर प्रजाओंको प्यारा न हुआ

पितृवत् भ्रातृवच्चैव भवन्तः पालयन्ति नः । न च दुर्योधनः किञ्चिदयुक्तं कृतवान्नृपः ॥१६॥ यथा ब्रवीति धर्मात्मा मुनिः सत्यवतासुतः । तथा कुरु महाराज स हि नः परमो गुरुः ॥ १७ ॥ त्यक्ता वयन्तु भवता दुःखशोकपरायणाः । भविष्यामश्चिरं राजन् भवद्गुणशतैर्युताः १८ यथा शान्तनुना गुप्ता राज्ञा चित्रांगदेन च । भीष्मवीर्योपगूढेन पित्रा तव च पार्थिव ॥ १९ ॥ भवद्बुद्धीक्षणाच्चैव पाण्डुना पृथिवीक्षिता । तथा दुर्योधनेनापि राज्ञा सुपरिपालिताः ॥ २० ॥ न स्वल्पमपि पुत्रस्ते व्यलीकं कृतवान् नृप । पितरीव सुविश्वस्तास्तस्मिन्नपि नराधिपे ॥ २१ ॥ वयसा स्म यथा सम्यग् भवतो विदितं

हो ॥१५॥ आप हमारा पिताकी समान और भ्राताकी समान पालन करते हैं और राजा दुर्योधनने भी कोई अनुचित वर्त्ताव नहीं किया था ॥ १६ ॥ हे महाराज ! सत्यवतीके पुत्र धर्मात्मा व्यासमुनि जैसा कहते हैं वैसा ही करिये, क्योंकि-वह हमारे परमगुरु हैं ॥१७॥ हे राजन् ! हमने आपके सैंकड़ों गुणोंसे सुख भोगा है, अब आपके त्यागकर चलेजाने पर हमें चिरकालतक दुःख और शोक भोगना पड़ेगा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार राजा शान्तनुने, चित्राङ्गदने और भीष्मजीकी वीरतासे रक्षित तुम्हारे पिताने तथा आपकी देखरेखमें राजा युधिष्ठिरने हमारी रक्षा की, राजा दुर्योधनने भी हमारी ऐसी ही रक्षा की है॥१९-२०॥हे राजन् ! आपके पुत्रने जरासा भी बुरा वर्त्ताव नहीं किया, हम तो उस राजा दुर्योधनके ऊपर पिताकी समान विश्वास रखते थे ॥२१॥ हम उसके साथ बड़े अच्छे प्रकारसे रहे थे, इस बातको आप जानते

तथा । तथा वर्षसहस्राणि कुन्तीपुत्रेण धीमता ॥ २२ ॥ पाल्यमाना धृतिमता सुखं विन्दामहे नृप । राजर्षीणां पुराणानां भवतां पुण्यकर्मणाम ॥ २३ ॥ कुरुसम्वरणादीनां भरतस्य च धीमतः । वृत्तं समनुयात्येष धर्मात्मा भूरिदक्षिणः ॥ २४ ॥ नात्र वाच्यं महाराज सुसूक्ष्ममपि विद्यते । उषिताः स्म सुखं नित्यं भवता परिपालिताः२५ सुसूक्ष्मञ्च व्यलीकन्ते सपुत्रस्य न विद्यते । यत्तु ज्ञातिविमर्देऽस्मिन्नात्थ दुर्योधनं प्रति ॥ २६ ॥ भवन्तमनुनेष्यामि तत्रापि कुरुनन्दन । ब्राह्मण उवाच । न तद् दुर्योधनकृतं न च तद्भवता कृतम् ॥ २७ ॥ न कर्णसौबलाभ्यां च कुरवो यत् क्षयं गताः । दैवं तत्तु विजानीमो

ही हैं, इसीप्रकार परमात्मा करे यह धैर्यवान् बुद्धिमान् कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर सहस्रों वर्षतक हमारी रक्षा करें और हम सुख पावें, हे राजन् ! बड़ी२ दक्षिणायें देनेवाले यह राजा युधिष्ठिर, पुण्य कर्मके करनेवाले तुम्हारे वंशके पुरातन राजर्षि कुरु संवरण आदिके और बुद्धिमान् भरतके वर्त्तावका अनुकरण कररहे हैं ॥ २२–२४ ॥ हे महाराज ! इसमें हम सूक्ष्मसे सूक्ष्म भी कहने योग्य कोई बात नहीं देखते, आपके हाथसे रक्षा पातेहुए हम सदा सुखमें ही रहे हैं ॥२५॥ आपका या आपके पुत्रका कोई सूक्ष्मसे सूक्ष्म भी अपराध नहीं मालूम होता, जाति बांधवोंका बड़ा भारी संहार (सर्वनाश) होनेके विषयमें जो आपने दुर्योधनसे कुछ नहीं कहा ॥ २६ ॥ इस विषयमें भी हे कुरुनन्दन ! मैं आपसे कुछ विनय करूँगा, ब्राह्मणने कहा, यह कुछ दुर्योधनका कियाहुआ नहीं था और न कुछ आपने ही किया ॥ २७ ॥ कौरव

यन्न शक्यं प्रबाधितुम् ॥ २८ ॥ दैवं पुरुषकारेण न शक्यमपि बाधितुम् । अक्षौहिण्यो महाराज दशाष्टौ च समागताः ॥ २९ ॥ अष्टादशाहेन हताः कुरुभिर्योधपुंगवैः । भीष्मद्रोणकृपाद्यैश्च कर्णेन च महात्मना ३० युयुधानेन वीरेण धृष्टद्युम्नेन चैव ह । चतुर्भिः पांडुपुत्रैश्च भीमार्जुनयमैस्तथा ॥ ३१ ॥ न च क्षयोऽयं नृपते ऋते दैवबलादभूत् । अवश्यमेव संग्रामे क्षत्रियेण विशेषतः ॥ ३२ ॥ कर्त्तव्यं निधनं काले मर्त्तव्यं क्षत्रबन्धुना । तैरियं पुरुषव्याघ्रैर्विद्याबाहुबलान्वितैः ॥३३॥ पृथिवी निहता सर्वा सहया सरथद्विपा॥न स राज्ञां वधे सूनुः कारणं ते महात्मनाम्३४

जो नष्ट होगये इसमें कर्ण और शकुनिने भी कुछ नहीं किया, इसको तो हम दैवी घटना ही मानते हैं, कि-जिसको कोई रोक हो नहीं सका ॥२८॥ पुरुषके प्रयत्नसे दैव नहीं रुकसकता, हे महाराज! दश और आठ अर्थात् अठारह अक्षौहिणी सेनादल इकट्ठा हुआ था ॥ २९ ॥ आठ और दश अठारह दिनमें कौरवोंके श्रेष्ठ योधा भीष्म द्रोण कृपाचार्य आदिने तथा महात्मा कर्णने ३० वीर युयुधान, धृष्टद्युम्न तथा पांडुके चार पुत्र-भीम, अर्जुन और नकुल सहदेवने उस सब सेनाका नाश कर डाला ॥ ३०-३१ ॥ हे राजन्! ऐसा संहार दैवी बलके विना नहीं होसकता, संग्राममें तो विशेषकर क्षत्रियको अवश्य ही संहार करना चाहिये,समय आनेपर क्षत्रबंधुके हाथसे ही मरना ठीक है, विद्याबल और बाहुबलवाले पुरुषोंमें व्याघ्रसमान योधाओंने घोड़े रथ और हाथियों वाली सब पृथिवीका नाश करडाला, उन महात्मा राजाओंके वधका कारण तुम्हारा पुत्र नहीं है ॥३४॥ तथा

न भवान्न च ये भृत्या न कर्णो न च सौबलः । यन्निश-
स्ताः कुरुश्रेष्ठ राजानश्च सहस्रशः ॥२५॥ सर्वं दैवकृतं
विद्धि कोऽत्र किं वक्तुमर्हति । गुरुर्मतो भवानस्य कृत्स्नस्या
जगतः प्रभुः ॥ २६ ॥ धर्मात्मानमतस्तुभ्यमनुजानीमहे
सुतम् । लभतां वीरलोकं स ससहायो नराधिपः ।२७।
द्विजाग्र्यैः समनुज्ञातस्त्रिदिवे मोदतां सुखम् । प्राप्स्यते
च भवान् पुण्यं धर्मे च परमां स्थितिम् ॥ २८ वेद धर्मश्च
कृत्स्नेन सम्यक् च भव सुव्रत । दृष्टिप्रदानमपि ते पांड-
वान् प्रति नो वृथा ॥ २९ ॥ समर्थास्त्रिदिवस्यापि पालने
किं पुनः क्षितेः । अनुवत्स्यन्ति वा धीमन् समेषु विष-

तुम भी कारण नहीं हो, तथा तुम्हारे सेवक वा कर्ण अथवा शकुनि भी कारण नहीं हैं, हे राजन् ! जिसमें हजारों राजे मरगये, उस सबको दैवका कियाहुआ जानो, इसमें दूसरा कोई क्या करसकता था ? हम आपको इस सब जगत्का प्रभु मानते हैं ॥२५–२६॥ इसलिये आपके धर्मात्मा पुत्र दुर्योधनको क्षमा करते हैं, परमात्मा करे, वह राजा अपने सहायकोंसहित वीरलोक पावे २७ द्विजोंमें अग्रणी द्विजोंकी संमतिसे वह स्वर्गमें सुखपावे ! और परमात्मा करे आपको भी पुण्यका फल और धर्मके विषयमें ऊँचेसे ऊँचा पद मिले॥२८॥आप सकल धर्मको ठीकर जानते हैं, अब आप अच्छे२ व्रतोंका अनुष्ठान करनेमें लगजाइये, पाण्डवोंके विषयमें आपको या हमें दृष्टि रखना निरर्थक है ॥ २९ ॥ वे तो स्वर्गका भी पालन कर सकते हैं, तो फिर इस पृथिवीकी तो बात ही क्या है ? हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! हे बुद्धिशाली राजन् ! सुख या दुःखके अवसरोंमें सब प्रजा शीलरूप भूषणवाले पाण्डवोंके

मेषु च ॥ ४० ॥ प्रजाः कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवान् शीलभूषणान्। अस्मद्देयाग्रहारांश्च परिबर्हांश्च पार्थिवः ॥ ४१ ॥ पूर्वराजाभिपन्नांश्च पालयत्येव पाण्डवः। दीर्घदर्शी मृदुर्दान्तः सदा वैश्रवणो यथा ॥ ४२ ॥ अक्षुद्रसचिवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः। अपमित्रे दयावांश्च शुचिश्च भरतर्षभः ॥ ४३ ॥ ऋजुः पश्यति मेधावी पुत्रवत् पाति नः सदा। विप्रियं च जनस्यास्य संसर्गाद्धर्मजस्य वै ४४ न करिष्यन्ति राजर्षे तथा भीमार्जुनादयः। मन्दा मृदुषु कौरव्य तीक्ष्णेष्वाशीविषोपमाः ॥ ४५ ॥ वीर्यवन्तो महात्मानः पौराणां च हिते रताः। न कुन्ती न च पाञ्चाली न

साथ रहेंगी, यह पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर पहले राजाओंके स्वीकार कियेहुए ब्राह्मणोंके अग्रहार (दानमें दिये हुए ग्राम) और परिवर्हों (इनाममें दियेहुए ग्रामों) की रक्षा करते ही हैं, यह दीर्घदर्शी हैं, जितेन्द्रिय हैं और सदा कुबेरकी समान हैं ॥ ४०–४२ ॥ इन उदारमनवाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरके पास मंत्री भी उदार ही हैं, यह तो शत्रुओंके ऊपर भी दया करते हैं (फिर दूसरोंके ऊपर दया करनेका तो कहना ही क्या ?) यह भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ और पवित्र हैं ॥ ४३ ॥ यह बुद्धिमान् हैं, सबको सरलदृष्टिसे देखते हैं और हमारी सदा पुत्रकी समान रक्षा करते हैं, हे राजर्षि ! इन धर्मपुत्रके संसर्गसे भीम अर्जुन आदि कोई भी हमारी प्रतिकूलता नहीं करेंगे, हे कुरुवंशी ! ये कोमलोंके साथ कोमल हैं और कुटिल मनुष्योंके लिये विषधर सर्पोंकी समान तीक्ष्ण हैं ४४-४५ ये वीर महात्मा पुरवासियोंका हित करनेमें बड़ा ही प्रेम रखते हैं, कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी या सुभद्रा इस

लोलूपी न सात्वती ॥ ४६ ॥ अस्मिन् जने करिष्यन्ति प्रतिकूलानि कर्हिचित् । भवत्कृतमिमं स्नेहं युधिष्ठिरविवर्द्धितम् ॥ ४७ ॥ न पृष्ठतः करिष्यन्ति पौरजानपदा जनाः । अधर्मिष्ठानपि सतः कुन्तीपुत्रा महारथाः ॥४८॥ मानवान् पालयिष्यन्ति भूत्वा धर्मपरायणाः । स राजन्मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात् ॥ ४९ ॥ कुरुकार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ । वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं धर्म्यमनुमान्य गुणोत्तरम् ॥५०॥ साधु साध्विति सर्वः स्वजनः प्रतिगृहीतवान् । धृतराष्ट्रश्च तद्वाक्यमभिपूज्य पुनः पुनः ॥५१॥ विसर्जयामास तदा प्रकृतीस्तु शनैः शनैः । स तैः सम्पूजितो राजा शिवेनावेक्षितस्तथा ॥ ५२ ॥ प्रांजलिः पूजयामास तं जनं भरतर्षभ ।

प्रजाके मनुष्योंके प्रतिकूल काम कभी नहीं करेगी, हमसे आप जो प्रेम करते थे उसको युधिष्ठिरने बढ़ाया है ४६-४७ और नगरवासी वा देशवासी भी इनके प्रतिकूल नहीं चलेंगे, महारथी कुन्तीके पुत्र धर्मपरायण होकर अधर्मियों की भी रक्षा सन्मानके साथ करेंगे, हे राजन्! युधिष्ठिरके विषयमें आपके मनमें जो चिंता हो उसको दूर करदीजिये ४८-४९ हे पुरुषश्रेष्ठ! अपने धर्मकर्म करिये, आपको नमस्कार है; उस ब्राह्मणकी धर्मभरी और गुणोंसे युक्त इस बातको सब मनुष्योंने साधु साधु कहकर स्वीकार करलिया और धृतराष्ट्रने भी इस बातकी बार बार सराहना की तथा धीरे २ सब लोगोंको विदा करना आरंभ करदिया, उन्होंने भी उस राजाका अच्छे प्रकारसे पूजन किया और कहा, कि—हमे मालूम होता है, कि—आपका कल्याण होनेवाला है ॥ ५०-५२ ॥ हे भरतसत्तम !

ततो विवेश भवनं गान्धार्या सहितो निजम्। व्युष्टाया-ञ्चैव शर्वर्यां यच्चकार निबोध तत ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-पर्वणि प्रकृतिसान्त्वने दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच। ततो रजन्यां व्युष्टायां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः। विदुरं प्रेषयामास युधिष्ठिरनिवेशनम् ॥१॥ स गत्वा राजवचनादुवाचाच्युतमीश्वरम्। युधिष्ठिरं महातेजाः सर्वबुद्धिमतांवरः ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रो महाराजो वनवासाय दीक्षितः। गमिष्यति वनं राजन्नागतां कार्त्तिकीमिमाम् ॥ ३ ॥ स त्वां कुरुकुलश्रेष्ठ किञ्चिदर्थमभीप्सति। श्राद्धमिच्छति दातुं स गांगेयस्य महात्मनः ॥४॥

धृतराष्ट्रने उन ब्राह्मणोंका दोनों हाथ जोड़कर सत्कार किया और फिर गान्धारीके साथ अपने महलमें चलेगये अब उस रातके बीतजाने पर उन्होंने जो किया उसको सुनो ॥ ५३ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—तदनन्तर रात्रि बीत जाने पर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने विदुरको युधिष्ठिरके स्थान पर भेजा ॥ १ ॥ सकल बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी विदुरने राजा धृतराष्ट्रके कहनेसे सत्यवादी युधिष्ठिरके पास जाकर यह बात कही, कि—॥ २ ॥ महाराज धृतराष्ट्रने वनवासके लिये दीक्षा ली है, हे राजन्! इस आनेवाली कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन वह वनको जायँगे ॥ ३ ॥ हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर! वह आपसे कुछ धन चाहते हैं वह महात्मा गङ्गापुत्र भीष्मका, द्रोणका, सोमदत्त और बुद्धिमान् बाल्हीकका, अपने पुत्रोंका तथा और जो कोई मित्र मारेगये हैं उनका और यदि आप आज्ञा

द्रोणस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः। पुत्राणां चैव
सर्वेषां ये चान्ये सुहृदो हताः॥यदि चाप्यनुजानीषे सैन्धवा-
पसदस्य च। एतत् श्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य युधिष्ठिरः॥७
हृष्टः सम्पूजयामास गुडाकेशश्च पाण्डवः। न तु भीमो
दृढक्रोधस्तद्वचो जगृहे तदा॥विदुरस्य महातेजा दुर्योधनकृतं
स्मरन्। अभिप्रायं विदित्वा तु भीमसेनस्य फाल्गुनः॥८॥
किरीटी किंचिदानम्य समुवाच नरर्षभम्। भीम राजा
पिता वृद्धो वनवासाय दीक्षितः॥ ९॥ दातुमिच्छति
सर्वेषां सुहृदामौर्ध्वदैहिकम्। भवता निर्जितं वित्तं दातु-
मिच्छति कौरवः॥ १०॥ भीष्मादीनां महाबाहो तदनु-
ज्ञातुमर्हसि। दिष्ट्या त्वद्य महाबाहो धृतराष्ट्रः प्रयाचते११

दें तो नीच जयद्रथका भी श्राद्ध करना चाहते हैं, विदुर
की इस बातको सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हुए
और पाण्डुकुमार अर्जुनने उनकी सराहना की,
परन्तु जिसके चित्तमें क्रोध जमाहुआ था ऐसे महातेज-
स्वी भीमने बिदुरकी उस बातको इस समय दुर्योधनके
कामोंकी याद आजानेके कारण नहीं माना, दुर्योधनके
अभिप्रायको समझकर अर्जुन, जो कि-मुकुट पहरेहुए
था, जरा एक नमकर उस पुरुषश्रेष्ठसे कहनेलगा, कि-
हे भीम! हमारे बूढे ताऊ राजा धृतराष्ट्रने वनवास
करनेकी दीक्षा ली है॥ ४-९ ॥ वह कौरव अपने भीष्म
आदि सब मित्रोंका श्राद्ध करना चाहते हैं और उसमें
तुम्हारे जीतेहुए धनका दान करना चाहते हैं, हे महा-
बाहो! तुम्हें उनको आज्ञा देदेनी चाहिये, हे महाबाहो!
तुम्हारे सौभाग्यकी बात है जो आज धृतराष्ट्र तुमसे
याचना कररहे हैं॥ १०-११ ॥ भाई! जरा कालके उलट

याचितो यः पुरास्माभिः पश्य कालस्य पर्ययम्। योऽसौ पृथिव्याः कृत्स्नाया भर्ता भूत्वा नराधिपः ॥ १२ ॥ परैर्विनिहतामात्यो वनं गन्तुमभीप्सति। मा ते ऽन्यत् पुरुषव्याघ्र दानाद्भवतु दर्शनम् ॥ १३ ॥ अयशस्यमतोन्यत् स्यादधर्मश्च महाभुज। राजानमुपशिक्षस्व ज्येष्ठं भ्रातरमीश्वरम् ॥ १४ ॥ अर्हस्त्वमसि दातुं वै नादातुं भरतर्षभ। एवं ब्रुवाणं बीभत्सुं धर्मराजोऽभ्यपूजयत् ॥ १५ ॥ भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा। वयं भीष्मस्य दास्यामः प्रेतकार्यञ्च फाल्गुन ॥ १६ ॥ सोमदत्तस्य नृपतेर्भूरिश्रवस एव च। बाह्लीकस्य च राजर्षेर्द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १७ ॥ अन्येषाञ्चैव सर्वेषां कुन्ती कर्णाय

फेरको तो देखो! पहले जिनसे हम याचना किया करते थे, जो पहले सब भूमण्डलके भर्ता और राजा थे और जिनके मन्त्रियोंको शत्रुओंने मारडाला है, वह आज वनको जाना चाह रहे हैं, इसलिये हे पुरुषसिंह! अब तुम्हे दान देदेनेके सिवाय और कुछ नहीं देखना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे महाभुज! इसके सिवाय और कुछ करोगे या कहोगे तो दुर्नामता होगी तथा अधर्म भी होगा, इसलिये अपने बड़े भाई राजा युधिष्ठिरको यही उपदेश दो ॥ १४ ॥ हे भरतसत्तम! तुम तो दान देनेके ही योग्य हो, लेनेके नहीं, ऐसा कहतेहुए अर्जुनकी धर्मराजने भी सराहना की ॥ १५ ॥ तब तो भीमसेनने क्रोधमें भरकर जोरके साथ यह बात कही, कि-"हे अर्जुन! भीष्मजीका श्राद्ध हम करेंगे ॥ १६ ॥ तथा राजा सोमदत्त और भूरिश्रवाका, राजर्षि बाल्हीक और महात्मा द्रोणका ॥ १७ ॥ तथा और सबोंका श्राद्धकर्म भी हम ही

दास्यति । श्राद्धानि पुरुषव्याघ्र मा प्रादात् कौरवो नृपः१८
इति मे वर्त्तते बुद्धिर्मा नो नन्दन्तु शत्रवः । कष्टात् कष्ट-
तरं यान्तु सर्वे दुर्योधनादयः ॥१९॥ यैरियं पृथिवी कृत्स्ना
घातिता कुलपांसनैः । कुलस्त्वमसि विस्मृत्य वैरं द्वादश-
वार्षिकम् ॥ २० ॥ अज्ञातवासं गहनं द्रौपदीशोकवर्द्ध-
नम् । क्व तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मास्वभवत्तदा ॥२१॥
कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः । सार्द्धं पांचाल-
पुत्र्या त्वं राजानमुपजग्मिवान् ॥ २२ ॥ क्व तदा द्रोण-
भीष्मौ तौ सोमदत्तोऽपि वाऽभवत् । यत्र त्रयोदशसमा
वने वन्येन जीवथ ॥ २३ ॥ न तदा त्वां पिता ज्येष्ठः

करेंगे, माता कुन्ती कर्णको पिण्ड देगी, हे पुरुषसिंह ! कौरवराज धृतराष्ट्रको तो श्राद्ध करने ही न दीजिये।१८। मेरी तो यही संमति है, अपने शत्रुओंको सुख न भोगने दो, दुर्योधन आदि सब भले ही दुःखमय स्थान में जापड़ें ॥१९॥ इन अपने कुलको कलङ्क लगानेवालोंने ही सब पृथिवीका नाश कराया है, तू पहले दो और दश अर्थात् बारह वर्षके वैरको कैसे भूलाजाता है ? ॥ २० ॥ और द्रौपदीके शोकको बढानेवाले तेरहवें वर्षके गहन अज्ञातवासको कैसे भूलाजाता है ? उस समय हमारे ऊपर धृतराष्ट्रका प्रेम कहाँ जाछिपा था ? ॥ २१ ॥ जिसके सब गहने लूटलिये गये थे ऐसा तू ही तो काले हिरनकी मृगछाला ओढेहुए पञ्चालराजकुमारी द्रौपदीके साथ इन ही राजा धृतराष्ट्रके पास गया था ? ॥ २२ ॥ उस समय द्रोण और भीष्म ये दोनों जने तथा सोम-दत्त भी कहाँ चलेगये थे ? जब तेरह वर्षतक वनमें वनके ही पदार्थों पर आधार रखकर तूने निर्वाह किया था २३

पितृत्वेनाभिवीक्ष्यते । किन्ते तद्विस्मृतं पार्थ यदेष कुला-
पांसनः ॥२४॥ दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत ।
तदेवं वादिनं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । उवाच वचनं
धीमान् जोषमास्स्वेति भर्त्सयन् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि भीमक्रोधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच । भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्वं नातोन्यद्वक्तुमु-
त्सहे । धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिः सर्वथा मानमर्हति ॥ १ ॥ न
स्मरन्त्यपराधानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि । असंभिन्नार्थ-
मर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः ॥२॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा
फाल्गुनस्य महात्मनः । विदुरं प्राह धर्मात्मा कुन्तीपुत्रो

उस समय इन ताऊजीने तुझे पितृभावसे क्यों नहीं
देखा था ? हे अर्जुन ! क्या इस समय तू यह सब भूल
गया ? इन कुलको कलङ्क लगानेवाले दुष्टबुद्धिने ही जब
जुआ खिलाया था उस समय विदुरसे बूझा था, कि—
क्या जीता ? इसप्रकार कहतेहुए भीमसेनको कुन्तीपुत्र
बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने डाटकर कहा, कि-चुप
होजा ॥ २४ ॥ २५ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

अर्जुनने कहा, कि हे भीम ! तू मेरा बड़ा भाई है
और गुरु है, इसलिये मैं और कुछ कहनेका तो साहस
नहीं करसकता परन्तु (इतना अवश्य कहूंगा, कि-)
राजर्षि धृतराष्ट्र सर्वदा सन्मानके योग्य हैं ॥ १ ॥ आर्य-
पुरुषोंकी मर्यादाको न तोडनेवाले साधुस्वभाव श्रेष्ठ पुरुष
किसीके अपराधको याद नहीं करते हैं, किन्तु सबके
सुकृतका ही स्मरण करते हैं ॥२॥ उस महात्मा अर्जुन
की इस बातको सुनकर कुन्तीपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरने

युधिष्ठिरः ३ इदं मद्वचनात् क्षत्तः कौरवं ब्रूहि पार्थिवम् । यावदिच्छसि पुत्राणां श्राद्धं तावद्ददाम्यहम् ४ भीष्मादीनां च सर्वेषां सुहृदामासकारिणाम् । मम कोशादिति विभो मा भूद्भीमः सुदुर्मनाः ॥५॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा धर्मराजस्तमर्जुनं प्रत्यपूजयत् । भीमसेनः कटाक्षेण वीक्षा-ञ्चक्रे धनञ्जयम् ॥ ६ ॥ ततः स विदुरं धीमान् वाक्यमाह युधिष्ठिरः । भीमसेने न कोपं स नृपतिः कर्तुमर्हति ॥७॥ परिक्लिष्टो हि भीमोऽपि हिमवृष्ट्यातपादिभिः ॥दुःखैर्बहुविधैर्धीमानरण्ये विदितं तव ॥ ८ ॥ किन्तु मद्वचनाद् ब्रूहि राजानं भरतर्षभ । यद्यदिच्छसि यावच्च गृह्यतां

विदुरसे कहा, कि-॥ ३ ॥ हे क्षत्तः ! मेरे कहनेसे तुम कौरवराजसे यह बात कहना, कि—आप जिस समय अपने पुत्रोंका श्राद्ध करना चाहेंगे उसी समय मैं धन दूँगा ॥ ४ ॥ भीष्म आदि, सकल मित्र और उपकार करनेवालोंके श्राद्धके लिये मैं अपने भण्डारमेंसे धन दूँगा हे विभो ! इस विषयमें भीमको अपने मनमें अधिक दुःख नहीं मानना चाहिये ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—ऐसा कहकर धर्मराजने अर्जुनकी बातको सराहा और भीमसेनने अर्जुनकी ओरको क्रोधभरी दृष्टिसे देखा६ फिर बुद्धिमान् युधिष्ठिरने विदुरसे यह बात कही, कि—राजा धृतराष्ट्रको भीमसेनके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ बरफ, वर्षा और धूप आदिसे तथा और भी अनेकों प्रकारके दुःखोंसे वनमें बुद्धिमान् भीमसेनको भी क्लेश सहना पड़ा था, इस बातको आप तो जानते ही हैं ॥ ८ ॥ परन्तु हे भरतसत्तम ! मेरे कहनेसे राजासे कहना, कि—मेरे घरमेंसे जो जो वस्तुएँ जितनी चाहियें

मद्गृहाद्दिति ॥ ९ ॥ यन्मात्सर्यमयं भीमः करोति भृशदुःखितः । न तन्मनसि कर्त्तव्यमिति वाच्यः स पार्थिवः १० यन्ममास्ति धनं किंचिदर्जुनस्य च वेश्मनि । तस्य स्वामी महाराज इति वाच्यः स पार्थिवः ॥ ११ ॥ ददातु राजा विप्रेभ्यो यथेष्टं क्रियतां व्ययः । पुत्राणां सुहृदां चैव गच्छत्वानृण्यमद्य सः ॥ १२ ॥ इदञ्चापि शरीरं मे तवायत्तं जनाधिप। धनानि चेति विद्धि त्वं न मे तत्रास्ति संशयः इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरानुमोदने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तस्तु राज्ञा स विदुरो बुद्धिसत्तमः । धृतराष्ट्रमुपेत्यैवं वाक्यमाह महार्थवत् १ उक्तो युधिष्ठिरो राजा भवद्वचनमादितः। स च संस्मृत्य वाक्य-

---

उतनी ही लेकर वह अपनी इच्छा पूरी करलें ॥ ९ ॥ और उन राजा धृतराष्ट्रसे यह भी कहना, कि-अत्यन्त दुःखी हुआ भीमसेन डाहसे जो कुछ कहता है उसको चित्त पर न लावें ॥ १० ॥ मेरे घरमें और अर्जुनके घरमें जो कुछ भी धन है, महाराज धृतराष्ट्र उसके मालिक हैं,यह उनसे कहदेना ॥ ११ ॥ वह राजा इच्छानुसार ब्राह्मणों को धन दें, मनमाना खरच करें, आज वह अपने पुत्रोंके और मित्रोंके ऋणसे छूटलें ॥ १२ ॥ हे राजन् ! यह मेरा शरीर भी आपके अधीन है तथा मेरे धनको भी अपना ही धन जानें, मेरी ओरसे जरा भी सन्देह न करें॥१३॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥ ❀ ॥ ❀

वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा युधिष्ठिरने विदुरसे ऐसा कहा,तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरने धृतराष्ट्रके पास जाकर महान् अर्थसे भरीहुई यह बात कही, कि-॥१॥

न्ते प्रशशंस महाद्युतिः ॥ २ ॥ बीभत्सुश्च महातेजा निवेदयति ते गृहान् । वसु तस्य गृहे तच्च प्राणानपि च केवलान् ॥ ३ ॥ धर्मराजश्च पुत्रस्ते राज्यं प्राणान् धनानि च । अनुजानाति राजर्षे यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ४ ॥ भीमस्तु सर्वदुःखानि संस्मृत्य बहुलान्युत । कृच्छ्रादिव महाबाहुरनुजज्ञे विनिःश्वसन्॥५॥ स राजन् धर्मशीलेन राज्ञा बीभत्सुना तथा । अनुनीतो महाबाहुः सौहृदे स्थापितोऽपि च ॥६॥ न च मन्युस्त्वया कार्य इति त्वां प्राह धर्मराट् । संस्मृत्य भीमस्तद्वैरं यदन्यायवदाचरत् ॥७॥ एवं प्रायो हि धर्मोऽयं क्षत्रियाणां नराधिप । युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः ॥ ८ ॥ वृकोदरकृते चाहम-

आपकी बात मैंने राजा युधिष्ठिर आदिको सुनादी, महातेजस्वी युधिष्ठिरने उन सब बातोंको सुनकर बडी प्रशंसा की ॥ २ ॥ तथा महातेजस्वी अर्जुनने भी अपना घर, अपने घरमेंका सब धन तथा अपने प्राणतक आपको अर्पण करदिये हैं ॥ ३ ॥ और तुम्हारे पुत्र धर्मराजने भी अपना राज्य, प्राण, धन तथा अपनी और जो कुछ भी वस्तु है वह सब हे राजर्षे ! आपको सौंपदी है ॥ ४ ॥ परन्तु महाबाहु भीमने अपने पिछले सब ही दुःखोंको याद करके बडी कठिनतासे साँस ले २ कर हाँ की है ५ हे राजन् ! धर्मात्मा युधिष्ठिरने और अर्जुनने उसको समझाया है तथा उस महाबाहुकी ओरको उसका हृदय झुकाया है ॥ ६ ॥ धर्मराजने कहा है, कि आप इस बात पर क्रोध न करिये, भीमसेनने उस वैरकी याद आजाने से यह अन्यायकेसा आचरण किया है ॥ ७ ॥ क्योंकि–हे राजन् ! क्षत्रियोंका ऐसा स्वाभाविक धर्म है और यह

कुर्नश्च पुनः पुनः। प्रसीद पार्थे नृपते सखान् प्रभुरिहा-
सि पत् ॥ ६ ॥ तद्ददातु भवान् वित्तं यावदिच्छति
पार्थिवः। त्वमीश्वरोऽस्य राज्यस्य प्राणानामपि भारत१०
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पुत्राणामौर्ध्वदेहिकम्। इतो रत्नानि
गाश्चैव दासी दासमजाविकम् ॥ ११ ॥ आनयित्वा कुरु-
श्रेष्ठो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छतु। दीनान्धकृपणेभ्यश्च तत्र
तत्र नृपाज्ञया। बह्वन्नरसपानाढ्याः सभा विदुर कारय।
गवां निपानान्यन्यच्च विविधं पुण्यकं कुरु ॥ १३ ॥ इति
मामब्रवीद्राजा पार्थश्चैव धनञ्जयः। यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भ-
वान् वक्तुमर्हति ॥ १४ ॥ इत्युक्ते विदुरेणाथ धृतराष्ट्रो-

भीमसेन युद्ध और क्षत्रियके धर्ममें तत्पर रहता है ।८।
हे राजन्! भीमसेनके इस वर्त्तावके लिये मैं (युधिष्ठिर)
और अर्जुन वार २ आपसे प्रार्थना करते हैं, कि—कृपा
करिये, आप यहाँ हमारे प्रभु हैं ॥९॥ इसलिये हे राजन्!
आप जितना चाहें उतना धन दानमें देदीजिये हे भारत!
आप हमारे राज्यके और प्राणोंके भी स्वामी हैं ॥ १० ॥
आप अपने पुत्रोंका श्राद्धकर्म करिये, ब्राह्मणोंको देने
योग्य अग्रहार (धर्मार्थ भूमि) दीजिये और उन्होंने मुझ
से कहा, कि—हे विदुर! यहाँसे रत्न, गौएँ, दासियें, दास,
भेड़, बकरी मँगवाकर राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अनुसार
ब्राह्मणोंको, दीनोंको, अन्धोंको और कृपणोंको भी देना
आरम्भ करदीजिये ॥११ ॥ १२॥ हे विदुर! बहुतप्रकार
के अन्न और भाँतिर के पीनेके पदार्थोंसे भरेहुए सभा-
गृह तयार कराइये, गौओंके जल पीनेके लिये कुण्ड बन-
वाइये तथा और भी सब प्रकारके पुण्यके काम करिये१२
इसप्रकार राजा युधिष्ठिरने और अर्जुनने मुझसे कहा

ऽभिनन्द्य तान् । मनश्चक्रे महादाने कार्त्तिक्यां जनमेजय
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि विदुरवाक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
वैशम्पायन उवाच । विदुरेणैवमुक्तस्तु धृतराष्ट्रो जना-
धिपः । प्रीतिमानभवद्राजन् राज्ञो जिष्णोश्च कर्मणि॥१॥
ततोऽभिरूपान् भीष्माय ब्राह्मणानृषिसत्तमान् । पुत्रार्थे
सुहृदश्चैव स समीक्ष्य सहस्रशः ॥ २ ॥ कारयित्वान्न-
पानानि यानान्याच्छादनानि च । सुवर्णमणिरत्नानि
दासीदासमजाविकम् ।३॥ कम्बलानि च रत्नानि ग्रामान्
क्षेत्रं तथा धनम् । सालङ्कारान् गजानश्वान् कन्याश्चैव
वरस्त्रियः ॥ ४ ॥ उद्दिश्योद्दिश्य सर्वेभ्यो ददौ स नृपस-

है, अब इसके आगे जो कुछ काम करना हो वह आप बताइये ॥ १४ । हे जनमेजय ! विदुरके ऐसा कहने पर धृतराष्ट्रने उन सबोंकी सराहना की और कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन बड़े २ दान करनेका निश्चय किया ॥ १५ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥ ❀ ॥ ❀

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् ! विदुरके ऐसा कहने पर राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरके तथा अर्जुनके इस कामपर प्रसन्न हुए।१।फिर भीष्मके लिये योग्य ब्राह्मण और श्रेष्ठ ऋषियोंको तथा अपने पुत्रोंके लिये हजारों मित्रों (स्नेही ब्राह्मणों) को देख २ कर बुलवाया ॥२॥ और उनको अन्नपान कराकर तांबूल, ओढ़नेके वस्त्र, सोना, मणियें, रत्न, दास, दासियें, भेड़ और बकरियें ३ कम्बल, रत्न, गाँव, खेत, धन, गहनोंसे सजेहुए हाथी, घोड़े, कन्याएँ और श्रेष्ठ स्त्रियें ॥ ४ ॥ मरेहुओंमेंसे हर एकके नामका सङ्कल्प छोड़कर उन सबोंके लिये उस

समः । द्रोणं संकीर्त्य भीष्मञ्च सोमदत्तं च बाल्हिकम् ५ दुर्योधनञ्च राजानं पुत्रांश्चैव पृथक् पृथक् । जयद्रथपुरोगांश्च सुहृदश्चापि सर्वशः ॥ ६ ॥ स श्राद्धयज्ञो ववृते बहुशो धनदक्षिणः । अनेकधनरत्नौघो युधिष्ठिरमते तदा ७ अनिशं यत्र पुरुषा गणका लेखकास्तथा । युधिष्ठिरस्य वचनादपृच्छन्त स्म तं नृपम् ॥८॥ आज्ञापय किमेतेभ्यः प्रदेयं दायतामिति। तदुपस्थितमेवात्र वचनान्ते ददुस्तदा ॥९॥शतदेये दशशतं सहस्रे चायुतन्तथा । दीयते वचनाद्राज्ञः कुन्तीपुत्रस्य धीमतः॥१०॥एवं स वसुधाराभिर्वर्षमाणो नृपाम्बुदः । तर्पयामास विप्रांस्तान् वर्षन् शस्यमि-

श्रेष्ठ राजाने दिये, द्रोणका नाम लेकर तथा भीष्म,सोमदत्त बाल्हीक॥ ५ ॥ राजा दुर्योधन, अलग२ अपने सब पुत्र और जयद्रथ आदि अपने सब मित्रोंके नामसे सङ्कल्प छोडकर६युधिष्ठिरकी संमतिसे उन्होंने बहुतसी गौओंके समूहकी दक्षिणावाला तथा जिसमें धन और रत्नोंकी धार बहादी गयी थी ऐसा श्राद्धयज्ञ किया ॥ ७ ॥ तहाँ राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे हिसाब लगानेवाले और लिखनेवाले पुरुष राजा धृतराष्ट्रसे बूझते रहते थे, कि-८ इनको क्या दियाजाय उसकी आज्ञा दीजिये, अमुक वस्तु दो, इतना कहते क्षण ही,उनकी बात पूर्ण भी नहीं होने पाती थी,कि-वह वस्तु आजाती थी और देदी जाती थी ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे सौ देने योग्यको दशसौ और हजार देनेयोग्यको दश हजार दिये जाते थे ॥ १० ॥ जैसे मेघ वर्षा करके अन्न को तृप्त करदेता है तैसे ही धनकी धाराओंसे इसप्रकार बरसतेहुए राजारूप मेघने ब्राह्मणोंको तृप्त करदिया ११

धाम्बुदः ॥ ११ ॥ ततोनन्तरमेवात्र सर्ववर्णान् महामते ।
अन्नपानरसौघेन प्लावयामास पार्थिवः॥ १२ ॥ सवस्त्र-
धनरत्नौघो मृदङ्गनिनदो महान् । गवाश्वमकरावर्त्तो
नानारत्नमहाकरः ॥ १३ ॥ ग्रामाग्राहरद्वीपाढ्यो मणिहेम-
जलार्णवः । जगत संप्लावयामास धृतराष्ट्रोडुपोद्धत॥१४।
एवं स पुत्रपौत्राणां पितृणामात्मनस्तथा । गान्धार्याश्च
महाराज प्रददावौर्ध्वदेहिकम् ॥ १५ ॥ परिश्रान्तो यदा-
सीत् स ददद्दानान्यनेकशः । निवर्त्तयामास तदा दान-
यज्ञं नराधिपः ॥ १६ ॥ एवं स राजा कौरव्यश्चक्रे दान-
महाक्रतुम् । नटनर्त्तकलास्याढ्यं बह्वन्नरसदक्षिणम् १७

हे महामते ! तदनन्तर उस राजाने तहाँ ही सब वर्णों को भाँति २के अन्न पान और रसोंके प्रवाहोंमें भिगो दिया ॥१२॥ वस्त्र धन और रत्नोंके प्रवाहोंवाला, मृदङ्गों की बडीभारी ध्वनिसे गरजताहुआ, गौ और घोड़े ही जिसमें मगर और भँवर थे, नानाप्रकारके रत्नोंसे रत्नाकर बनाहुआ, ग्राम और अग्रहाररूप टापुओंवाला, मणि और सुवर्णरूप जलसे भराहुआ ऐसा धृतराष्ट्ररूप समुद्र बडी २ तरंगोंको उछालता हुआ जगत्को डुबोने लगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार उन्होंने पुत्रोंका, पौत्रोंका तथा अपने और गान्धारीके पितरोंका श्राद्धकर्म किया ॥ १५॥ फिर अनेकों दान देते २ जब वह थकगये तब उन महाराजका दानयज्ञ पूरा हुआ ॥ १६॥ हे महा-राज ! इसप्रकार उस राजाने बडा भारी दानयज्ञ किया, कि-जिसमें बहुतसे नट, नर्तक और नर्त्तकी लोग आये थे तथा जिसमें बहुतसे अन्न, रस और दक्षिणाएँ दी गयी थीं॥१७॥हे भरतसत्तम ! अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्र

दशाहमेवं दानानि दत्त्वा राजाम्बिकासुतः । बभूव पुत्र-
पौत्राणामनृणो भरतर्षभ ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि दानयज्ञे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रो-
म्बिकासुतः । आहूय पाण्डवान् वीरान् वनवासे कृत-
क्षणः ॥ १ ॥ गान्धारीसहितो धीमानभ्यनन्दद्यथाविधि।
कार्त्तिक्यां कारयित्वेष्टिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २ ॥ अग्नि-
होत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः । वधूजनवृतो राजा
निर्ययौ भवनात्ततः॥३॥ततः स्त्रियः कौरवपांडवानां याश्चा-
पराः कौरवराजवंश्याः । तासां नादः प्रादुरासीत्तदानीं
वैचित्रवीर्ये नृपतौ प्रयाते ॥४॥ ततो लाजैः सुमनोभिश्च

दश दिनतक दान देकर पुत्र और पौत्रोंके ऋणसे मुक्त
हुए ॥१८॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं,कि–फिर दूसरे दिन प्रातःकालके
समय अम्बिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंको
बुलवाकर वनवासको जानेका समय निश्चय करदिया।१।
गान्धारी सहित बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने उनकी उचित रीतिसे
सराहना की और वेदके पारङ्गत ब्राह्मणोंसे वह्नुवसनीय
नामकी इष्टि करवाकर कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन भोजपत्र
मृगछालाके वस्त्र पहनकर अपनी पुत्रवधुओंसे घिरेहुए
वह राजा अपने अग्निहोत्रको आगे करके महल-
मेंसे निकलकर चलदिये ।।२-३।। जिस समय विचित्रवीर्य
के पुत्र राजा धृतराष्ट्र महलोंमेंसे बाहर निकले उससमय
कौरव और पाण्डवोंकी स्त्रियोंके तथा कौरवोंके राजवंश
की दूसरी स्त्रियोंके रोनेका बड़ा कोलाहल होउठा ॥४॥

राजा विचित्राभिस्तद् गृहं पूजयित्वा । सम्पूज्यार्थैर्भृत्यवर्गं च सर्वं ततः समुत्सृज्य ययौ नरेन्द्रः ॥५॥ ततो राजा प्रांजलिर्वेपमानो युधिष्ठिरः सस्वरं बाष्पकण्ठः । विमुच्योच्चैर्महानादं हि साधो क्व यास्यसीत्यपतत्तात भूमौ६ तथार्जुनस्तीव्रदुःखाभितप्तो मुहुर्मुहुर्निःश्वसन् भारताग्र्यः । युधिष्ठिरं मैवमित्येवमुक्त्वा निगृह्याथो दीनवत सीदमानः ॥ ७ ॥ वृकोदरः फाल्गुनश्चैव वीरौ माद्रीपुत्रौ विदुरः संजयश्च । वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः ॥ ८ ॥ कुन्ती गान्धारीं बद्धनेत्रां व्रजन्तीं स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती । राजा

तदनन्तर लाजा (धानकी खीलें) और भाँति२ के फूलोंसे राजा धृतराष्ट्रने अपने घरकी पूजाकी, अपने नौकरोंका धन देकर सन्मान किया और फिर वह नरेन्द्र धृतराष्ट्र सबको विदा करके चलदिये ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे तात ! हाथ जोड़े खड़े, काँपतेहुए और आँसुओंसे रुके कण्ठ वाले राजा युधिष्ठिर बड़े जोरसे डीख फोड़कर रोपड़े और हे साधो! आप कहाँ जाते हैं? ऐसा कहतेहुए भूमि पर गिरपड़े ॥६॥ तथा तीव्रदुःखसे बहुत ही व्याकुल हुआ भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन वारम्वार लंबे श्वास छोड़ता हुआ युधिष्ठिरसे कहने लगा, कि–ऐसा न करिये औरफिर उनको पकड़कर दीनकी समान बैठगया ॥७॥ भीमसेन, अर्जुन तथा माद्रीके दोनों वीर पुत्र नकुल सहदेव, विदुर और सञ्जय; वैश्याका पुत्र युयुत्सु, गौतम, धौम्य तथा कितनेही ब्राह्मण शोकसे गद्गद हो चुपचाप उनके पीछे२ चलेगये ।८। आँखोंपर पट्टी बाँधकर चलती हुई गान्धारी के कन्धेपर धरेहुए हाथको पकड़कर कुन्ती आगे २ चल

गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः ९ तथा कृष्णा द्रौपदी सात्वती च बालापत्या चोत्तरा कौरवी च। चित्राङ्गदा याश्च काश्चित् स्त्रियोऽन्याः सार्द्धं राज्ञा प्रस्थितास्ता वधूभिः ॥ १० ॥ तासां नादो रुदतीनां तदासीद्राजन् दुःखात् कुररीणामिवोच्चैः। ततो निष्पेतुर्ब्राह्मणक्षत्रियाणां विशां शूद्राणां चैव भार्याः समन्तात्११ तन्निर्याणे दुःखितः पौरवर्गो गजाह्वये चैव बभूव राजन्। यथा पूर्वं गच्छतां पाण्डवानां द्यूने राजन् कौरवाणां सभायाः ॥ १२ ॥ या नापश्यंश्चन्द्रमसं न सूर्यं रामाः कदाचिदपि तस्मिन्नरेन्द्रे। महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे शोकेनार्त्ता राजमार्गं प्रपेदुः ॥१३॥ पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

रही थी तथा गान्धारीके कन्धेपर हाथ धरेहुए राजा धृतराष्ट्र शान्तिके साथ चले जारहे थे।९। कृष्णा द्रौपदी और सुभद्रा तथा छोटेसे बालकवाली कौरवी उत्तरा और चित्रा तथा दूसरी कितनी ही स्त्रियें जो अपनी बहुओंके सहित राजा धृतराष्ट्रके साथ जारही थीं उन सब दुःखके कारण रोती हुई स्त्रियोंका बड़े जोरसे रोनेका शब्द हे राजन्! कुररियों (टटीरियों) का सा होरहा था, उसको सुनकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों की स्त्रियें चारों ओरके घरोंमें से बाहर निकल आयीं ॥१०॥११॥ हे राजन्! जैसे पहले कौरवोंकी सभामेंसे जुवा खेलकर पांडव गये थे उस समय पुरवासी दुःखी हुएथे तैसेहीवे धृतराष्ट्रके वनगमनके समय हस्तिनापुरके सब नगरनिवासी दुःखी हुए ॥१२॥ जिन स्त्रियोंने कभी (घरसे बाहर निकलकर) चन्द्रमा और सूर्य तकको नहीं देखाथा वे उन नरेन्द्र धृतराष्ट्रके महावन को जाते समय शोकसे दुःखी होती हुई राजमार्ग में (खुली सड़क पर)आगयीं।१३। पंद्रहवां अध्याय समाप्त१५

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रासादहर्म्येषु वसुधायां च पार्थिव । नारीणां च नराणां च निःस्वनः सुमहानभूत् १ स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च । कथंचिन्निर्ययौ धीमान् वेपमानः कृतांजलिः ॥ २ ॥ स वर्द्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात् । विसर्जयामास च तं जनौघं स मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥ वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः । सञ्जयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा ॥४॥ कृपं निवर्त्तयामास युयुत्सुश्च महारथम् । धृतराष्ट्रो महीपालः परिदाप्य युधिष्ठिरे ॥ ५ ॥ निवृत्ते पौरवर्गे च राजा सान्तःपुरस्तदा । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्त्तितुमियेष ह ॥ ६ ॥ सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीं वने तामनुजग्मुषीम् ।

वैशम्पायन कहते हैं,कि–हे राजन् ! तदनन्तर महलों की अटारियों पर और पृथिवीपर स्त्रियोंका तथा पुरुषोंका बडाभारी कोलाहल होउठा।१।वह बुद्धिमान् राजा काँपता हुआ और हाथ जोडे हुए स्त्री पुरुषोंसे भरेहुए राजमार्गमें होकर ज्यों त्यों नगरसे निकलकर बाहर आया ॥ २ ॥ वह हस्तिनापुर नगरके वर्धमान नामक द्वारमेंको होकर बाहर आगया, और फिर धीरे २ मनुष्योंके उस प्रवाह को बार २ कहकर पीछेको लौटाने लगा ॥ ३ ॥ परन्तु विदुरने तो राजाके साथ वनमें जाना स्वीकार करलिया था तथा गवल्गणके पुत्र महामात्र सूत संजयने भी ऐसा ही निश्चय करलिया था ॥ ४ ॥ राजा धृतराष्ट्रने कृपाचार्य और महारथी युयुत्सुको युधिष्ठिरके हाथमें सौंपकर पीछे को लौटादिया ॥ ५ ॥ नगरनिवासियोंके पीछेको लौट आनेके बाद धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर युधिष्ठिरने अपने रनवासकी स्त्रियोंके सहित पीछेको लौटनेकी इच्छा की ।।६।।

अहं राजानमन्विष्ये भवती विनिवर्त्तताम् ॥ ७ ॥ वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि । राजा यास्त्वेष धर्मात्मा तापस्ये कृतनिश्चयः ॥ ८ ॥ इत्युक्ता धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना । जगामैव तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह ॥९॥ कुन्त्युवाच । सहदेवे महाराज मा प्रमादं कृथाः क्वचित् । एष मामनुरक्तो हि राजंस्त्वां चैव सर्वदा १० कर्णं स्मरेथाः सततं संग्रामेष्वपलायिनम् । अवकीर्णो हि समरे वीरो दुष्प्रज्ञया सदा ॥ ११ ॥ आयसं हृदयं नूनं मन्दाया मम पुत्रक । यत् सूर्यजमपश्यन्त्याः शतधा यन्न दीर्यते ॥१२॥ एवं गते तु किं शक्यं मया कर्त्तुमरिन्दम ।

और राजा धृतराष्ट्रके साथ वनको जाना चाहनेवाली माता कुन्तीसे कहा, कि–तुम पीछेको लौट जाओ, मैं महाराजके साथ वनको जाऊँगा ॥७॥ हे रानीजी! इन बहुओंके परिवारके साथ तुम्हें नगरको लौटजाना चाहिये, तप करनेका निश्चय करलेने वाले इन महाराजको जाने दीजिये ।८॥ इसप्रकार धर्मराजने कहा, परन्तु आँसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंवाली कुन्ती गान्धारीको पकड़ेहुए चली ही गई ॥ ९ ॥ और चलते २ कुन्तीने कहा, कि–हे महाराज ! ऐसा कभी न हो, कि–सहदेवके ऊपर तुम्हारी कृपा न रहे, क्योंकि–हे राजन् ! यह सदा ही मेरे और तुम्हारे ऊपर प्रेम करता रहा है ॥१०॥ संग्राममेंसे न भागनेवाले कर्णकी याद रखना, क्योंकि–मेरी ही दुर्बुद्धिके कारण वह वीर संग्राममें मारागया है ११ हे बेटा ! मुझ मन्द भागिनीका हृदय वास्तवमें लोहसार (वज्र) का बनाहुआ है, जो सूर्यसे उत्पन्न हुए अपने पुत्रको न देखनेपर सौ टुकड़े होकर फटता नहीं है।१२।

मम दोषोऽयमत्यर्थं ख्यापितो यन्न सूर्यजः ॥ १३ ॥
तन्निमित्तं महाबाहो दानं दद्यास्त्वनुत्तमम् । सदैव
भ्रातृभिः सार्द्धं सूर्यजस्यारिमर्दन । द्रौपद्याश्च प्रिये नित्यं
स्थातव्यमरिकर्षण । भीमसेनोऽर्जुनश्चैव नकुलश्च कुरू-
द्वह ॥ १५ ॥ समाधेयास्त्वया राजंस्त्वय्यद्य कुलधूर्गता ।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम् । गान्धारी-
सहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी ॥ १६ ॥ वैशम्पायन
उवाच । एवमुक्तः स धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो वशी ।
विषादमगमद्धीमान् न च किञ्चिदुवाच ह ॥१७॥ मुहूर्त-

हे शत्रुनाशी बेटा ! ऐसी घटना होचुकने पर अब मेरा किया क्या होसकता है ? यह मेरा बडाभारी अपराध है, कि–जो तुझे नहीं जताया, कि–कर्ण सूर्यसे उत्पन्न हुआ मेरा ही पुत्र है ॥ १३ ॥ हे शत्रुनाशन ! हे महाबाहु ! तू अपने भाइयोंको साथमें लेकर उस सूर्यपुत्रके लिये भी श्रेष्ठ दान (पिण्डदान और जलदान) देना १४ हे शत्रुओंको सुखानेवाले ! तू सदा द्रौपदीका प्रिय काम करनेमें ध्यान देना, हे कुरुवंशके भारको उठानेवाले युधिष्ठिर ! तू, भीमसेन अर्जुन और नकुलके साथ ऐसा वर्त्ताव करना, कि–जिससे इनके चित्तको दुःख न पहुँचे क्योंकि–हे राजन् ! आजसे हमारे कुलका सब भार तेरे ही ऊपर आपडा है, मैं तो अब सास ससुरके चरणोंकी सेवा करती हुई, मैलसे मलिना तापसी बनकर वनमें ही गान्धारीके साथ रहूँगी ॥१५-१६॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–जब कुन्तीने युधिष्ठिरसे ऐसा कहा, तब इंद्रियोंको वशमें रखनेवाले उन बुद्धिमान् धर्मराजको तथा उनके भाइयोंको बडा ही दुःख हुआ, परन्तु उन्होंने मुख

मिव तु ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ १८ ॥ किमिदन्ते व्यवसितं नैव त्वं कर्त्तुमर्हसि । न त्वामभ्यनुजानामि प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ पुरोद्यतान् पुरा ह्यस्मानुत्साह्य प्रियदर्शने । विदुलाया वचोभिस्त्वं नास्मान् संत्युक्तुमर्हसि२० निहत्य पृथिवीपालान् राज्यं प्राप्तमिदं मया । तव प्रज्ञामुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात् ॥ २१ ॥ क्व सा बुद्धिरियं चाद्य भवत्या यत् श्रुतं मया । क्षत्रधर्मे स्थितिं प्रोक्ता तस्याश्च्यवितुमिच्छसि ॥ २२ ॥ अस्मानुत्सृज्य राज्यञ्च स्नुषा ह्येषा यशस्विनी । कथं वत्स्यसि दुर्गेषु वनेष्वद्य

से कुछ कहा नहीं ॥ १७ ॥ दीन, चिन्तातुर, शोकपरायण धर्मराज युधिष्ठिर यह सुनकर एक मुहूर्त्त तक कुछ चिंतासीमें पडगये और फिर अपनी मातासे कहनेलगे कि१८ हे माताजी ! यह तुमने क्या ठानली ? तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये, मैं तुम्हें यह आज्ञा नहीं दूँगा, इसलिये तुम तो मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १९ ॥ हे आनन्ददायक दर्शनवाली ! पहले नगरमेंसे बाहर जानेका उद्योग करते समय हमें विदुलाके वचन सुनाकर तूने ही उत्साह दिया था, इस समय हमको सर्वथा छोडकर चलाजाना तुम्हें उचित नहीं है ॥ २० ॥ तेरे ही सम्मतिका आश्रय लेकर मैंने नरोंमें श्रेष्ठ वासुदेवकी सहायतासे राजाओं का संहार करके यह राज्य पाया है ॥ २१ ॥ कहाँ तो तेरी वह बुद्धि और कहाँ यह विचार कि-जिसको इस समय मैंने सुना है, क्षत्रियधर्ममें जमे रहनेका उपदेश देकर अब हमें छोडकर क्यों जाना चाहती है ? ॥ २२ ॥ हे यशस्विनी ! हमें और इस राज्यको छोडकर तू बहुओं

प्रसीद मे ॥ २३ ॥ इति बाष्पाकुला वाचः कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती । सा जगामाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिदमब्रवीत् २४ यदा राज्यमिदं कुन्ती भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम् । प्राप्तव्या राजधर्माश्च तदेयन्ते कुतो मतिः॥२५॥ किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयम् । कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तुमभीप्ससि ॥ २६ ॥ वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम् । दुःखशोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा ॥ २७ ॥ प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि। श्रियं यौधिष्ठिरीं मातर्भुङ्क्ष्व तावद्बलार्जिताम् ॥ २८ ॥

के विना दुर्गम वनोंमें कैसे रहेगी ? इसलिये आज तू हमारे ऊपर कृपा कर ॥ २३ ॥ इसप्रकार अपने पुत्रकी आँसुओंसे गद्गद बातें सुनती हुई वह कुन्ती आँखोंमें आँसू भरेहुए चली ही गई, तब भीमने उससे यह बात कही, कि–॥ २४ ॥ हे माताजी ! जब यह पुत्रोंका जीता हुआ राज्य भोगने योग्य हुआ है और राज्यके धर्म पालन करने योग्य हुए हैं, ऐसे समय तुझे यह बुद्धि कैसे उपजी ? ॥ २५ ॥ (यदि ऐसा ही करना था तो) तूने पहले हमसे इस पृथिवीका नाश क्यों कराया ? ऐसा कौनसा कारण है, कि–जिससे तू हमको छोड़कर वनमें जाना चाहती है ?॥ २६ ॥ जब हम बालक थे तब ही तू हमें वनमेंसे लौटाकर क्यों लाई थी ? तथा ये दोनों माद्रीके पुत्र नकुल सहदेव (तेरे ऐसा करनेके कारण) दुःख और शोकसे व्याकुल होरहे हैं ॥ २७ ॥ हे यशस्विनी माता ! तू हमारे ऊपर प्रसन्न हो और इस समय वन को न जा, हे माता ! इस बलसे पायीहुई युधिष्ठिरकी की राजयलक्ष्मीको पूर्णरूपसे भोग ॥ २८ ॥ उस बुद्धि-

इति सा निश्चितैवाशु वनवासाय भाविनी। लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद्वचः ॥ २९ ॥ द्रौपदी चान्वयात् श्वश्रूं विषण्णवदना तदा। वनवासाय गच्छन्तीं रुदती भद्रया सह ॥ ३० ॥ सा पुत्रान् रुदतः सर्वान् मुहुर्मुहुरवेक्षती। जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया ॥ ३१ ॥ अन्वयुः पाण्डवास्तां तु सभृत्यान्तःपुरास्तथा। ततः प्रमृज्य साश्रूणि पुत्रान् वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि कुन्तीवनप्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कुन्त्युवाच। एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव। कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृपाः ॥ १ ॥ द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि। ज्ञातिभिः परिभू-

---

मतीने शीघ्रही वनवास करनेका विचार पहलेसे ही निश्चित करलिया था, इसलिये उसने अनेकों प्रकारसे विलाप करतेहुए भी अपने पुत्रोंकी बातपर ध्यान नहीं दिया॥२९॥फिर खिन्न मुखवाली द्रौपदी रोतीहुई सुभद्राके साथ उससमय वनवासके लिये जातीहुई अपनी सासूके पीछे२(लौटानेको)गई॥३०॥ परन्तु वनको जानेका निश्चय करनेवाली परमबुद्धिमती कुंन्ती रोतेहुए अपने सब पुत्रों को बार२ देखती हुई चली ही गयी ॥३१॥ पाण्डव भी अपने सेवक और रणवासकी स्त्रियोंके सहित उसके पीछे२ जाने लगे तब वह अपने आँसू पोंछ कर पुत्रोंसे कहनेलगी ॥ ३२ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

कुन्तीने कहा, कि-हे महाबाहु पाण्डव! तू जैसा कहता है वह ठीकही है, हे राजाओ! जब तुम निराश होगये थे तब तुमको मैंने ही उकसाया था॥१॥जब जुएमें तुम्हारा राज्य

तानां कृतमुद्धर्षणं मया॥२॥कथं पाण्डोर्न नश्येत संततिः पुरुषर्षभाः। यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥३॥ यूयमिन्द्रसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः। मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत् कृतं मया॥ ४॥ कथं धर्मभृतां श्रेष्ठो राजा त्वं वासवोपमः। पुनर्वने न दुःखी स्यादिति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ५॥ नागायुतसमप्राणः ख्यातविक्रमपौरुषः। नायं भीमोऽत्ययं गच्छेदिति चोद्धर्षणं कृतम॥६॥ भीमसेनादवरजस्तथायं वासवोपमः। विजयो नावसीदेत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥७॥ नकुलः सहदेवश्च तथेमौ

छिनगया था,तुम सुखसे गिरगयेथे,तुम्हारे संबन्धी दुर्योधन आदिने तुम्हारा तिरस्कार किया था, उस समय भी तुमको मैंने ही उकसाया था२हेपुरुषश्रेष्ठों!किसी प्रकार पांडुकी सन्तति नाश होनेसे बचजाय और किसी प्रकार तुम्हारी कीर्त्तिका नाश न होय इसलिये मैंने तुम्हें उकसाया था॥३॥तुमसब इन्द्रकी समानहो और देवताओंकी समान पराक्रमी हो,तुम शत्रुओंका मुख देखतेहुए (चुपचाप,न बैठ रहो,इसलिये मैंने यह सब कियाथा॥४॥ धर्मका पालन करनेवालोंमें श्रेष्ठ, इन्द्रकी समान तू कहीं फिर बनमें जाकर दुःखी न होय,यह विचारकर मैंने तुझे उकसाया था॥५॥ जिसमें दश हजार हाथियोंका बल है और जिसका पराक्रम तथा पुरुषार्थ प्रसिद्ध है ऐसा यह भीम नष्ट न होजाय,यह विचारकर मैंने तुम्हें उकसाया था॥६॥ भीमसेनके पीछे उत्पन्नहुआ यह इन्द्रकी समान अर्जुन कहीं,मन्द न पड़जाय,इसलिये मैंने तुम्हें उभारा था॥७॥अपने,बड़ोंकी आज्ञामें चलनेवाले ये दोनों नकुल और सहदेव कहीं भूखे रहकर दुर्बल न हो जायँ इसलिये

गुरुवर्त्तिनौ । क्षुधा कथं न सीदेतामिति चोद्धर्षणं कृतम् ८
इयञ्च बृहती श्यामा तथाऽऽयतलोचना । वृथा सभातले
क्लिष्टा माभूदिति च तत् कृतम् ॥ ९ ॥ प्रेक्षतामेव वो
भीम वेपन्तीं कदलीमिव । आवर्मिणीमरिष्टाङ्गीं तथा
द्यूतपराजिताम् ॥ १० ॥ दुःशासनो यदा मौर्ख्याद्दासी-
वत् पर्यकर्षत । तदैव विदितं मह्यं पराभूतमिदं कुलम् ११
निषण्णाः कुरवश्चैव तदा मे श्वशुरादयः । सा दैवं नाथ-
मिच्छन्ती व्यलपत् कुररी यथा ॥ १२ ॥ केशपक्षे परा-
मृष्टा पापेन हतबुद्धिना । यदा दुःशासनेनैषा तदा मुह्या-
म्यहं नृपाः ॥ १३ ॥ युष्मत्तेजोविवृद्ध्यर्थं मया ह्युद्धर्षणं

मैंने तुम्हें उकसाया था॥८॥ बड़े स्तनवाली और विशाल-
लोचना श्यामा (द्रौपदी)को भरी सभामें क्लेश दियागया
था,फिर इसको ऐसा दुःख न हो,इसलिये मैंने तुम्हें उक-
साया था॥९॥ हे भीम ! तुम सबोंके देखते हुए ही कदली
के समान काँपती हुई ओघर्मिणी (रजस्वला हुई), भरेहुए
अङ्गोंवाली, और जुएमें हारी गयी, इस बिचारीको
जब दुःशासनने मूर्खतासे दासी की समान जोरावरी
घसीटा था, उस समय ही मैंने समझ लिया था, कि—
अब इस कुलका पराजय होने वालाहै॥१०॥११॥जब यह
दैवरूप किसी रक्षकको चाहती हुई कुररी (टटीरी) की
समान विलाप कररही थी, उसमय मेरे सुसर आदि
कौरव सुस्त मुख किये बैठे थे ॥१२॥ और हे राजाओं !
उस समय जब निर्बुद्धि पापी दुःशासनने इस बिचारी
को केश पकड़ कर घसीटा था तब मुझे मूर्छा आगयी
थी ॥१३॥ हेपुत्रों ! तुम्हें समझना चाहिये, कि—तुम्हारे
तेजको बढ़ानेके लिये उस समय मैंने तुम्हें विदुलाके

कृतम् । तदानीं विदुला वाक्यैरिति तद्वित्त पुत्रकाः॥१४॥
कथं न राजवंशोऽयं नश्येत् प्राप्य सुतान् मम । पाण्डो-
रिति मया पुत्रास्तस्मादुद्धर्षणं कृतम् ॥ १५ ॥ न तस्य
पुत्राः पौत्रा वा क्षतवंशस्य पार्थिवाः । लभन्ते सुकृतां-
ल्लोकान् यस्माद्वंशः प्रणश्यति ॥ १६ ॥ भुक्तं राज्यफलं
पुत्रा भर्तुर्मे विपुलं पुरा । महादानानि दत्तानि पीतः
सोमो यथाविधि ॥ १७ ॥ नाहमात्मफलार्थं वै वासुदेव-
मचूचुदम् । विदुलायाः प्रलापैस्तैः पालनार्थं च तत् कृतम् १८
नाहं राज्यफलं पुत्रा कामये पुत्रनिर्जितम् । पतिलोकानहं
पुण्यान् कामये तपसा विभो ॥ १९ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः
कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः । तपसा शोषयिष्यामि युधि-

वचन सुनाकर उकसाया था।१४। मेरे पुत्रोंको पाकर कहीं यह पांडुका राजवंश नष्ट न होजाय, यह विचार कर ही हेपुत्रों ! मैंने तुम्हें उकसाया था ।१५। हेराजन् ! जिसके कारणसे वंशका नाश होता है; उस वंशका नाश करनेवालेके पुत्र पौत्रोंको पुण्यकर्म करनेवालेके लोक नहीं मिलते हैं१६ हे पुत्रों ! पहले मैंने अपने पतिके विशाल राज्यका फल भोगा है बड़े २ दान दिये हैं और यथाविधि सोमपान किया है ॥ १७ ॥ मैंने कुछ अपने सुखभोगके लिये श्रीकृष्णको प्रेरणा नहीं की थी, विदुलाके वाक्योंसे तुम्हारी रक्षाके लिये ही ऐसा किया था ॥१८॥ हे पुत्रों ! अपने पुत्रोंके जीतेहुए राज्यका फल भोगनेकी मुझे इच्छा नहीं है, हे विभो ! मैं तो तप करके अपने पतिके पुण्य-लोकोंमें जाना चाहती हूँ॥१९॥ हे युधिष्ठिर ! वनवासी सास ससुरकी सेवा करती हुई मैं तपस्या करके अपने शरीरको सुखा डालूँगी ॥२०॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! भीम-

ष्ठिर पावनं गरम् ॥२०॥ निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह । धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्तु महदस्तु च ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-पर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच । कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा पाण्डवा राजसत्तम । व्रीडिताः संन्यवर्तन्त पांचाल्या सहितानघाः ॥ १ ॥ ततः शब्दो महानेव सर्वेषामभवत् तदा । अन्तःपुराणां रुदतां दृष्ट्वा कुन्तीं तथा गताम् ॥ २ ॥ प्रदक्षिणमथावृत्य राजानं पाण्डवास्तदा। अभिवाद्य न्यवर्तन्त पृथां तामनिवर्त्य वै ॥ ३ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । गान्धारीं विदुरञ्चैव समाभाष्यावगृह्य च ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्त्यताम् ।

सेन आदिकों साथ लेकर तुम पीछेको लौटजाओ, परमात्मा करे तुम्हारी बुद्धि धर्ममें जमी रहे और तुम्हारा मन उदार बना रहे ॥२१॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजसत्तम ! कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डव लज्जित होगये और वे निर्दोष द्रौपदीके सहित पीछेको लौट आये ॥ १ ॥ उस समय कुन्तीको इसप्रकार जाती हुई देखकर अन्तःपुरकी सब स्त्रियें डोस फोडकर रोपडीं और बडाभारी कोलाहल मचगया ।२॥ फिर पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया, वे कुन्तीको तो पीछेको न लौटासके किन्तु आप ही पीछेको लौटआए ॥ ३ ॥ फिर महातेजस्वी अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने गान्धारी और विदुरका सहारा लेकर उनसे कहा, कि-॥ ४ ॥ युधिष्ठिरकी माता सुशीला कुन्ती देवीको घरको लौटादो, युधिष्ठिरने

यथा युधिष्ठिरः प्राह तत् सर्वं सत्यमेव हि ॥ ५ ॥ पुत्रै-
श्वर्यं महदिदमपास्य च महाफलम्। का नु गच्छेद्वनं
दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत् ॥ ६ ॥ राज्यस्थया तपस्तप्तुं
कर्तुं दानव्रतं महत्। अनया शक्यमेवाद्य श्रूयतां च वचो
मम ॥७॥ गान्धारि परितुष्टोऽस्मि वध्वाः शुश्रूषणेन वै ।
तस्मात्त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥ इत्युक्ता
सौबलेयी तु राज्ञा कुन्तीमुवाच ह । तत्सर्वं राजवचनं
स्वञ्च वाक्यं विशेषवत् ॥ ९ ॥ न च सा वनवासाय देवी
कृतमतिन्तदा । शक्नोत्युपावर्त्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां
सतीम् ॥ १० ॥ तस्यास्तान्तु स्थितिं ज्ञात्वा व्यवसायं
कुरुस्त्रियः । निवृत्तांश्च कुरुश्रेष्ठान् दृष्ट्वा प्ररुरुदुस्तदा ११

जैसा कहा है वह सब बात सच्ची है ॥ ५ ॥ पुत्रके इस
ऐश्वर्यरूप महाफलको छोडकर और पुत्रोंको छोडकर
दुर्गम वनमें मूढकी समान कौन जायगा ? ॥ ६ ॥ यह
राज्यमें रहकर ही तप करसकेगी, तथा दान देनेका बडा
भारी व्रत भी करसकेगी, इसलिये आज मेरी बात सुनो ७
हे गान्धारी ! इस बहूकी सेवासे मुझे बड़ा संतोष हुआ
है, इसलिये हे धर्मको जाननेवाली ! तुझे इसको जानेके
लिये आज्ञा देदेनी चाहिये ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रने गान्धारीसे
ऐसा कहा तब सुबलकुमारी गान्धारीने भी कुन्तीसे
धृतराष्ट्रकी यह बात तथा अपनी ओरसे भी विशेषकर
जो कुछ कहना था सो कहा ॥ ९ ॥ परन्तु धर्मपरायणा
सती कुन्तीको देवी गान्धारी उसके वनवासके विचारको
पलट न सकी ॥ १० ॥ उसकी ऐसी दशा और व्यवसाय
को जानकर और कुरुसत्तम पाण्डवोंको अकेले लौटते
हुए देखकर कुरुवंशकी स्त्रियें बहुत ही रोयीं ॥ ११ ॥

उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वास्वेव वधूषु च । ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा ॥ १२ ॥ पाण्डवाश्चातिदीनास्ते दुःखशोकपरायणाः । यानैः स्त्रीसहिताः सर्वे पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ १३ ॥ तदाहृष्टमनानन्दं गतोत्सवमिवाभवत् । नगरं हास्तिनपुरं सस्त्रीवृद्धकुमारकम् ॥१४॥ सर्वे चासन्निरुत्साहाः पाण्डवा जातमन्यवः । कुन्त्या हीनाः सुदुःखिता वत्सा इव विना कृताः ॥ १५ ॥ धृतराष्ट्रस्तु तेनाह्ना गत्वा सुमहदन्तरम् । ततो भागीरथीतीरे निवासमकरोत् प्रभुः ॥ १६ ॥ प्रादुष्कृता यथान्यायमग्नयो वेदपारगैः । व्यराजन्त द्विजश्रेष्ठैस्तत्र तत्र तपोवने १७ प्रादुष्कृताग्निरभवत् स च वृद्धो नराधिपः । स राजा-

---

बहुओं सहित पाण्डवोंके पीछेको लौट आने पर महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र वनको चलेगये ॥ १२ ॥ अति दीन हुए तथा दुःख और शोकमें भरेहुए पाण्डव स्त्रियोंके सहित वाहनोंमें बैठकर लौट पड़े और नगरमें आगये ॥ १३ ॥ उस समय हस्तिनापुर, उसमेंकी स्त्रियें, वृद्ध और बालकों सहित, मानों मनमेंसे आनन्द जाता रहा हो और नगरमेंसे उत्सव उठगया हो इसप्रकार उत्साहहीन होगया ॥ १४ ॥ और सब पाण्डव, जोकि क्रोधमें भरेहुए थे, वे निरुत्साह होगये और मातासे छुटे हुए बछड़ोंकी समान कुन्तीसे बिछुडकर बड़े दुःखीहुए ॥ १५ ॥ राजा धृतराष्ट्रने भी उस दिन बहुत दूर तक चलते २ भागीरथीके तटपर पहुँचकर निवास किया १६ तहाँ स्थान २ पर तपोवनमें वेदके पारङ्गत ब्राह्मणोंके विधिपूर्वक प्रकट हुए अग्नि शोभा पारहे थे ॥१७॥ तहाँ उस वृद्ध राजाने भी अपने अग्निको प्रकट किया और

ग्नीन् पर्युपास्य हुत्वा च विधिवत्तदा ॥ १८ ॥ संध्यागतं सहस्रांशुमुपातिष्ठत भारत। विदुरः सञ्जयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशैस्ततः ॥ १९ ॥ चक्रतुः कुरुवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः। गान्धार्याः सन्निकर्षे तु निषसाद कुशे सुखम् ॥ २० ॥ युधिष्ठिरस्य जननी कुन्ती साधुव्रते स्थिता। तेषां संश्रवणे चापि निषेदुर्विदुरादयः ॥ २१ ॥ याजकाश्च यथोद्देशं द्विजा ये चानुयायिनः। प्राधीतद्विजमुख्या सा संप्रज्वलितपावका ॥२२॥ बभूव तेषां रजनी ब्राह्मीव प्रीतिवर्द्धिनी। ततो रात्र्यां व्यतीतायां कृतपूर्वाह्लिकक्रियाः ॥ २३ ॥ हुत्वाग्निं विधिवत् सर्वे प्रययुस्ते

उस राजाने विधि विधानसे अग्निकी उपासना करके होम किया १८और हे भारत!सहस्र किरणोंवाला सूर्य अस्ताचलको पहुँच गया था,उसकी उपासना की फिर विदुर तथा सञ्जयने राजाके लिये तहाँ कुशोंकी शय्या बिछायी ॥१९॥ कुरुवीर धृतराष्ट्रके पास ही गान्धारीकी शय्या बिछायी, गान्धारीकी शय्याके पास सुन्दर व्रतोंका पालन करनेवाली युधिष्ठिरकी माता कुन्ती कुशोंकी शय्यापर सुखसे सोयी, उनकी बात सुनायी आवे इतनी दूर पर विदुर आदि कुशशय्या पर सोये ॥ २० ॥ २१ ॥ तथा यज्ञ करने वाले याजक ब्राह्मण और राजाके पीछे२ आयेहुए अन्य ब्राह्मण भी अपने २ स्थान पर सोये, जिस रात्रिमें मुख्य२ ब्राह्मण पाठ कररहे थे, जिस रात्रिमें अग्नियें जोरसे प्रज्वलित हो रही थीं ॥ २२ ॥ उनकी ऐसी वह पहली रात प्रीति बढ़ानेवाली ब्राह्मीकी समान हुई, उस रातके बीतजाने पर प्रातःकालके समय उठकर उन सबोंने प्रातःकालका कर्त्तव्य कर्म किया ॥ २३ ॥ विधिपूर्वक अग्निमें होम किया

यथा क्रमम् । उदङ्मुखा निरीक्षन्त उपवासपरायणाः २४
स तेषामतिदुःखोऽभून्निवासः प्रथमेऽहनि । शोचतां शोच्यमानानां पौरजानपदैर्जनैः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रवनगमने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो भागीरथी तीरे मेध्ये पुण्यजनोचिते । निवासमकरोद्राजा विदुरस्य मते स्थितः ।१।
तत्रैनं पर्युपातिष्ठन् ब्राह्मणा वनवासिनः । क्षत्रविट्शूद्रसंघाश्च बहवो भरतर्षभ ॥ २ ॥ स तैः परिवृतो राजा कथाभिः परिनन्द्य तान् । अनुजज्ञे सशिष्यान् वै विधिवत् प्रतिपूज्य च ॥ ३ ॥ सायान्हे स महीपालस्ततो गङ्गामुपेत्य च । चकार विधिवत् शौचं गान्धारी च यश-

---

और फिर उन सबोंने आगेको चलना आरम्भ करदिया, उपवास करने वाले वे सब पूर्वकी ओरको मुख करके देखते हुए चले जारहे थे ॥२४॥ पुरवासी और ग्रामवासी लोग जिनके लिये शोक कररहे थे और जो स्वयं भी शोकमें थे, उनको पहले दिनका निवास बड़ा दुःखदायी हुआ २५
अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर पवित्र और पुण्यात्मा पुरुषोंके योग्य भागीरथीके तट पर विदुरकी संमतिके अनुसार चलने वाले राजा धृतराष्ट्रने निवास किया ॥ १ ॥ हे भरतसत्तम ! वनवासमें रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्राके बहुतसे समूह राजासे मिलनेको आये ॥ २ ॥ उनके बीचमें बैठे हुए राजा धृतराष्ट्रने अनेकों प्रकार की कथावार्त्तासे उन सबोंको बड़ा आनन्द दिया ॥ ३ ॥ सायङ्कालके समय उस राजाने तथा यशस्विनी

स्विनी ॥४॥ ते चैवान्ये पृथक् सर्वे तीर्थेष्वाप्लुत्य भारत।
चक्रुः सर्वाः क्रियास्तत्र पुरुषा विदुरादयः ॥५॥ कृतशौचं
ततो वृद्धं श्वशुरं कुन्तिभोजजा। गान्धारीं च तथा राजन्
गङ्गातीरमुपानयत् ॥६॥ राज्ञस्तु याजकैस्तत्र कृतो वेदी-
परिस्तरः। जुहाव तत्र वह्निं स नृपतिः सत्यसङ्गरः ॥७॥
ततो भागीरथीतीरात् कुरुक्षेत्रं जगाम सः। सानुगो नृप-
तिर्वृद्धो नियतः संयतेन्द्रियः॥८॥ तत्राश्रमपदं धीमानभि-
गम्य स पार्थिवः। आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषि-
णम् ॥ ९ ॥ स हि राजा महानासीत् केकयेषु परन्तपः।
स पुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत् ॥ १० ॥ तेनासौ

गान्धारीने गङ्गाके तटपर जाकर विधिपूर्वक स्नानादि शौच
कर्म किया ॥४॥ हे राजन्! उन्होंने तथा विदुर आदि
दूसरे भी सब पुरुषोंने उन तीर्थोंमें अलग २ स्नान करके
सब क्रियाएँ कीं ॥५॥ हे राजन्! उस बूढ़े श्वसुरके स्नान
आदि करलेने पर कुन्तिभोजकी पुत्री कुन्ती उस गान्धारी
को गङ्गाके तट पर ले आयी ॥ ६ ॥ फिर उस राजाके
याजकोंने तहाँ एक वेदी बनायी तथा सत्य बोलने वाले
राजाने उस पर अग्नि प्रज्वलित करा कर होम किया ७
फिर भागीरथीके तट परसे किनारे २ चल कर वह
नियमोंको पालने वाला और इन्द्रियों वशमें रखने वाला
बूढ़ा राजा अपने अनुचरों सहित कुरुक्षेत्रमें जापहुँचा ८
फिर तहाँ अपने आश्रमस्थानको देखकर वह बुद्धिमान्
राजा बुद्धिमान् राजर्षि शतयूपके पास गया ॥ ९ ॥
वह राजा केकयोंमें बड़ा और शत्रुओंको सन्ताप देने
वाला महातेजस्वी था, वह अपने पुत्रको राजसिंहासन
देकर वनमें चलाआया था ॥ १० ॥ उसको साथ लेकर

सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं प्रति । तत्रैनं विधिव-
द्राजा प्रत्यगृह्णात् कुरूद्वहम् ॥ ११ ॥ स दीक्षां तत्र
संप्राप्य राजा कौरवनन्दनः । शतयूपाश्रमे तस्मिन्निवा-
समकरोत्तदा ॥ १२ ॥ तस्मै सर्वं विधिं राज्ञे राजाचख्यौ
महामतिः । आरण्यकं महाराज व्यासस्यानुमते तदा१३
एवं स तपसा राजा धृतराष्ट्रो महामनाः । योजयामास
चात्मानं तांश्चाप्यनुचरांस्तदा ॥१४॥ तथैव देवी गांधारी
वल्कलाजिनधारिणी । कुन्त्या सह महाराज समानव्रत-
धारिणी ॥ १५ ॥ कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा चैव ते
नृप । सन्नियम्येन्द्रियग्राममास्थिते परमं तपः ॥ १६ ॥
त्वगस्थिभूतःपरिशुष्कमांसो जटाजिनी वल्कलसंवृताङ्गः।

राजा धृतराष्ट्र व्यासजीके आश्रम की ओर गये, तहाँ
उस कुरुपति राजाने उनका विधिपूर्वक सत्कार किया ११
फिर वहाँ कौरवों को आनन्द देनेवाले राजाने वनकी दीक्षा
ली और शतयूपके आश्रममें निवास किया ॥ १२ ॥ हे
महाराज ! फिर व्यासजीकी आज्ञासे उस महा बुद्धिमान्
राजा शतयूपने राजा धृतराष्ट्रको वनमें रहनेकी सबविधि
बताथी ॥ १३ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार उदार चित्त वाले
राजा धृतराष्ट्रने अपने आपको तथा अपने साथियोंको
भी तपमें लगादिया ॥ १४ ॥ तथा भोजपत्र और
मृगछाला धारण करने वाली देवी गान्धारीने भी हे
महाराज!उनकी समान ही तपकरना आरम्भ करदिया१५
हे राजन् ! मनसा वाचा कर्मणा और नेत्रोंसे उन्होंने
इन्द्रियोंका संयम करके बड़ा भारी तप करना आरंभ
करदिया ॥१६ ॥ जिसका मोह दूर होगया है, जिसके
शरीरमें चमड़ा और हड्डी ही बाकी रहगयी हैं, मांस

स पार्थिवस्तत्र तपश्चचार महर्षिवत्तीव्रमपेतमोहः॥१७॥
क्षत्ता च धर्मार्थविदग्र्यबुद्धिः ससञ्जयस्तं नृपतिं सदारम्।
उपाचरद् घोरतपो जितात्मा तदा कृशो वल्कलचीरवासाः॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि शतयूपाश्रमनिवासे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच। ततस्तत्र मुनिश्रेष्ठा राजानं द्रष्टु-मभ्ययुः। नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः॥ १॥ द्वैपायनः सशिष्यश्च सिद्धाश्चान्ये मनीषिणः। शतयूपश्च राजर्षिर्वृद्धः परमधार्मिकः॥ २॥ तेषां कुन्ती महाराज पूजां चक्रे यथाविधि। ते चापि तुतुषुस्तस्यास्तापसाः परिचर्यया॥ ३॥ तत्र धर्म्याः कथास्तात चक्रुस्ते

सूख गया है, जटा मृगछाला और वलकलसेही जिसका शरीर ढका हुआ है, ऐसे धृतराष्ट्रने एक महर्षिकी समान तीव्र तप करना आरंभ करदिया ॥१७॥ धर्म और अर्थके ज्ञाता तथा उत्तम बुद्धिवाले विदुर तथा सञ्जय, राजा धृतराष्ट्रकी तथा उनकी स्त्री गान्धारीकी सेवा करते थे और स्वयं भी वलकल वस्त्र पहरेहुए तथा दुर्बलहुए वे दोनों जितात्मा तप करनेमें लगेहुए थे ॥१८॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर तहाँ महातपस्वी नारद, पर्वत और देवल तथा दूसरे बहुतसे श्रेष्ठ मुनि राजा धृतराष्ट्रसे मिलनेको आया करते थे ॥ १ ॥ अपने शिष्योंके साथ द्वैपायन व्यासजी तथा दूसरे बुद्धिमान् सिद्ध और परमधर्मात्मा राजर्षि शतयूप भी आये ॥२॥ हे महाराज ! कुन्ती उनकी विधि विधानसे पूजा किया करती थी और वे तपस्वी भी उसकी सेवासे सन्तुष्ट हुआ

परमर्षयः । रमयन्तो महात्मानं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥ ४ ॥ कथान्तरे तु कस्मिंश्चिद्देवर्षिर्नारदस्ततः । कथामिमामकथयत् सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ५ ॥ नारद उवाच । केकयाधिपतिः श्रीमान् राजासीदकुतोभयः । सहस्रचित्य इत्युक्तः शतयूपपितामहः ॥ ६ ॥ स्वपुत्रे राज्यमासज्य ज्येष्ठे परमधार्मिके । सहस्रचित्यो धर्मात्मा प्रविवेश वनं नृपः ॥ ७ ॥ स गत्वा तपसः पारं दीप्तस्य वसुधाधिपः । पुरन्दरस्य संस्थानं प्रतिपेदे महाद्युतिः ॥ ८ ॥ दृष्टपूर्वः सुबहुशो राजन् सम्पतता मया । महेन्द्रसदने राजा तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ ९ ॥ तथा शैलालयो राजा भगदत्तपितामहः । तपोबलेनैव नृपो महेन्द्रसदनं गतः ॥ १० ॥

करते थे ॥३॥ हे तात! तहाँ वे परमऋषि महात्मा राजा धृतराष्ट्रको प्रसन्न करनेके लिये धर्मसंबन्धी कथायें कहा करते थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रत्यक्षदर्शी देवर्षि नारदजीने कोई एक कथा कहतेर यह कथा सुनाई थी ॥ ५ ॥ नारदजीने कहा, कि–केकयोंका एक राजा था, वह श्रीमान् राजा किसीसे भय नहीं मानता था, वह सहस्रचित्य नामवाला राजा शतयूपका पितामह था ॥६॥ वह धर्मात्मा राजा सहस्रचित्य, बड़े धर्मात्मा अपने बड़े पुत्रको राज्य सौंपकर वनको चलागया ॥ ७ ॥ वह महातेजस्वी राजा प्रकाशमान तपका पार पाकर इन्द्रके स्थान पर पहुँचगया था ॥ ८ ॥ हे राजन्! तपसे उसके पाप भस्म होगये थे, उस राजाको मैंने अनेकोंवार महेन्द्रके स्थान पर आनेजानेके समय देखा था ॥ ९ ॥ तथा भगदत्तका पितामह राजा शिलालय, जो तपके बलसे ही महेन्द्रके राज्यमें पहुँचा था, उस राजाको भी मैंने देखा है ॥ १० ॥

तथा पृषध्रो राजासीद्राजन् वज्रधरोपमः । स चापि तपसा लेभे नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ११ ॥ अस्मिन्नरण्ये नृपते मान्धातुरपि चात्मजः । पुरुकुत्सो नृपः सिद्धिं महतीं समवाप्तवान् ॥ १२ ॥ भार्या समभवद्यस्य नर्मदा सरितां वरा । सोऽस्मिन्नरण्ये नृपतिस्तपस्तप्त्वा दिवं गतः १३ शशलोमा च राजासीद्राजन् परमधार्मिकः । सम्यगस्मिन् वने तप्त्वा ततो दिवमवाप्तवान् ॥१४॥ द्वैपायनप्रसादाच्च त्वमपीदं तपोवनम् । राजन्नवाप्य दुष्प्रापां गतिमग्र्यां गमिष्यसि ॥ १५ ॥ त्वञ्चापि राजशार्दूल तपसोऽन्ते श्रिया वृतः । गान्धारीसहितो गन्ता गतिं तेषां महात्मनाम् ॥ १६ ॥ पाण्डुः स्मरति ते नित्यं बल-

और हे राजन् ! वज्रधारी इन्द्रकी समान एक पृषध्र नामका राजा था, वह भी तपके बलसे यहाँसे स्वर्गमें गया है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस वनमें मांधाताके पुत्र राजा पुरुकुत्सने भी बड़ी सिद्धि पायी थी॥१२॥नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदा जिसकी भार्या (चित्तको आनन्द देनेवाली) थी, वह राजा भी इस वनमें ही तपस्या करके स्वर्गको गया है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! एक शशलोम नामका राजा भी बड़ा धर्मात्मा था, उसने भी इस वनमें ही बड़ाभारी तप करके स्वर्ग पाया था ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तू भी द्वैपायन व्यासजीके अनुग्रहसे इस तपोवनमें आया है तो तुझे भी बड़ी कठिनतासे मिलनेयोग्य उत्तम गति मिलेगी ॥१५॥ हे राजसिंह ! तू भी अपने तपके अन्तमें ऐश्वर्यवान् होकर गान्धारीके सहित उन महात्माओंकी गतिको पावेगा ॥ १६॥ बलहन्ता इन्द्रके समीपमें पहुँचा हुआ राजा पाण्डु तुझे नित्य याद करता है, हे महाराज !

हन्तुः समीपगः। त्वां सदैव महाराज श्रेयसा स च योक्ष्यति ॥ १७ ॥ तव शुश्रूषया चैव गान्धार्याश्च यशस्विनी। भर्त्तुः सलोकतामेषा गमिष्यति वधूस्तव॥१८॥ युधिष्ठिरस्य जननी स हि धर्मः सनातनः। वयमेतत् प्रपश्यामो नृपते दिव्यचक्षुषा ॥ १९ ॥ प्रवेक्ष्यति महात्मानं विदुरश्च युधिष्ठिरम्। संजयस्तदनुध्यानादितः स्वर्गमवाप्स्यति ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच। एतच्छ्रुत्वा कौरवेन्द्रो महात्मा सार्द्धं पत्न्या प्रीतिमान् सम्बभूव। विद्वान् वाक्यं नारदस्य प्रशस्य चक्रे पूजां चातुलां नारदाय ॥ २१ ॥ ततः सर्वे नारदं विप्रसंघाः सम्पूजयामासुरतीव राजन्। राज्ञः प्रीत्या धृतराष्ट्रस्य ते वै पुनः पुनः संप्रहृष्टास्तदानीम्॥२२॥वैशम्पायन उवाच। नारदस्य तु तद्

वह अवश्य ही तुझे कल्याण प्राप्त करावेगा ॥ १७ ॥ यह तेरी वधू यशस्विनी कुन्ती भी तेरी तथा गान्धारीकी सेवा करनेसे अपने पतिके लोकमें पहुँचजायगी ॥ १८ ॥ यह युधिष्ठिरकी माता है और युधिष्ठिर सनातनधर्मरूप हैं, हे राजन्! हमे दिव्य दृष्टिसे यह सब दीखता है १९ और यह विदुर उन महात्मा युधिष्ठिरमें ही प्रवेश कर जायँगे और यह सञ्जय अपने ध्यानबलसे यहाँ हा स्वर्गमें चलाजायगा ॥ २० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि– महात्मा कौरवेन्द्र और उनकी स्त्री गान्धारी इस बातको सुनकर प्रसन्नहुए और उस विद्वान्ने नारदजीकी बातकी प्रशंसा करके उनकी बड़ीभारी पूजा की ॥ २१ ॥ फिर हे राजन्! राजा धृतराष्ट्रकी प्रीतिसे वार२ अति प्रसन्नहुए ब्राह्मणोंके उस सब समूहने उससमय नारदजीकी अति पूजा की ॥ २२ ॥ नारदजीके इन वचनोंकी उन श्रेष्ठ

वाक्यं शशंसुर्द्विजसत्तमाः॥शतयूपस्तु राजर्षिर्नारदं वाक्यमब्रवीत्२३अहो भगवता श्रद्धा कुरुराजस्य वर्द्धिता। सर्वस्य च जनस्यास्य मम चैव महाद्युते ॥२४॥ अस्ति काचिद्विवक्षा तु तां मे निगदतः शृणु। धृतराष्ट्रं प्रति नृपं देवर्षे लोकपूजित ॥ २५ ॥ सर्ववृत्तान्ततत्त्वज्ञो भवान् दिव्येन चक्षुषा। युक्तः पश्यसि विप्रर्षे गतिर्या विविधा नृणाम्२६ उक्तवान्नृपतीनां त्वं महेन्द्रस्य सलोकताम्। न त्वस्य नृपतेर्लोकाः कथितास्ते महामुने ॥ २७ ॥ स्थानमप्यस्य नृपतेः श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो। त्वत्तः कीदृक्कदा चेति तन्ममाख्याहि तत्वतः ॥२८॥ इत्युक्तो नारदस्तेन वाक्यं

ब्राह्मणोंने प्रशंसा की थी, तदनन्तर राजर्षि शतयूपने नारदजीसे यह बात कही, कि—॥ २३ ॥ अहाहा! आप भगवान्ने कुरुराजकी श्रद्धा बढायी है तथा हे महाद्युते! यहाँके सब मनुष्योंकी और मेरी भी श्रद्धा बढ़ाई है॥२४॥ हे देवर्षि! तीनों लोक तुम्हारी पूजा करते हैं, इसलिये राजा धृतराष्ट्रके विषयमें कुछ कहना है, उसको मैं कहता हूँ, आप सुनिये॥२५॥हे देवर्षि! आप दिव्यदृष्टिसे सब वृत्तान्तके तत्त्वको जानते हैं, मनुष्योंकी जो अनेकों प्रकारकी गति होती है उसको आप देखसकते हैं॥ २६ ॥ हे महामुने! इन्द्रलोकमें पहुँचेहुए दूसरे राजाओंकी बात तो आपने कही,परन्तु यह राजा किन लोकोंमें जायगा, यह नहीं बताया ॥ २७ ॥ हे विभो! मैं इस राजाको मिलने वाले स्थानको जानना चाहता हूँ और वह स्थान कैसा होगा तथा कब मिलेगा, यह भी आपसे सुनना चाहता हूँ, इसलिये मुझे ठीक२ सुनाइये ॥२८॥ उसने नारदजीसे इसप्रकार बूझा,तब दिव्य नेत्रवाले महातेजस्वी नारद

वाक्यं सर्वमनोनुगम् । व्याजहार सभामध्ये दिव्यदर्शी महातपाः ॥ २६ ॥ नारद उवाच । यदृच्छया शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम् । दृष्टवानस्मि राजर्षे तत्र पाण्डुं नराधिपम् ॥३०॥ तत्रैवं धृतराष्ट्रस्य कथा समभवन्नृप । तपसो दुष्करस्यास्य यदयं तपते नृपः ॥३१॥ तत्राहमिद-मश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम् । वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः ॥ ३२ ॥ ततः कुवेरभवनं गान्धारी-सहितो नृप॥ प्रयातो धृतराष्ट्रोऽयं राजराजाभिसत्कृतः३३ कामगेन विमानेन दिव्याभरणभूषितः । ऋषिपुत्रो महा-भागस्तपसा दग्धकिल्बिषः ॥३४॥ संचरिष्यति लोकांश्च देवगन्धर्वरक्षसाम् । स्वच्छन्देनेति धर्मात्मा यन्मां त्वमनु-

---

जीने बीच सभामें सबके मनको अच्छी लगनेवाली यह बात कही ॥ २६ ॥ नारदने कहा, कि–हे राजर्षि ! मैं अचानक इन्द्रके महलमें पहुँचकर शचीपतिसे मिला था और तहाँ राजा पाण्डुको भी देखा था ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तहाँ राजा धृतराष्ट्रके इस दुष्कर तपकी ही चर्चा चलरही थी, कि–जो तप यह राजा कररहा है ३१ तहाँ मैंने स्वयं इन्द्रको यह कहते सुना था, कि–इस परम आयुवाले राजाके अभी तीन वर्ष बाकी हैं ॥ ३२ ॥ तीन वर्षके अनन्तर यह राजा गान्धारीके सहित कुवेरके भवनमें जायगा, तहाँ पहुँचनेपर यक्षोंका राजा कुबेर इस राजा धृतराष्ट्रका सत्कार करेगा ॥३३॥ इच्छानुसार चलनेवाले विमानमें बैठकर यह राजा दिव्य आभूषणोंसे सजाहुआ जायगा, यह ऋषिका पुत्र बड़ा भाग्यशाली है, इसने तपसे अपने पापोंको जलाडाला है ॥ ३४ ॥ यह धर्मात्मा स्वच्छन्दतासे देवता, राक्षस और गंधर्वोंके

पृच्छसि ॥३५॥ देवगुह्यमिदं प्रीत्या मया वः कथितं महत्। भवन्तो हि श्रुतधनास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच। इति ते तस्य तच्छ्रुत्वा देवर्षेर्मधुरं वचः। सर्वे सुमनसः प्रीता बभूवुः स च पार्थिवः॥ ३७ ॥ एवं कथाभिरन्वास्य धृतराष्ट्रं मनीषिणः। विप्रजग्मुर्यथाकामं ते सिद्धगतिमास्थिताः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि नारदवाक्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच। वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः। बभूवुः पाण्डवा राजन्मातृशोकेन चान्विताः।१। तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम्। कुर्वाणाश्च

लोकोंमें विचरसकेगा, तूने जो मुझसे बूझा, उसके विषय में यह देवताओंका गुप्त विचार है, परंतु तुम सबोंके ऊपर प्रेम होनेसे यह बड़ी गुप्त बात कहदी है, क्योंकि-तुम सबोंके पास वेदरूप धन है और तुमने तपसे अपने पापोंको जलाडाला है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि-उन देवर्षिकी यह मीठी बात सुनकर उदारचित्तवाले वे सब तथा राजा धृतराष्ट्र प्रसन्न हुए ॥३७॥ बुद्धिमानोंकी ऐसी २ कथाओं से राजा धृतराष्ट्रको प्रसन्न करके सिद्धोंकी गति पाये हुए वे अपनी इच्छानुसार चले गये ॥ ३८ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

वैशम्पायनने कहा, कि-कौरवेन्द्र धृतराष्ट्रके वनको जानेके समय, उनके साथ अपनी माता कुन्तीके भी चले जानेसे हे राजन्! शोकमें मग्न हुए पाण्डव दुःखसे बडी ही पीड़ा पानेलगे ॥ १ ॥ तथा सब नगरनिवासी धीरज देनेके लिये, शोक करनेवाले राजा युधिष्ठिरके पास आकर

कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति ॥ २ ॥ कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने । गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम् ॥ ३ ॥ सुखार्हः स हि राजर्षिर्दुःखी तद्वनं महत् । किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः ॥४॥ सुदुष्करं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती । राज्यश्रियं परित्यज्य वनवासमरोचयत् ॥ ५ ॥ विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान् । स च गावल्गणिर्धीमान् भर्तृ पिण्डानुपालकः ॥६॥ आकुमारश्च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः । तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ ७ ॥ पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः । शोचन्तो मातरं

पढते थे और ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रकी अनेकों कथायें कह कर सुनाते थे ॥ २ ॥ वह बूढा राजा निर्जन वनमें किस प्रकार रहता है और महाभागा गान्धारी तथा कुन्ती किसप्रकार रहती हैं ? ॥ ३ ॥ जो राजर्षि सुख भोगनेके योग्य है वह महावनमें दुःखी होगा, जिसके पुत्र मारेगये हैं और जो प्रज्ञाचक्षु (अन्धा) है वह वनमें जाकर कैसे रहता होगा ? ॥ ४ ॥ अपने पुत्रोंको छोड़कर चलीगई यह कुन्तीने बड़ा कठिन काम किया है, क्योंकि—उसने राज्यलक्ष्मीको छोड़कर वनमें जाना अच्छा समझा है ४ मनको वशमें रखनेवाला विदुर भाईकी सेवा करनेकी इच्छासे वहाँ कैसे रहता होगा ? और अपने स्वामीके शरीरकी सेवा करनेवाला वह बुद्धिमान् सञ्जय भी किस प्रकार रहता होगा ? ॥ ६ ॥ चिन्ता और शोकसे व्याकुल हुए बालकों पर्यन्त सकल पुरवासी जहाँ तहाँ इकट्ठे हो कर आपसमें ऐसी २ बातें करते थे ॥ ७ ॥ वे सब पांडव शोकसे बड़े ही व्याकुल होगये थे, उनको अपनी बूढी

कृष्णासूनुर्नातिचिरं पुरे ॥ ८ ॥ तथैव वृद्धपितरं हतपुत्रं जनेश्वरम् । गान्धारीञ्च महाभागां विदुरं च महामतिम् ९ नैषां बभूव संप्रीतिस्तान् विचिन्तयतां तदा । न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च ॥ १० ॥ परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम् । तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः ॥ ११ ॥ अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्द्धनि । कर्णस्य च महाबाहोः संग्रामेष्वपलायिनः ॥१२॥ तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि । वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ १३ ॥ हतप्रवीरां पृथिवीं हृतरत्नां च भारत । सदैव चिन्तयन्तस्ते न शमं चोपलेभिरे ॥ १४ ॥ द्रौपदी

बालाके लिये बड़ा ही शोक था, इसलिये वे बहुत दिनों तक नगरमें नहीं ठहरसके ॥ ८ ॥ और वे बूढे ताऊजी, कि–जिनके पुत्र मारेगए थे उन राजा धृतराष्ट्रकी, महाभागा गान्धारी और परमबुद्धिमान् विदुरकी „चिन्तासे अधिक समय तक नगरमें न ठहरसके ॥९॥ उनकी बडी भारी चिन्ता करनेवाले पाण्डवोंका मन राज्यमें, स्त्रियोंमें तथा वेदाध्ययनमें नहीं लगा ॥ १० ॥ राजा धृतराष्ट्रके विषयकी चिन्ता करते २ तथा अपने भाई बन्धुओंके घोर संहारका बार २ स्मरण करते २ उनका चित्त बड़ा ही निराश होनेलगा॥११॥रणके मुहाने पर बालक अभिमन्युके, रणमेंसे पीछेको पैर न देनेवाले महाबाहु कर्णके, द्रौपदीके पुत्रोंके तथा अपने दूसरे मित्रोंके मारजानेको याद कर२ के वे वीर बड़े ही निराश होगये थे ।१२-१३। हे भारत ! जिसके ऊपरके वीरोंका नाश होगया है और जिसके रत्न हरलिये गये हैं ऐसी पृथिवीकी सदा चिन्ता करनेवाले पाण्डवोंको जरा भी शान्ति नहीं मिली ॥१४॥

हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी। नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत् ॥१५॥ वैराट्यास्तनयं दृष्ट्वा पितरं ते परीक्षितम्। धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः १६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच। एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः। स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥१॥ ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन्। ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे ॥ २ ॥ आविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन। सम्भाष्यमाणा अपि ते न किंचित् प्रत्यपूजयन् ॥३॥ ते स्म वीरा दुराधर्षा गाम्भीर्ये

बिचारी द्रौपदीके पुत्र मारेगये थे और सौभाग्यवती सुभद्राका पुत्र भी मारागया था उन दोनों देवियोंकी नगरमें अधिक प्रीति नहीं थी, वे किसी समय भी सुखी नहीं मालूम होती थीं ॥ १५ ॥ विराटकुमारीके पुत्र उस तेरे पिता परीक्षितको देखकर तेरे पूर्व पितामह (पाण्डव) अपने प्राणोंको धारण कियेहुए थे ॥ १६ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसप्रकार, अपनी माताको आनन्द देनेवाले पुरुषोंमें व्याघ्रसमान वीर पाण्डव अपनी माताको याद करतेहुए बड़े ही दुःखी होरहे थे१ जो पहले प्रतिदिन राज्यके कामोंमें लगे रहते थे, वे सब अब नगरमें रहकर राज्यके काम नहीं करते थे ॥ २ ॥ मानो शोकने उनके भीतर अपना घर बनालिया था ऐसे वे पाण्डव किसीको वाहवाही नहीं देते थे, कोई सामने आकर बात करता था तो उसके ऊपर जरा भी

सागरोपमाः । शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन् ४
अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः । कथन्नु वृद्ध-
मिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा ॥ ५ ॥ कथं स च महीपालो
हतपुत्रो निराश्रयः । पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापद-
सेविते ॥ ६ ॥ सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबा-
न्धवा । पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ७ ॥
एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत्तदा । गमने चाभवद्
बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ८ ॥ सहदेवस्तु राजानं प्रणिप-
त्येदमब्रवीत् । अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति ॥ ९ ॥
न हि त्वां गौरवेणाहमशक्तं वक्तुमंजसा । गमनं प्रति

ध्यान नहीं देते थे ॥ ३ ॥ जिनका सामना कोई नहीं कर सकता था ऐसे वे धीर पुरुष गम्भीरतामें समुद्रकी समान थे, शोकके कारणसे उनका विज्ञान जातारहा था और वे ऐसे रहते थे, कि-मानों उनको कुछ भान ही नहीं है ॥ ४ ॥ फिर वे पाण्डुनन्दन अपनी माताकी चिन्ता न करके, वह दुर्बल हुई कुन्ती उन दोनों बूढ़ोंको कैसे निभाती होगी ? और पशुओंसे भरेहुए वनमें वह पुत्र-हीन और निराश्रय हुए राजा धृतराष्ट्र कैसे रहते होंगे? तथा जिसके बान्धव मारेगये हैं ऐसी वह महाभागा देवी गान्धारी उस निर्जन वनमें उस अपने बूढ़े अन्धे पतिकी सेवा कैसे करती होगी ? ऐसी चिन्ता करने लगे ॥ ५-७ ॥ इसप्रकार उनके विषयकी बातें करते २ उनको उत्कण्ठा हुई और उन्होंने धृतराष्ट्रने मिलनेकी इच्छासे वनमें जानेका विचार किया ॥ ८ ॥ सहदेवने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके इसप्रकार कहा, कि-हाँ हाँ मैं समझगया, आपका विचार वनमें जानेका है ।९।

राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम् ॥१०॥ दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं वर्त्तयन्तीं तपस्विनीम्। जटिलां तापसीं वृद्धां कुशकाशपरिक्षताम् ॥ ११ ॥ प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभागिनीम् ॥ कदा नु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिताम्॥ १२ ॥ अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ। कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने ॥१३॥ सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा। उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १४ ॥ कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा। जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप ॥ १५ ॥ एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे

हे राजेन्द्र ! आपके गौरवसे मैं वनमें जानेके लिये आप से एकाएकी नहीं कह सका था, अब वह अवसर आगया, आप वनको चलें ॥ १० ॥ मेरा सौभाग्य है, कि-मैं तप करती, जटाधारिणी, तापसी, वृद्धहुई, कुश काँस तथा घासपर सोनेसे घायल हुई माता कुन्तीका दर्शन करूँगा ॥ ११ ॥ जो महल दुमहलोंमें बड़ी हुई थी और जिसने बड़े २ सुख भोगे हैं, परन्तु इससमय थकी हुई और अतिदुःखित हुई माताको मैं कब देखूँगा ? ॥१२॥ हे भरतसत्तम ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि-मनुष्यों की दशा सदा एकसी नहीं रहती,देखो जिस उलटफेरमें राजकुमारी कुन्ती दुःख भोगतीहुई वनमें रहती है १३ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ देवी द्रौपदी सहदेवकी इस बातको सुन कर सराहना करतीहुई आदरके साथ राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगी कि-॥ १४ ॥ आः ! यदि वह मेरी सासूजी जीवित हैं तो मैं उन देवीका दर्शन कब पाऊँगी,हे राजन्! यदि वह जीवित होंगी तो अब भी मुझे उत्साह देंगी १५

ते रमतां मनः । योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योज-
यिष्यसि ॥ १६ ॥ अप्रमादस्थितं चेमं विद्धि राजन् वधू-
जनम् । काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च १७
इत्युक्तः स नृपो देव्या द्रौपद्या भरतर्षभ । सेनाध्यक्षान्
समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह ॥१८॥ निर्यातयत मे सेनां
प्रभूतरथकुञ्जराम् । द्रक्ष्यामि वनसंस्थञ्च धृतराष्ट्रं मही-
पतिम् ॥ १९ ॥ स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद्राजा यानानि विवि-
धानि मे । सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः २०
शकटापणवेशाश्च कोषः शिल्पिन एव च । निर्यान्तु कोष-
पालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१ ॥ यश्च पौरजनः कश्चिद्
द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् । अनावृतः सुविहितः स च यातु

हे राजेन्द्र ! आपकी बुद्धि सदा ऐसी ही रहे, आपका
मन सदा धर्ममें लगा रहे, जिस मनसे, कि–आप अब
हमें कल्याणमार्गमें लगाये रहेंगे ॥१६॥ हे राजन् ! कुन्ती
गान्धारी और ससुरजीका दर्शन करना चाहनेवाली इन
सब बहुओंको जानेके लिये आगेको पैर बढायेहुए खड़ी
ही समझिये ॥१७॥ हे भरतसत्तम ! देवी द्रौपदीने जब
राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहा, कि–उसी समय उन्होंने
सब सेनापतियोंको बुलाकर यह बात कही, कि–॥१८॥
रथ और हाथियोंसे भरीहुई मेरी सेनाको नगरसे बाहर
लेचलो, मैं वनवासी राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उनका
दर्शन करूँगा ॥ १९ ॥ और राजाने स्त्रियोंके अध्यक्षोंसे
भी कहा, कि–मेरे भाँति२के सब वाहनोंको और सहस्रों
पालकियोंको तयार करो ॥ २० ॥ गाड़ी, दुकानें, खजाना
कारीगर और खजांची नगरसे निकलकर कुरुक्षेत्रके
आश्रमकी ओरको चलें ॥ २१ ॥ और जो कोई नगर-

सुरक्षितः ॥ २२ ॥ सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वं चैव महानसम् । विविधं भक्ष्यभोज्यञ्च शकटैरुह्यतां मम ॥ २३ ॥ प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम् । क्रियन्तां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च ॥ २४ ॥ एवमाज्ञापयामास भ्रातृभिः सह पाण्डवः । श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २५ ॥ स बहिर्दिवसानेव जनौघं परिपालयन् । न्यवसन् नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद्वनं प्रति ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरयात्रायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

निवासी राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करना चाहता हो उस को भी बिना रोकटोक उत्तम तयारीके साथ सुरक्षित करके लेचलो ॥ २२ ॥ रसोइये, ग्रामकी गौएँ, रसोईकी सब सामग्री तथा भाँति २ के भक्ष्य भोज्यके पदार्थोंको गाड़ियोंमें भरकर लेचलो ॥ २३ ॥ और हमारी यात्रा कल प्रातःकाल होगी, इसका ढँढोरा पिटवादो, इस काम में जरा देर न हो और आज ही मार्गमें भाँति२के पड़ाव तयार करादो ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार आज्ञा देकर अपने भाइयों सहित वह पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही स्त्री और बूढ़ोंको आगे करके नगरसे चलदिये ॥ २५ ॥ नगरसे बाहर निकल कर मनुष्योंके प्रवाहकी कई दिन तक बाट देखी, वह राजा युधिष्ठिर पाँच दिन तक ठहर कर फिर वनको गये २६ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ॥

वैशम्पायन उवाच । आज्ञापयामास ततः सेनां भरत-
सत्तमः । अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १ ॥
योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत् । क्रोशतां
सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति ॥ २ ॥ केचिद्यानै-
र्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्महाजवैः । काञ्चनैश्च रथैः केचि-
ज्ज्वलितज्वलनोपमैः ॥ ३ ॥ गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदु-
ष्ट्रैर्नराधिप । पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४॥
पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा । अन्वयुः कुरु-
राजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः ५ स चापि राजवचनादाचार्यो
गौतमः कृपः । सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति ६

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर भरतसत्तम युधि-
ष्ठिरने लोकपालोंकी समान अर्जुन आदि पुरुषोंसे रक्षित
सेनाको चलनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ तुरन्त ही तहाँ आज्ञा
होगई, आज्ञा होते ही तहाँ ऐसा बड़ाभारी कोलाहल
होउठा, कि-जोड़ो जोड़ो इसप्रकार सारथी चिल्लाने
लगे ॥ २ ॥ कोई मनुष्य सवारियोंमें बैठकर, कोई बड़े
तेज घोड़ों पर सवार होकर और कोई जलते हुए अग्नि
की समान दमकने वाले रथोंमें बैठकर चल दिये ॥ ३ ॥
तथा हे राजन् ! दूसरे कितने ही लोग हाथियों पर चढ़
कर और कोई ऊटों पर सवार होकर चलदिये तथा बाघ-
नखोंसे लड़नेवाले कितने ही योधा पैदल ही चल
दिये ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्रका दर्शन करनेकी इच्छावाले नगर-
निवासी और देशवासी अपनी २ सवारियोंमें चढ़कर
कुरुराज युधिष्ठिरके पीछे २ चलदिये ॥ ५ ॥ और राजा
युधिष्ठिरके कहनेसे गौतमवंशी सेनापति कृपाचार्य भी
सेनाको लेकर आश्रमको ओरको चलदिये थे ॥ ६ ॥

ततो द्विजैः परिवृतः कुरुराजो युधिष्ठिरः। संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधवन्दिभिः ॥७॥ पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि। रथानीकेन महता निर्जगाम कुरूद्वहः॥८॥ गजैश्चाचलसङ्काशैर्भीमकर्मा वृकोदरः। सज्जयन्त्रायुधोपेतैः प्रययौ पवनात्मजः ॥ ९ ॥ माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहौ सुसंवृतौ। जग्मतुः शीघ्रगमनौ सन्नद्धकवचध्वजौ ॥ १० ॥ अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा। वशी श्वेतैर्हयैर्युक्तैर्दिव्येनान्वगमन्नृपम् ॥११॥ द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिबिकायुताः। स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु ॥ १२ ॥ समृद्धरथहस्त्यश्वं

फिर अनेकों सूत, मागध और बन्दीजन जिनकी स्तुति कररहे थे ऐसे कुरुराज युधिष्ठिर ब्राह्मणोंको साथमें लिये हुए चलदिये ॥ ७ ॥ उनके मस्तक पर श्वेत छत्र लग रहा था तथा उन कुरुकुलको चलाने वाले राजाके साथ रथों की बड़ीभारी टुकड़ी चलरही थी ॥ ८ ॥ उनके पीछे २ जिनके ऊपर आयुध और यंत्र चढ़े हुए थे ऐसे पर्वताकार बड़े २ हाथियोंके सहित भयानक कर्म करने वाला पवनपुत्र वृकोदर चल रहा था ॥ ९ ॥ माद्रीके दोनों पुत्र भी तेज घोड़ों पर सवार होकर श्रेष्ठ मनुष्योंसे घिरेहुए, कवच पहरे और ध्वजाओंको फहरातेहुए चल दिये ॥ १० ॥ महातेजस्वी जितेन्द्रिय अर्जुन भी सफेद घोड़ोंसे जुते,सूर्यकी समान दमकतेहुए, दिव्य रथमें बैठकर राजा युधिष्ठिरके पीछे२ चलदिया ११ बहुतसे धनका दान करताहुआ, स्त्रियोंके अध्यक्षोंसे रक्षित द्रौपदी आदि स्त्रियोंका बड़ाभारी समूह भी पालकियोंमें बैठकर चलदिया ॥ १२ ॥ हे नरनसत्तम! उस

वेणुवीणानुनादितम् । शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत्तदा भरत-
र्षभ ॥ १३ ॥ नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशाम्पते।
वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १४ ॥
युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः । युधिष्ठिरस्य
वचनात् पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा
कुरुक्षेत्रमवातरत् । क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावि-
नीम् ॥ १६ ॥ स ददर्शाश्रमं दूराद्राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव हि ॥ १७ ॥ ततः
प्रमुदितः सर्वो जनस्तद्वनमञ्जसा । विवेश सुमहानादैरा-
पूर्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि धृतराष्ट्राश्रमगमने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

समय रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी तथा बाँसुरी और
बीनबाजा बजाती हुई पाण्डवोंकी सेना शोभा पारही
थी ॥१३॥ हे राजन्! नदियोंके और सरोवरोंके रमणीय
किनारों पर ठहरतेहुए कुरुवंशके मुख्य पुरुष धीरे२ जारहे
थे ॥ १४ ॥ युधिष्ठिरके कहनेसे महातेजस्वी युयुत्सु और
पुरोहित धौम्य नगरकी रक्षा करनेके लिये वहाँ ही रह
गये थे ॥ १५ ॥ तदनन्तर चलतेर परमपाविनी यमुना
नदीके पार होकर राजा युधिष्ठिर कुरुक्षेत्रमें जापहुँचे १६
हे कुरुवंशी जनमेजय ! युधिष्ठिरने दूरसे ही बुद्धिमान्
राजर्षि शतयूपके और धृतराष्ट्रके आश्रमको देखा ।१७।
उस समय सब लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और बड़े भारी
कोलाहलसे आश्रमको भरतेहुए, हे राजन्! बड़ी फुर्तीसे
उस वनमें जापहुँचे ॥१८॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

वैशम्पायन उवाच। ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः। अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १ ॥ स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः। स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा ॥ २ ॥ आश्रमन्तं ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः। पुण्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३ ॥ ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः। पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः॥४॥ तानपृच्छत्ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत्। पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥ ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम्। पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥६॥ तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा।

वैशम्पायन कहते हैं, कि–तदनन्तर पाण्डव दूरसे ही रथोंमेंसे उतर कर पैदल चलनेलगे और विनयके साथ झुककर राजाके आश्रममें घुसे ॥ १ ॥ तथा सब योधा, राज्यके निवासी और कुरुवंशके मुख्य पुरुषोंकी स्त्रियें भी पैदल चलकर उनके पीछेर गयीं ॥ २ ॥ हिरनोंकी टोलियोंसे भरेहुए और केलेके वनसे शोभामान भी, बस (मनुष्योंके न होनेसे) सूने राजा धृतराष्ट्रके आश्रममें पाण्डव पहुँचगये ॥३॥ इतनेमें ही तहाँ आयेहुए पाण्डवों को देखनेके लिये कुतूहलमें भरकर व्रत नियमोंको पालने वाले तपस्वी भी तहाँ आगये ॥४॥ आँखोंमें आँसू भरे हुए राजा युधिष्ठिरने उनसे बूझा, कि–कौरववंशको चलानेवाले हमारे ज्येष्ठ पिता (ताऊजी) कहाँ गये हैं? ५ उन्होंने राजा युधिष्ठिरको उत्तर दिया, कि–हे प्रभो! यमुनामें स्नान करनेको तथा फूल और जलका घडा लेने को गये हैं ॥६॥ तब तो तुरन्त ही वे सब उन तपस्वियोंके

ददृशुश्चापि दूरे तान् सर्वानथ पदातयः ॥ ७ ॥ ततस्ते
सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकांक्षिणः । सहदेवस्तु वेगेन
प्राधावद्यत्र सा पृथा ॥ ८ ॥ सस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः
पादावुपस्पृशन् । सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं
सुतम् ॥ ९ ॥ बाहुभ्यां संपरिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्र-
कम् । गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् ॥ १० ॥
अनन्तरञ्च राजानं भीमसेनमथार्जुनम् । नकुलञ्च पृथा
दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११ ॥ सा ह्यग्रे गच्छति तयो-
र्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः । कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्य-
पतन् भुवि ॥ १२ ॥ राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च
महामनाः । प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः१३

बतायेहुए मार्गसे पैदल चलदिये और बहुत दूरसे उनका
दर्शन किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर वे सब ताऊजीके दर्शनकी
इच्छासे बड़ी शीघ्रताके साथ चलनेलगे और सहदेव तो
जहाँ वह कुन्ती थी तहाँको दौड़ाहुआ चलागया ॥ ८ ॥
उस बुद्धिमान्ने जाते ही माताके चरण छुए और डीक
फोड़कर रोपड़ा, और उस प्यारे पुत्रको देखते ही कुन्तीके
नेत्रोंमें भी आँसू भरआये ॥९॥ और उसने पुत्र सहदेवको
दोनों हाथोंसे उठाकर छातीसे लगालिया तथा गांधारीसे
उसके आनेका समाचार कहा ॥ १० ॥ तदनन्तर राजा
युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुलको भी देखकर
कुन्ती उनकी ओरको जानेलगी ॥११॥ जिनके पुत्र मारे
गये थे ऐसे उन धृतराष्ट्र और गान्धारीके आगे२ कुन्ती
उनके हाथ पकड़कर चलरही थी, ऐसी कुन्तीको देखकर
पाण्डवोंने भूमिपर लेटकर प्रणाम किया ॥१२॥ बुद्धिमान्
प्रभावशाली और बड़े मनवाले राजा धृतराष्ट्रने स्वरसे

ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम्। उपतस्थुर्महात्मानो मातरञ्च यथाविधि ॥ १४ ॥ सर्वेषान्तोयकलशान् जगृहुस्ते स्वयन्तदा। पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥१५॥ तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा। पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम् १६ निवेदयामास तदा जनन्तं नामगोत्रतः। युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत् ॥ १७॥ स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः। राजात्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥१८॥ अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः। गान्धार्या सहितो धीमान् कुन्त्या च प्रत्य-

तथा स्पर्शसे पहचानकर उनको आश्वासन दिया ॥१३॥ तदनन्तर उन महात्मा पांडवोंने आँसू पोंछकर गांधारीसहित राजा धृतराष्ट्र और अपनी माता कुन्तीका यथोचितरूपसे चरणस्पर्श आदि किया ॥ १४ ॥ और फिर कुछ एक सावधान होने पर उनकी माता कुन्तीने फिर उनको धीरज बँधाया, तदनन्तर पाण्डवोंने उन सबोंके जलके कलश उनसे ले लिये ॥१५॥ तदनन्तर मनुष्योंमें सिंहसमान उन पाण्डवोंकी स्त्रियोंने तथा रणवासकी अन्य स्त्रियोंने और नगर तथा देशके रहनेवालोंने आकर राजा धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने उन सबोंके नाम और गोत्र सुनाकर उनकी पहचान करायी और राजा धृतराष्ट्रने उन सबोंसे आदर के साथ कुशलप्रश्न किया॥१७॥ उससमय जिसके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरआये थे ऐसे राजा धृतराष्ट्रने उन सबोंसे घिरकर यह समझा, कि-मानो मैं हस्तिनापुरमें अपने महलमें बैठा हूं ॥१८॥ तदनन्तर द्रौपदी आदि बहुओंने

नन्दत ॥१९॥ ततश्चाश्रममागच्छत् सिद्धचारणसेवितम् ।
दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २० ॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-
पर्वणि युधिष्ठिरादिधृतराष्ट्रसमागमे चतुर्विंशोऽध्यायः२४
वैशम्पायन उवाच । स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरत-
र्षभ । राजा रुचिरपद्माक्षैरासां चक्रे तदाश्रमे ॥ १ ॥
तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः । द्रष्टुं कुरुपतेः
पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः ॥ २ ॥ तेऽब्रुवन् ज्ञातुमि-
च्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः । भीमार्जुनौ यमौ चैव
द्रौपदी च यशस्विनी ॥३॥ तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वा-
स्तानभिनामतः । सञ्जयो द्रौपदीश्चैव सर्वाश्चान्याः कुरु-

राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और गान्धारीसहित उस बुद्धिमान् राजाने तथा कुन्तीने उनको अशीर्वाद आदिसे आनन्द दिया१९ फिर जैसे तारागणोंसे आकाश भर जाता है तैसे ही उनके दर्शनकी इच्छावालोंसे भरेहुए और सिद्ध चारणोंसे सेवित अपने आश्रममें वे सब आपहुँचे ॥ २० ॥ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि– हे जनमेजय! जिनके नेत्र सुन्दर कमलोंकी समान थे ऐसे मनुष्योंमें सिंहसमान उन भाइयोंके साथ राज धृतराष्ट्र अपने आश्रममें घुसे ॥ १ ॥ तहाँ विशाल वक्षःस्थल वाले कुरुराजके पुत्र पाण्डवोंको देखनेके लिये अनेकों देशोंसे आये हुए महाभाग्यवान् तपस्वी बैठे थे२ उन्होंने कहा– हम जानना चाहते हैं, कि– इनमें युधिष्ठिर कौन हैं ? भीम कौन हैं अर्जुन कौन हैं? नकुल सहदेव दोनों भाई कौनसे हैं ? और कीर्तिमती द्रौपदी कौनसी है ? ॥ ३ ॥ तब सूत सञ्जयने उन सबोंका

स्त्रियः ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः । प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्रस्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ ५ ॥ अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः । पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहुर्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम् ॥ ६ ॥ यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान् श्यामो युवा वारणयूथपाभः । सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७॥ कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ।मनुष्य

नाम ले लेकर बताया और द्रौपदीको तथा अन्य कुरुवंशकी स्त्रियोंको भी बताया ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा, कि- जिसका शरीर सुवर्णकी समान शुद्ध और गौर है, जो एक बडे सिंहकी समान ऊँचा है, जिसकी ऊँची नासिका है, जिसके नेत्र विशाल और लंबे हैं और जिसके नेत्र कुछ लालिमा लिये हुए हैं, यह कुरुओंका राजा युधिष्ठिर है ५ और यह जो मत्त गजराजकी समान चला करता है, जिसके शरीरका वर्ण तपे हुए सुवर्णकी समान शुद्ध और गौर है, जिसके स्कन्ध मोटे और चौडे हैं तथा जिसके भुजदण्ड मोटे और लम्बे हैं, यह वृकोदर भीमसेन है, इसको देखो देखो ॥ ६ ॥ और इसके पासमें जो यह महाधनुषधारी श्यामवर्ण, नवयुवा, हाथियोंके टोलेके स्वामी (गजराज) की समान शोभायमान सिंहकी समान ऊँचे स्कन्धोंवाला, क्रीडा करते हुए हाथीकी समान चलनेवाला और कमल की समान बडी२ आँखोंवाला बैठा है यह वीर अर्जुन है ॥ ७ ॥ और जो दो उत्तम पुरुष कुन्तीके पास बैठे हैं, ये दोनों विष्णु महेन्द्रकी समान सगे भाई नकुल और सहदेव हैं, इस संपूर्ण मनुष्यलोकमें इन दोनोंकी समान रूप,

लोके सकले समोऽस्ति यस्य न रूपे न बले न शीले ॥८॥
इयं पुनः पद्मदलायताक्षी मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव कृष्णा स्थिता मूर्त्तिमतीव
लक्ष्मीः ॥ ९ ॥ अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा यैषा प्रभा
मूर्त्तिमतीव सौमी। मध्यस्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १० ॥ इयञ्च जाम्बूनद-
शुद्धगौरी पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या। चित्राङ्गदा चैव
नरेन्द्रकन्या यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः ॥ ११ ॥ इयं स्वसा
राजचमूपतेश्च प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा। पस्पर्द्ध कृष्णेन
सदा नृपो यो वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ १२ ॥ इयञ्च

बल और शीलवाला कोई नहीं है ॥८॥ और फिर कमल-दलकी समान बड़ी२ आँखोंवाली, कुछएक मध्यम अवस्थाको पहुँची हुई सी, नील कमलकी कान्तिवाली, देवताओंकी भी देवतासी, मूर्त्तिमती लक्ष्मीकी समान कृष्णा द्रौपदी बैठी है ॥ ९ ॥ उसके पासमें ही उत्तम सुवर्णकी समान कान्ति-वाली, मूर्त्तिमती चन्द्रमाकी प्रभासी, बीचमें जो बैठी है वह हे द्विजो! जिनकी समता कोई नहीं करसकता ऐसे चक्रधारी श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा है १० और यह जो सुवर्णकीसमान शुद्ध और गोरीहै, वह अर्जुनकी स्त्री नागराजकी कन्या(उलूपी)है और गीले महुएके फूलोंकी समान वर्णवाली जो यह बैठी है, यह राजकुमारी चित्राङ्गदा (अर्जुनकी स्त्री) है ॥ ११ ॥ यह खिलेहुए नील कमलोंकी मालाकी समान वर्णवाली,जो बैठीहै,यह राजाका सेनापति जो राजा शल्य सदा कृष्णके साथ स्पर्धा रखता था उसकी बहिन है और यह भीमसेनकी मुख्य विवाहिता स्त्री है१२और यह जो बैठी है,जरासन्ध नामक

राज्ञो मगधाधिपस्य सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य । यवी-
यसो माद्रवतीसुतस्य भार्या मता चम्पकदामगौरी॥१३॥
इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु यैषा परासन्नमहीतले च ।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य ज्येष्ठस्य सेयं कमलाय-
ताक्षी ॥१४॥ इयन्तु निष्टसुवर्णगौरी राज्ञो विराटस्य
सुता सपुत्रा । भार्याभिमन्योर्निहतो रणे यो द्रोणादिभि-
स्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १५ ॥ एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः । राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शता-
ख्याः स्नुषा नृवीरा हतपुत्रनाथाः॥१६॥ एता यथा मुख्य-
मुदाहृता वो ब्राह्मण्यभावादृजुबुद्धिसत्त्वाः। सर्वा भवद्भिः

प्रसिद्ध मगधराजकी पुत्री है और यह चम्पेकी मालाकी
समान गोरी माद्रवतीके छोटे पुत्रकी भार्या है ॥ १३ ॥
नीलकमलकी समान श्याम शरीरवाली यह जो बैठी है,
जिसके नेत्र कमलकी समान विशाल हैं यह माद्रीके बडे
पुत्रकी भार्या है ॥ १४ ॥ और यह जो अत्यन्त तपाये
हुए सुवर्णकी समान गोरी है, यह राजा विराटकी पुत्री
अपने पुत्रको लिये हुए है, यह उस अभिमन्युकी भार्या
(उत्तरा) है, कि-जिस रथहीनको रणमें रथोंमें बैठे हुए
द्रोण आदिने (अन्यायसे) मारडाला था ॥ १५ ॥ और
ये माँग न भर कर बिखरे हुए केशोंवाली श्वेत वस्त्र
धारिणी सब स्त्रियें राजा दुर्योधन आदि की रानियें है,
इन राजा धृतराष्ट्रके जो सौ पुत्र थे उनकी ये स्त्रियें हैं,इनके
पुत्र और पति बडे वीर थे, वे सब रणमें मारेगये ॥ १६ ॥
मैंने क्रमसे मुख्यरसवोंके नाम बतादिये,ये सब ब्राह्मणोंकी
भक्त होनेसे शुद्ध सात्त्विक बुद्धिवाली हैं, आपने इनके
विषयमें बूझा था; इसलिये मैंने शुद्ध सत्त्ववाली राजाओं

परिपृच्छ्यमाना नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः॥१७॥ वैशम्पायन उवाच। एव स राजा कुरुवृद्धवर्यः समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः। पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १८ ॥ योधेषु चाप्याश्रममण्डलन्तमुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम्। स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे यथार्हतस्तान् कुशलान्यपृच्छत् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरादिपरिचये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच। युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित्त्वं कुशली ह्यसि। सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १ ॥ ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित्तेऽपि निरामयाः। सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप ॥२॥ कच्चित्तेऽपि निरातङ्का

की पत्नियोंका इतना परिचय देदिया है॥१७॥वैशम्पायन कहते हैं, कि—इस प्रकार बातचीत होनेके अनन्तर जब वे सब तपस्वी चलेगये तब उन कुरुवंशके बूढे और श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने मनुष्योंमें देवताओंकी समान अपने भतीजोंसे मिलकर उन सबोंका कुशल समाचार बूझा१८ तदनन्तर सेनाके योधा उस आश्रममण्डलके बाहर अपने वाहन आदिको छोड़कर बैठगये, तब स्त्रियें, बूढे तथा बालक भी अच्छे प्रकारसे बैठगये, उस समय राजा धृतराष्ट्र आकर उन सबोंसे यथायोग्य कुशलसमाचार बूझनेलगे॥१९॥ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे महाबाहु युधिष्ठिर? सब भाई और नगरके तथा प्रांतके निवासियों सहित तू कुशलसे तो है ? ॥ १ ॥ जो कितने ही लोग तेरे आश्रयसे जीते हैं वे सब भी निरामय (रोगादिरहित) तो हैं ? और

वसन्ति विषये तव । कच्चिद्वर्त्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ॥ ३ ॥ कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते । अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्त्तसे चानुरूपतः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाननग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि । कच्चित्ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ॥५॥ शत्रवोऽपि कुतः पौरा भृत्या वा स्वजनोऽपि वा । कच्चिद्यजसि राजेन्द्र श्रद्धावान् पितृदेवताः ॥ ६ ॥ अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्च्चसि भारत । कच्चिन्नयपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ॥ ७ ॥ क्षत्रिया वैश्यवर्गो वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः । कच्चित्

हे राजन् ! तेरे मंत्री, नौकर और गुरुजन तो सुखी हैं?२ तेरे राज्यमें जो बसते हैं वे सब भी सुखी तो हैं ? तू राजर्षियोंकी सेवन कीहुई प्राचीन रीतिके अनुसार चलता है ना ? ॥ ३ ॥ न्यायकी मर्यादाको बिना लाँघेहुए तेरा खजाना तो भरा रहता है ? शत्रु मध्यस्थ और मित्रोंके साथ योग्यताके अनुसार वर्त्ताव करता है ना ? ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंको यथाविधि दान देकर उनकी ओर दृष्टि रखता है ना ? हे भरतसत्तम ! तेरे वर्त्तावसे उनको सन्तोष तो रहता है ? ॥ ५ ॥ तथा तेरे शत्रुओंको भी सन्तोष तो है ? (यदि ऐसा है तो फिर) तेरे पुरवासी अथवा नौकर वा अपने सम्बन्धियोंके सन्तोषके विषयमें तो बूझना ही क्या है ? हे राजेन्द्र ! तू श्रद्धाके साथ अपने पितर और देवताओंका पूजन तो करता है ? ॥६॥ हे भरतवंशी ! अन्न जलसे अतिथियोंकी पूजा तो करता है ? तेरे देशमें रहनेवाले ब्राह्मण नीतिके मार्गमें चलते हुए अपने कर्ममें तत्पर तो रहते हैं ? ॥७॥ क्षत्रिय, वैश्यवर्ग, शूद्र और कुटुम्बी लोग नीतिके मार्गमें तो चलते हैं ?

स्त्रीबालवृद्धास्ते न शोचन्ति न याचते ॥ ८ ॥ जामयः पूजिताः कच्चित् तव गेहे नरर्षभ । कच्चिद्राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम् ॥९॥ यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति । वैशम्पायन उवाच । इत्येवं वादिनन्तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत ॥११॥ कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि । युधिष्ठिर उवाच । कच्चित्ते वर्द्धते राजं-स्तपोदम शमश्च ते ॥ ११ ॥ अपि मे जननी चेयं शुश्रू-षुर्विगतक्लमा । अथास्याः सफलो राजन् वनवासो भवि-ष्यति ॥ १२ ॥ इयञ्च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्व-कर्षिता । घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति १३ हतान् पुत्रान्महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान् । नापध्यायति

तेरे राज्यमें स्त्री, बालक और बूढे शोक तो नहीं करते हैं ? अथवा भीख तो नहीं माँगते हैं ? ॥ ८ ॥ हे नरसत्तम ! तेरे घरमें द्योरानी जिठानियोंका तो आदर होता है? तुझ सरीखे राजाको पाकर यह राजर्षियोंका वंश ॥ ९ ॥ हे महाराज ! उचित कीर्त्ति पानेसे पीछेको तो नहीं हटता है ? वैशम्पायन कहते हैं, कि–इसप्रकार बूझनेवाले उस राजा धृतराष्ट्रको नीति जाननेवाले युधिष्ठिरने इसप्रकार उत्तर दिया ॥ १० ॥ बोलनेमें और कार्य करनेमें चतुर राजा युधिष्ठिरने चतुराईके साथ यह बात कही, युधिष्ठिर बोले, कि–हे राजन् ! आपका तप, आपका दम, और आपकी शान्तिकी तो वृद्धि है ? ॥११॥ यह हमारी माता थकावट न मानती हुई आपकी सेवा करती है ना ? हे राजन् ! इसका वनवास सफल तो है ?१२ यह हमारी बड़ी माता (ताई) गान्धारी जो ठण्डी पवन और मार्गमें चलनेमें दुर्बल होगयी है जो घोर तप करनेमें लगी हुई है,

वा कच्चिदस्मान् पापकृतः सदा ॥१४॥ क चासौ विदुरो राजन् नेमं पश्यामहे वयम् । सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थितः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् । कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः ॥१६॥ वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसन्ततिः । कदाचिद् दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन् कानने क्वचित् ॥ १७ ॥ इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः । दिग्वासा मलदिग्धांगो वनरेणुसमुक्षितः १८ दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः । निवर्त्तमाना सहसा राजन् दृष्ट्वाश्रमं प्रति ॥१९ ॥ तमन्वधावन्नृपति-

यह देवी क्षत्रिय धर्मका पालन करनेमें तत्पर, जो महाबली पुत्र मारे गये उनके लिये शोक तो नहीं करती है ? तथा हम पाप करनेवालोंका तो नित्य ध्यान नहीं करती है १३।१४ और हे राजन् ! विदुर कहाँ हैं ? हम उनको यहाँ नहीं देखरहे हैं, और तप करनेमें लगाहुआ सञ्जय तो कुशल-पूर्वक है ?॥१५॥इसप्रकार युधिष्ठिरके बूझने पर धृतराष्ट्रने उस राजाको उत्तर दिया, धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे बेटा ! विदुर कुशलपूर्वक है और वह घोर तप कररहा है॥१६॥ वह वायुका भक्षण करता है, निराहार रहता है,दुर्बल होगया और अब उसकी नाड़ियें मात्र रह गयीं हैं, इस शून्य जङ्गलमें ब्राह्मण कभी२ उसका दर्शन करते हैं१७ धृतराष्ट्र इतना कहरहे थे कि-इतनेमें ही जटाधारी मुखमें पत्थर दाबे, दुर्बल, दिगम्बर,मैलसे लिहसेहुए शरीरवाले, वनकी धूलसे ढकेहुए । १८॥ विदुर दूरसे देखनेमें आये यह बात राजा धृतराष्ट्रने बतायी, इतनेमें ही हे राजन्! आश्रमकी ओरको देखकर बहुतसे लोग लौटे आरहे थे१९

रैक एव युधिष्ठिरः । प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं क्वचित् क्वचित् ॥ २० ॥ भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिर । इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥२१॥ ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतांवरः । विदुरो वृक्षमाश्रित्य कञ्चित्तत्र वनान्तरे ॥ २२ ॥ तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् । अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः । विदुरस्य श्रवे राजा तं च प्रत्यभिपूजयत ॥ २४ ॥ ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत। संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः ॥२५॥ विवेश विदुरो धीमान् गात्रैर्गात्राणि चैव ह । प्राणान्

वनमेंसे केवल राजा युधिष्ठिर ही, कभी दीखते और कभी न दीखते, घोर वनमेंको घुसतेहुए उनके पीछेको दौड़े ॥२०॥ हे विदुर ! हे विदुर ! मैं आपका प्यारा राजा युधिष्ठिर हूँ,इसप्रकार पुकारतेहुए वह राजा यत्नके साथ उनके पीछे दौड़नेलगे ॥२१॥ फिर निर्जन एकान्त स्थानमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी उस वनमें किसी एक वृक्षका सहारा लेकर खड़े होगये ॥ २२ ॥ महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने अति क्षीण हुए,आकारमात्र दीखनेवाले उन महाबुद्धिमान्को पहचाना ॥ २३ ॥ 'मैं युधिष्ठिर हूँ' इस पुकारको विदुर सुनलें, इतनी दूर पर युधिष्ठिर उनके सामने खड़े होगये और उनकी पूजाकी ॥२४॥ तदनन्तर आँखोंके पलकोंको न हिलाकर (टकटकी बाँधकर) विदुरने राजा युधिष्ठिरकी ओरको दृष्टि की, फिर विदुरने राजा युधिष्ठिरके ऊपर दृष्टिको ठहराकर समाधि लगायी २५ और बुद्धिमान् विदुर अपने अङ्गोंके सहित युधिष्ठिरके

प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥२६॥ स योगबल-
मास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् । विदुरो धर्मराजस्य तेजसा
प्रज्वलन्निव२७विदुरस्य शरीरन्तु तथैव स्तब्धलोचनम् ।
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् ॥२८॥ बलवन्तं
तथात्मानं मेने बहुगुणन्तदा । धर्मराजो महातेजास्तच्च
सस्मार पाण्डवः ॥ २९ ॥पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान्
स विशाम्पते। योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा३०
धर्मराजश्च तत्रैवं सञ्चस्कारयिषुस्तदा । दग्धुकामोऽभव-
द्विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३१ ॥ भो भो राजन्न दग्ध-
व्यमेतद्विदुरसंज्ञकम् । कलेवरमिहैवन्ते धर्म एष सना-

अङ्गोंमें प्रवेश किया, अपने प्राणोंको युधिष्ठिरके प्राणोंके
साथ और इन्द्रियोंकी उनकी इन्द्रियोंमें मिलादिया ।२६।
योगबलका आश्रय लेकर विदुरने मानो प्रदीप्त होरहे हों
इसप्रकार युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया२७ उस समय
विदुरका शरीर तो उसीप्रकार स्थिर नेत्रवाला तथा वृक्षके
सहारेसे खडा रहा, परन्तु राजा युधिष्ठिरने देखा, कि-
उसमें चेतन (जीव) नहीं रहा ॥२८॥ और वह अपनेको
विशेष बलवाला तथा अधिकगुणोंवाला मानने लगे,उस
समय महातेजस्वी पाण्डुकुमार धर्मराजको पुराना वृत्तांत
याद आगया२९हे राजन् । उनको अपना वह सब पुराना
वृत्तान्त याद आगया, कि-जो योगधर्मके विषयमें महा-
तेजस्वी व्यासजीने कहा था, तैसा ही हुआ ॥३०॥ फिर
धर्मराजकी इच्छा हुई, कि-उनका अग्निसंस्कार यहाँ ही
करदियाजाय,धर्मराज विदुरके शरीरको जलादेना चाहते
हैं,यह जानकर उन विद्वान् युधिष्ठिरसे वाणी देवीने कहा,
कि-॥ ३१ ॥ भो भो राजन् । इस विदुर नामके शरीरको

तनः ॥ ३२ ॥ लोकाः सान्तानिका नाम भविष्यन्त्यस्य भारत । यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैष शोच्यः परन्तप॥ ३३ ॥ इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्य ततः पुनः। राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३४ ॥ ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा । भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥३५॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत् । आपो मूलं फलञ्चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥ यदन्नो हि नरो राजंस्तदन्नोऽस्यातिथिः स्मृतः । इत्युक्तः स तथेत्येवं प्राह धर्मात्मजो नृपम्।३७।

तुम जलाओ मत, क्योंकि-यह शरीर तो तुम्हारा ही कलेवर है, यह सनातनधर्मरूप है (दूसरा अर्थ यह है, कि-इस विषयमें तुम्हारे लिये यही सनातनधर्म है) ॥ ३२ ॥ हे भारत ! इन विदुरजीको सांतानिक नामके लोक मिलेंगे. हे परन्तप ! यह यति (संन्यासी) के धर्मको प्राप्त होगये थे, इनका शोक करना उचित नहीं है (तात्पर्य यह है, कि-विदुर यति कहिये संन्यासीके धर्मका पालन करते थे, इसलिये इनके शरीरका दाह करना उचित नहीं है) ३३ इसप्रकार वाग्देवीने धर्मराजसे कहा,तब धर्मराज तहाँसे पीछेको चलेआये और विचित्रवीर्यके पुत्र राजा धृतराष्ट्रसे यह सब निवेदन किया ॥३४॥ यह सुनकर उस तेजस्वी राजाको तथा भीमसेन आदि सबजनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३५ ॥यह सुनकर प्रसन्न हुए राजा धृतराष्ट्रने धर्मपुत्रसे कहा, कि-मेरे फल, मूल और जलको ग्रहण कर ॥ ३६ ॥ क्योंकि-हे राजन् ! शास्त्रमें कहा है, कि-मनुष्य स्वयं जो ग्रहण करे, वही अपने अतिथिको देय, (यह धर्म है) इसप्रकार धृतराष्ट्रने धर्मराजसे कहा; तब

फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः। ततस्ते वृक्ष-मूलेषु कृतवासपरिग्रहाः। तां रात्रिमवसन् सर्वे फल-मूलजलाशनाः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-पर्वणि विदुरनिर्याणे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

वैशम्पायन उवाच। ततस्तु राजन्नेतेषामाश्रमे पुण्य-कर्मणाम्। शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी १ ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः। विचित्रपद-सञ्चारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २ ॥ पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुपुस्तदा। उत्सृज्य तु महार्हाणि शयनानि नराधिप ॥३॥ यदाहारोऽभवद्राजा धृतराष्ट्रो महामनाः।

धर्मराजने उस राजाको उत्तर दिया, कि—आपका कहना ठीक है ॥३७॥ फिर राजा धृतराष्ट्रके दियेहुए फल मूलों को अपने भाइयोंके सहित धर्मराजने खाया, फिर उन्होंने वृक्षोंके तले ठहरनेका प्रबन्ध किया और फल, मूल तथा जलके भोजनसे उन सबोंने वह रात्रि बितादी ॥ ३८ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि हे राजन्! तदनन्तर इस पुण्य-कर्म करने वालोंके आश्रममें कल्याणकारी नक्षत्रों वाली वह रात्रि बीत गयी ॥ १॥ तहाँ उन्होंने धर्म और अर्थ-रूप लक्षणों वाली कथायें कहीं, उन कथाओंमें विचित्र-पद और अनेकों श्रुतियें भी थीं ॥ २ ॥ हे राजन्! पाण्डव बहुमूल्य बिस्तरोंको छोडकर अपनी माताके आस पास भूमि पर सोये थे ॥३॥ बड़े मन वाले राजा धृतराष्ट्रने जो आहार किया था वही आहार मनुष्योंमें वीर उन

तदाहारा व्रतीरास्ते न्यवसंस्तां निशां तदा ॥४॥ व्यतीतायान्तु शर्वर्यां कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम् ॥ ५ ॥ सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः । यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६ ॥ ददर्श तत्र वेदीश्च सम्प्रज्वलितपावकाः । कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपस्थिताः ॥ ७ ॥ वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि । ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः ॥८॥ मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः । अशङ्कितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥९॥ केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः।कोकिलानांकुहुरवैः

सबोंने भी किया और उस रातमें वहाँ ही रहे ॥ ४ ॥ जब रात्रि पूरी हुई तब अपने भाइयों सहित राजा युधिष्ठिरने प्रातःकालका नित्यकर्म करके उस आश्रममण्डल का दर्शन किया ॥ ५ ॥ वे राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे अपने अन्तःपुरके परिवार, नौकर और पुरोहितके सहित सुखपूर्वक यथेच्छरूपसे उन आश्रमोंमें फिरते रहे ॥६॥ और तहाँ जिनमें स्नान करके बैठे हुए ऋषि मुनि आहुतियें दे रहे थे ऐसी प्रज्वलित अग्निवाली वेदियोंके दर्शन किये ॥ ७ ॥ उन वेदियोंमें बनके पुष्पोंके ढेर लगे हुए थे, होमीहुई सामग्रीका धुआँ उठ रहाथा और ब्रह्म (वेद) रूप शरीर वाली वे वेदियें मुनियोंकी मण्डलियोंसे भर-रहीं थीं॥ ८ ॥ तहाँ मृगोंकी टोलियें जहाँ तहाँ निश्चिन्त बैठी हुईं आराम ले रही थीं तथा हे प्रभो ! पक्षियोंके समूह निःशङ्क रूपसे जोरसे गान कर रहे थे ॥ ९ ॥ नीली ग्रीवावाले मयूरोंकी केकासे पपीहोंकी कूजनासे और कोयलोंके कुहूर शब्दसे उन वेदियोंके स्थान सुख-

सुखैः श्रुतिमनोहरैः ॥ १० ॥ प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिदलंकृतम् । फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितम् ॥ ११ ॥ ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् । कलशान् कांचनान् राजंस्तथैवोदुम्बरानपि ॥ १२॥ अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक् स्रुवञ्च महीपतिः। कमण्डलूंश्च स्थालीश्च पिठराणि च भारत ॥ १३ ॥ भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप । यद्यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम् ॥ १४ ॥ एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् । वसु विश्राण्य तत् सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १५ ॥ कृताह्निकञ्च राजानं धृतराष्ट्रं महीपतिम् । ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६ ॥

कारक और कानोंको मनोहर मालुम होते थे,इसलिये१० तथा वेदाध्ययन करनेवाले द्विजोंकी वेदध्वनिसे कितने ही स्थल शोभा पारहे थे, कहीं फल मूलोंके ढेर लगे होनेसे शोभा होरही थी ॥११॥ हे राजन्! फिर उन राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके लिये ही लायेहुए सोनेके कलश और कमण्डलु उनको अर्पण किये ॥१२॥ राजा युधिष्ठिरने मृगछालायें,जटा बाँधनेकी डोरियें, करछी, कटोरे,कमण्डलु थाली और बटलोइयें अर्पण कीं ॥१३॥ और हे राजन्! लोहेके भाँति २ के पात्र तथा छोटे २ पात्र जिस २ को जितने२ लेनेकी इच्छा हुई उसको उतने२ही पात्र दिये१४ इसप्रकार उन धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने उस आश्रम-मण्डलको घूम२कर देखा और लायाहुआ सब धन तहाँ देकर लौटआये ॥ १५ ॥ और गान्धारीके साथ बैठे हुए, शान्तरूप, जो नित्यकर्मको करके निबट गये थे ऐसे राजा धृतराष्ट्रके पास आकर उनका दर्शन किया ॥१६॥ धर्मात्मा

मातरञ्चाविदूरस्थां शिष्यवत् प्रणतां स्थिताम् । कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम् ॥ १७ ॥ स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः । निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो बृष्यामुपविवेश ह ॥ १८ ॥ भीमसेनादयश्चैव पाण्डवा भरतर्षभ । अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाज्ञया ॥१९॥ स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः । बिभ्रद् ब्राह्मीं श्रियं दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः ॥ २० ॥ तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः । शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१ ॥ व्यासश्च भगवान् विप्रो देवर्षिगणसेवितः । वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास पार्थिवम् ॥ २२ ॥ ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च

राजा युधिष्ठिरने शिष्यकी समान प्रणाम करती हुई पास ही बैठी शिष्टाचारका पालन करनेवाली अपनी माता कुन्तीके दर्शन किये ॥१७॥ युधिष्ठिरने राजा धृतराष्ट्रकी पूजा की, अपना नाम बताया, तब राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि–बैठो, तब वह कुशाके आसन पर बैठ गये ॥ १८ ॥ हे भरतसत्तम ! भीमसेन आदि पाण्डवोंने भी उनको प्रणाम किया और चरणछुए तथा राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे बैठगये ॥१९॥ उन सबोंसे घिरेहुए वह कौरवराज, जैसे देवताओंके बीचमें बैठेहुए बृहस्पति दमकती हुई ब्राह्मी शोभाको धारण करते हैं, तैसे ही बडीभारी शोभा पाने लगे ॥ २० ॥ ये सब बैठे थे, कि–इतनेमें ही कुरुक्षेत्रमें रहनेवाले शतयूप आदि महर्षि तहाँ आगये ॥२१॥ और देवर्षियोंसे सेवित, अपने शिष्योंसे घिरेहुए महातेजस्वी भगवान् विप्र व्यासजीने भी उस राजाको दर्शन दिये२२ तब उन कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र तथा बलवान् कुन्तीपुत्र

वीर्यवान्। भीमसेनादयश्चैव प्रत्युत्थायाभ्यवादयन्।२३। समागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः। धृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४ ॥ वरन्तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम्। प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम्॥२५॥ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः। द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासागमने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु। व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र महाबाहो कच्चित्ते वर्त्तते तपः। कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २ ॥ कच्चिद्धृदि न ते

युधिष्ठिर और भीमसेन आदिने उठकर उनको प्रणाम किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर शतयूप आदिसे घिरे हुए और तहाँ आकर पहुँचेहुए व्यासजीने राजा धृतराष्ट्रसे कहा, कि-बैठ जाइये ॥ २४ ॥ फिर कुशाका बनायाहुआ एक आसन कि-जिसके ऊपर काली मृगछाला थी वह व्यास जीके लिये बिछाया गया और उसके ऊपर व्यासजी विराज गये ॥ २५ ॥ फिर बड़े प्रतापशाली वे सब श्रेष्ठ द्विज, व्यासजीकी आज्ञासे उनके आस पास आसनों पर बैठगये ॥ २६ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर महात्मा पाण्डव बैठगये तब सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने यह बात कही ।१। व्यासजी कहनेलगे, कि-हे महाबाहु धृतराष्ट्र ! तेरा तप किसप्रकार चलरहा है? हे राजन् ! वनवासमें तेरे मनको आनन्द तो प्राप्त होता है? ॥२॥ हे राजन् ! पुत्रोंके मारे

शोको राजन् पत्रविनाशजः । कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि सुप्रसन्नानि तेऽनघ ॥ ३ ॥ कच्चिद् बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् । कच्चिद्वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ॥ ४ ॥ महाप्राज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी। आगमाऽपायतत्त्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति ॥५॥ कच्चित् कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषत्यनहंकृता । या परित्यज्य स्वं पुत्रं गुरुशुश्रूषणे रता ॥ ६ ॥ कच्चिद्धर्मसुतो राजा त्वया प्रत्यभिनन्दितः । भीमार्जुनयमाश्चैव कच्चिदेतेऽपि सान्त्विताः॥७॥कच्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान् कच्चित्ते निर्मलं मनः । कच्चिच्च शुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप ॥८॥

जानेका शोक तेरे मनमें अब तो नहीं है ? हे निष्पाप ! अब तेरे सब ज्ञान अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाले तो हैं ? ३ तू अपनी बुद्धिको दृढ़ करके वनवासकी विधिका ठीक २ पालन करता है ना ? इस मेरी पुत्रवधू गान्धारीको अब कभी शोक तो आकर नहीं दबालेता है ?॥४॥ यह महाज्ञानवाली बुद्धिमती देवी धर्म और अर्थको समझनेवाली है, यह आगम (लाभ) और अपाय (हानि) के तत्त्वोंको समझती है, इसको अब शोक तो नहीं होता है ? ॥५॥ हे राजन् ! अहङ्कार न करनेवाली और जिसने अपने पुत्रों को भी छोड़ दिया है तथा जो गुरुजनोंकी सेवा करनेमें प्रीति रखती है ऐसी यह कुन्ती तुम्हारी सेवा तो करती है ? ॥६॥ हे राजन् ! तूने इस धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अभिनन्दन दिया या नहीं ? इन भीम, अर्जुन और नकुल सहदेवको भी धीरज बँधाया या नहीं ? ॥७॥ इनको देख कर तुझे आनन्द होता है या नहीं ? तेरा मन निर्मल हुआ है या नहीं ? हे राजन् ! तुझे ज्ञान प्राप्त होगया, अब भी

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत। निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥ ९ ॥ कच्चित्ते न च मोहोऽस्ति वनवासेन भारत। स्ववशे वन्यमन्नं वा उपवासोऽपि वा भवेत् ॥ १० ॥ विदितञ्चापि राजेन्द्र विदुरस्य महात्मनः। गमनं विधिनानेन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११ ॥ माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः। महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः ॥ १२ ॥ बृहस्पतिर्वा देवेषु शक्रो वाप्यसुरेषु च। न तथा बुद्धिसम्पन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥१३॥ तपोबलव्ययं कृत्वा सुचिरात् संभृतन्तदा। माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः १४ नियोगाद् ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च। वैचित्रवीर्यके

तेरे भाव शुद्ध हुए हैं या नहीं ? ॥८॥ क्योंकि-हे भरतवंशी महाराज ! निर्वैरता (किसीसे वैरभाव न होना), अक्रोध (क्रोध न करना) और सत्यभाषण ये तीन गुण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥९॥ हे भारत ! वनवाससे तुझे कुछ मोह तो नहीं होता है ? इस वनमें उत्पन्न होनेवाला अन्न तथा उपवास तुम्हारे अपने वशमें रहता है या नहीं ? ॥१०॥ हे राजेन्द्र ! बड़े मनवाले धर्मरूप महात्मा विदुरकी जिसप्रकार परलोकयात्रा हुई, उसकी तुम्हें खबर है या नहीं ? ॥ ११ ॥ वह धर्म माण्डव्य ऋषिके शापसे विदुररूपमें जन्मा था, वह महाबुद्धिमान्, महायोगी, महात्मा और महामना था ॥१२॥ देवताओंमें बृहस्पति और असुरोंमें शुक्राचार्य भी ऐसे बुद्धिमान् नहीं हैं, कि-जैसा बुद्धिमान् विदुर था ॥१३॥ चिरकालसे इकट्ठे कियेहुए तपोबलका व्यय करके माण्डव्य ऋषिने सनातन धर्मको जीतलिया था॥१४॥ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार

क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः ॥ १५ ॥ भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः। धारणान्मनसा ध्यानात् यं धर्मं कवयो विदुः ॥१६॥ सत्येन सम्वर्द्धयति यो दमेन शमेन च। अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः ॥ १७ ॥ येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः । धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥१८॥ यथा वह्निर्यथा वायुर्यथापः पृथिवी यथा । यथाकाशं तथा धर्म इह चामुत्र च स्थितः ॥१९॥ सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम् । दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्तकल्मषैः ॥ २० ॥ यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः । स एष राजन् दृश्यस्ते

पहले मैंने अपने तपोबलसे विचित्रवीर्यकी स्त्रीरूप क्षेत्रमें उस महाबुद्धिमान्को उत्पन्न किया था॥१५॥हे महाराज ! धारणा (एकही वस्तु पर मनको स्थिरकरना) मनसे ध्यान (सर्व वस्तुओंसे मनको खेंचलेना)के कारण जिसको विद्वान् धर्म कहते हैं ऐसा यह तेरा भाई विदुर सनातनधर्मका अवतार था, देवताओंका देवता था ॥ १६ ॥ सत्य, दम, शम (शान्ति), अहिंसा और दानसे उसकी वृद्धि होती है और वह तप किया करता है तथा सनातन है ॥१७॥ हे राजन् ! उस अमितबुद्धि और प्रज्ञावान्ने योगके बलसे इन कुरुराज युधिष्ठिरको उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥ जैसे अग्नि, जैसे वायु, जैसे जल,जैसे पृथ्वी और जैसे आकाश इस लोकमें और परलोकमें रहते हैं तैसे ही यह धर्म भी इस लोकमें और परलोकमें रहता है१९हे राजेन्द्र ! वह धर्म सब जगह जा सकता है, वह सब चराचर वस्तुओंमें व्यापाहुआ है, देवोंके देव और सब पापोंसे मुक्त सिद्ध पुरुष ही उसको जान सकते हैं ॥ २० ॥ जो धर्म है वही

पाण्डवः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ २१ ॥ प्रविष्टः सुमहात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः। दृष्ट्वा महात्मा कौन्तेयं महा-योगबलान्वितः ॥ २२ ॥ त्वाञ्चापि श्रेयसा योक्ष्ये न चिराद्भरतर्षभ। संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक २३ न कृतं यैः पुरा कैश्चित् कर्म लोके महर्षिभिः। आश्चर्यभूतं तपसः फलं तद्दर्शयामि वः ॥ २४ ॥ किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुमभीप्सितम्। द्रष्टुं प्रष्टुमथ श्रोतुं तत् कर्तास्मि तवानघ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि आश्रमवास-पर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८॥

समाप्तञ्चाश्रमवासपर्व

विदुर है, जो विदुर है वही युधिष्ठिर है,हे राजन्! वही पांडव यह सामने दीखरहा है और तेरे नौकरकी समान यहाँ खडाहुआ है ॥२१॥ बड़ेभारी योगबलवाला, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ यह तेरा महात्मा भाई,महात्मा युधिष्ठिरको देखकर इसके शरीरमें ही प्रविष्ट होगया है ॥२२॥ और हे भरतसत्तम! थोड़ेसे ही समयमें मैं तेरा कल्याण करूँगा, हे पुत्र! तेरे सन्देहको नष्ट करनेके लिये ही मैं आज यहाँ आया हूँ, यह तू जान ले ॥ २३ ॥ पहले इस लोकमें महर्षियोंसे जो काम नहीं होसका है, वह अपने तपका आश्चर्यकारक बल मैं तुझे दिखाता हूँ ।।२४॥ हे राजन्! तुझे कौनसे प्रिय पुरुषसे मिलनेकी इच्छा है ? तू क्या देखना, बूझना या सुनना चाहता है ? हे निष्पाप! तू जो कहेगा मैं वही करूँगा ॥ २५ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

अथ पुत्रदर्शनपर्व ।

जनमेजय उवाच । वनवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे मही-
पतौ । सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते ॥ १ ॥
विदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते । वसत्सु पांडु-
पुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले ॥ २ ॥ यत्तदाश्चर्यमिति वै
करिष्यामीत्युवाच ह । व्यासः परमतेजस्वी महर्षिस्त-
द्वदस्व मे ॥ ३ ॥ वनवासे च कौरव्यः कियन्तं कालम-
च्युतः । युधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत् सजनस्तदा ॥ ४ ॥
किमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन् प्रभो । सान्तः-
पुरा महात्मान इति तद् ब्रूहि मेऽनघ ॥ ५ ॥ वैशम्पायन
उवाच । तेऽनुज्ञातास्तदा राजन् कुरुराजेन पाण्डवाः ।

पुत्रदर्शनपर्व

जनमेजयने कहा, कि-हे विप्र! राजाओंमें सिंहसमान महीपति धृतराष्ट्र अपनी स्त्री गान्धारी और पुत्रवधू कुन्तीके साथ वनमें गये थे ॥ १ ॥ और पूर्ण सिद्ध हुए विदुरने भी धर्मराज युधिष्ठिरमें आश्रय लिया तथा आश्रममंडलमें पाण्डुके सब पुत्र ठहरे हुए थे, उस समय ।२। परम तेजस्वी महर्षि व्यासजीने जो ऐसा कहा था, कि-जो एक आश्चर्य है वह मैं तुमसे कहूँगा, वह कौनसी बात है वो मुझे सुनाओ ॥३॥ अच्युत कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर अपने मनुष्योंके साथ वनवासमें कितने दिनों तक रहे थे? ॥४॥ हे निष्पाप प्रभो! अपनी सेना और स्त्रीमण्डलके सहित तहाँ रहते हुए उन महात्माओंने क्या आहार किया था, यह आप मुझे सुनाइये ॥ ५ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजन्! कुरुराजकी आज्ञासे पाण्डव तहाँ विश्राम करनेलगे, और भाँति २ के अन्न तथा पीनेके

विविधान्यन्नपानानि । विश्राम्यानुभवन्ति तं ॥ ६ ॥
मासमेकं विजह्रुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने । अथ तत्रा-
गमद्व्यासो यथोक्तं ते मयानघ ॥७॥ तथा च तेषां सर्वेषां
कथाभिर्नृपसन्निधौ । व्यासमन्वासतां राजन्नाजग्मुर्मु-
नयोऽपरे ॥ ८ ॥ नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ।
विश्वावसुस्तुम्बुरुश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९ ॥ तेषामपि
यथान्यायं पूजाञ्चक्रे महातपाः । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुरु-
राजो युधिष्ठिरः ॥१०॥ निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य
युधिष्ठिरात् । आसनेष्वथ पुण्येषु बार्हिणेषु वरेषु च ॥११॥
तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः । पाण्डुपुत्रैः
परिवृतो निषसाद कुरूद्वह ॥ १२ ॥ गान्धारी चैव कुन्ती

पदार्थोंका स्वाद लेरहे थे॥६॥अपनी सेना और अन्तःपुरके
साथ वे उस वनमें ठहरे हुए थे, उसी समय एक दिन
हे अनघ ! जैसा,कि–मैं पहले कह चुका हूँ,व्यासजी तहाँ
आगये ॥ ७ ॥ और इसप्रकार राजा धृतराष्ट्रके पास
व्यासजीके साथ बातें करतेहुए वे सब बैठे थे,उससमय
हे राजन् ! दूसरे मुनि तहाँ आये ॥ ८ ॥ नारद, पर्वत,
महातपस्वी देवल और हे भारत ! विश्वावसु, तुम्बुरु
और चित्रसेन आदिमुनि आये ॥९॥ धृतराष्ट्रकी आज्ञासे
महातेजस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने उनकी भी यथायोग्य
पूजा की ॥१०॥ युधिष्ठिरके हाथसे पूजा पानेके अनन्तर
वे सब तहाँ मोरोंके पवित्र परोंवाले उत्तम आसनों पर
बैठे ॥११॥ हे कुरुवंशको चलानेवाले राजन् ! उनके तहाँ
बैठजाने पर पाण्डवोंके सहित बड़े बुद्धिमान् राजा धृत-
राष्ट्र भी बैठगये ॥१२॥ और गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी,
सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियें भी अन्य स्त्रियोंके सहित

च द्रौपदी सात्वती तथा । स्त्रियश्चान्यास्तथान्याभिः सहोपविविशुस्ततः ॥ १३ ॥ तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन्नृप । ऋषीणाञ्च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥ १४ ॥ ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् । प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद्वचः ॥ १५ ॥ प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः । विदितं मम राजेन्द्र यत्ते हृदि विवक्षितम् ॥१६॥ दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै । गान्धार्याश्चैव यद् दुःखं हृदि तिष्ठति नित्यदा ॥ १७ ॥ कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम् । यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् ॥१८॥ सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम । श्रुत्वा समागममिदं सर्वेषां वस्ततो नृप ॥ १९ ॥ संशयच्छेदनार्थाय

अपने२ आसनों पर बैठगयीं ॥१३॥ हे राजन् ! फिर तहाँ उन सबोंमें पुरातन ऋषियोंकी, देवताओंकी और असुरों की धर्मविषयक दिव्य कथायें होनेलगीं ॥ १४ ॥ उन कथाओंके अन्तमें बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ प्रसन्न हुए, महा तेजस्वी और सकल वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ व्यासजीने प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रसे फिर यही बात कही, कि-हे राजेन्द्र! तेरे हृदयमें जो इच्छा हुई है उसको मैंने जानलिया १५-१६ अपने पुत्रोंके लिये जलतेहुए तेरे हृदयमें और गान्धारीके हृदयमें जो दुःख नित्य विद्यमान रहता है, उसको मुझे मालूम है ॥ १७ ॥ तैसे ही हे महाराज ! कुन्तीके और द्रौपदीके हृदयमें तथा पुत्र अभिमन्युके मारेजानेसे उत्पन्न हुआ जो तीव्र दुःख कृष्णकी बहन सुभद्राके हृदयमें भर रहा है, उसको भी मैं जानता हूँ, इसलिये हे राजन् ! तुम सबोंके यहाँ समागमकी बातको सुनकर ॥१८-१९॥

प्राप्तः कौरवनन्दन । इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चेमे मह-
र्षयः ॥ २० ॥ पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसंभृतम् ।
तदुच्यतां महाप्राज्ञ कं कामं प्रददामि ते ॥ २१ ॥ प्रवणो-
ऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसः फलम् । एवमुक्तः स
राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २२ ॥ मुहूर्तमिव संचि-
न्त्य वचनायोपचक्रमे । धन्योऽस्म्यनुगृहीतश्च सफलं
जीवितं च मे ॥ २३ ॥ यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह
साधुभिः॥ अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः॥२४
ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत् समेतोऽहं तपोधनाः । दर्शनादेव
भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥ विद्यते न भय-

हे कौरवनन्दन ! मैं तुम्हारे सन्देहोंको दूर करनेके लिये
ही यहाँ आया हूँ, ये सब देवता, गन्धर्व और महर्षि २०
चिरकालसे इकट्ठे कियेहुए मेरे तपकेबलको आज आनंद
से देखें, हे महाबुद्धिमान् ! बता,मैं तेरी कौनसी कामना
पूरी करूँ ? मैं वरदान देसकता हूँ, तू मेरे तपके फलको
देख, अगाध बुद्धिवाले व्यासजीने उस राजेन्द्रसे ऐसा
कहा, तब उसने ॥ २२ ॥ एक मुहूर्तभर विचार करके
बोलना आरम्भ किया, कि–मैं धन्य हूँ जो आपने मेरे
ऊपर अनुग्रह किया, मेरा जीवन सफल है ॥ २३ ॥ क्यों
कि–आज आप साधुओंके साथ मेरा समागम हुआ है,
इसलिये आज ही मैं अपनी मनोवांछित गतिको
पाऊँगा ॥२४॥ क्योंकि–हे तपोधनो ! आज ब्रह्मकी समान
आप महात्माओंके साथ मेरा मिलाप हुआ है,मैं आपके
दर्शनसे ही पवित्र होगया हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं
है ॥२५॥ हे निष्पाप महात्माओ ! अब मुझे परलोकका
भी भय नहीं रहा है, परन्तु उस महादुष्ट बुद्धिवाले मन्द-

अपि परलोकान्मनानघाः । किन्तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्द-
स्यापनयैर्भृशम् ॥ २६ ॥ दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः
पुत्रगृद्धिनः ॥ अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना २७
घातिता पृथिवी येन सहया सनरद्विपा । राजानश्च
महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ॥ २८ ॥ आगम्य मम
पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः । ये ते पितॄंश्च दारांश्च प्राणां-
श्च मनसः प्रियान् ॥ २९ ॥ परित्यज्य गताः शूराः प्रेत-
राजनिवेशनम् । का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन् मित्रार्थे ये हता
मृधे ॥ ३० ॥ तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि ।
दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम् ॥ ३१ ॥
भीष्मं शान्तनवं वृद्धं द्रोणञ्च द्विजसत्तमम् । मम पुत्रेण

मति दुर्योधनके अन्यायोंसे, पुत्रोंके ऊपर प्रेम करनेवाले मेरा मन उनको नित्य याद करता हुआ बड़ा ही दुःखित होता है, ये पाण्डव निर्दोष हैं, इनको उन पापबुद्धिवालोंने दुःख दिया था ॥२६-२७॥ उसने ही घोड़े, मनुष्य और हाथियोंसहित इस पृथ्वीका नाश करवाया है तथा देश२के स्वामी महात्मा राजे २८ मेरे पुत्रके लिये आये थे और वे सब मरणकी शरण होगये, अपने पिता आदिको, स्त्रियोंको तथा मनके प्यारे प्राणोंको ॥२९॥ त्याग कर वे शूर प्रेतराजके घर चलेगये, हे राजन् ! जो मित्रके लिये मारेगये, उनकी क्या गति हुई होगी ? ॥३०॥ तथा युद्धमें जो मेरे बेटे पोते मारेगये उनकी क्या गति हुई होगी ? एक बड़ेभारी सेनादलका शान्तनुके पुत्र वृद्ध भीष्म पितामहका और उन उत्तम ब्राह्मण द्रोणाचार्यका मूढ़, पापी, कच्ची बुद्धिवाले मेरे पुत्रने नाश करदिया, उसने पृथ्वीके राज्यकी इच्छासे मेरे प्रतापी कुलका नाश कर

मूढेन पापेनाकृतबुद्धिना ॥ ३२ ॥ क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता । एतत् सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम् ॥ ३३ ॥ न शान्तिमभिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः । इति मे चिन्तयानस्य पितः शान्तिर्न विद्यते ३४ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा विविधन्तस्य राजर्षेः परिदेवितम् । पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ॥३५॥ कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च । तासां च नरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥ ३६ ॥ पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत् । श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ॥ ३७ ॥ षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुंगव । अस्य राज्ञो हतान् पुत्रान् शोचतो न शमो

डाला, इस सबके विचारसे मेरा मन दुःखी होता है, इन सबोंकी एक२ करके याद आनेपर मैं रातदिन जला करता हूं ॥ ३१-३३ ॥ दुःख और शोकसे पीडा पाते हुए मुझे जरा भी शान्ति नहीं मिलती है, हे पिताजी ! इस चिन्तामें मुझे शान्ति कैसे मिल सकती है ?॥३४॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! उस राजर्षिके ऐसे भाँतिर के विलापोंको सुनकर गान्धारीका शोक फिर नया हो गया ॥३५ ॥ तथा कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और कुरुकुलकी अन्य श्रेष्ठ स्त्रियों और वहुओंका शोक भी ताजा होगया ॥ ३६ ॥ पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हुई, आँखों पर पट्टी बाँधेहुए देवी गान्धारी हाथ जोड़कर खडी होगयी और अपने श्वसुर व्यासजीसे इसप्रकार कहने लगी, कि-॥३७॥हे मुनिराज ! आज छः और दश(सोलह) वर्ष बीतगये हैं, तो भी हे विभो ! मरेहुए पुत्रोंका शोक करते२ इन राजाको अभीतक शान्ति नहीं मिली है ॥३८॥ पुत्रोंके

विभो ॥३८॥ पुत्रशोकसमाविष्टो निश्वसन् ह्येष भूमिपः। न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ॥३९॥ लोकान-न्यान् समर्थोऽसि स्रष्टुं सर्वान् तपोबलात्। किमु लोका-न्तरगतान् राज्ञो दर्शयितुं सुतान्॥४०॥इयञ्च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम्।शोचत्यतीव सर्वासां स्नुषाणां दयि-ता स्नुषा॥४१॥तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी। सौभद्रवधसन्तप्ता भृशं शोचति भाविनी ॥४२॥ इयञ्च भूरिश्रवसो भार्या परमसम्मता। भर्तृव्यसनशोकार्त्ता भृशं शोचति भाविनी ॥ ४३ ॥ यस्यास्तु श्वशुरो धीमान् बाह्लिकः स कुरूद्वहः। निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ॥ ४४ ॥ श्रीमतोऽस्य महाबुद्धेः संग्रामेष्वपला-

---

शोकसे पीडा पातेहुए यह भूपति लम्बे २ सांस ही लेते रहते हैं,हे महामुने! इनको सारी रात नींद नहीं आती॥३९ आप अपने तपोबलसे दूसरे लोक बना सकते हो, तो फिर इन महाराजके दूसरे लोकोंमें गये हुए इनके पुत्रोंसे मिला देनेमें तो बात ही क्या है?॥ ४० ॥ और यह कृष्णा द्रौपदी। जो सब बहुओंमें प्यारी बहू है, यह भी अपने सम्बन्धियों और पुत्रोंके मारेजानेसे बड़ा ही शोक करती है ॥ ४१ ॥ और मीठा बोलनेवाली यह कृष्णकी बहन सुभद्रा भी अपने पुत्र अभिमन्युके मारेजानेसे दुःख पारही है और यह भाग्यवती बड़ा ही शोक करती है ॥ ४२ ॥ और यह बड़ा भारी सन्मान पाने वाली भाग्यशालिनी भूरिश्रवाकी भार्या अपने पतिके ऊपर पड़े हुए मृत्युरूप दुःखके शोकसे पीडा पाती हुई बडा ही शोक करती है ॥४३॥ इसका श्वसुर कुरुवंशका बुद्धिमान् बाह्लीक था वह अपने पिता सोमदत्तके साथ महायुद्ध

-पिनः । पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद्रणाजिरे ॥ ४५ ॥ तस्य भार्याशतमिदं दुःखशोकसमाहतम् । पुनः पुनर्वर्द्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च ॥ ४६ ॥ तेनारम्भेण महता मामुपास्ते महामुने । ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः ॥ ४७ ॥ सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो । तव प्रसादाद्भगवन् विशोकोऽयं महीपतिः ॥४८॥ यथा स्याद्भविता चाहं कुन्ती चेयं वधूस्तव । इत्युक्तवत्यां गान्धार्यां कुन्ती व्रतकृशानना ॥ ४९ ॥ प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्माराऽदित्यसन्निभम् । तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ॥ ५० ॥ अपश्यद्दुःखितां देवीं मातरं सव्य-

---

में मारागया ॥ ४४ ॥ इन आपके पुत्र महाबुद्धिमान् श्रीमान् धृतराष्ट्रके संग्राममेंसे पीछेको न हटनेवाले सौ पुत्र थे वे भी युद्धमें मारेगये ॥४५॥ उनकी ये सौ बहुयें दुःख और शोकसे व्याकुल होरही हैं और इन राजाके तथा मेरे शोकको वार २ बढ़ारही हैं ॥ ४६ ॥ हे महामुने ! उनकी ये सौ बहुएँ बड़ेभारी शोकके साथ मुझे घेरे बैठी हैं, उन महात्मा, शूर, महारथी मेरे श्वसुर (भीष्म आदि) की और सोमदत्त आदिकी हे प्रभो ! क्या गति हुई होगी ? हे भगवन् ! ऐसा करिये, कि-आपके अनुग्रहसे इन राजा धृतराष्ट्रका, मेरा और इस आपकी बहू कुन्तीका भी शोक दूर होजाय, गान्धारी इसप्रकार कहरही थी, कि-उसी समय व्रत करनेसे सूखे हुए मुखवाली कुन्तीने सूर्यकी समान कान्तिवाले गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए अपने उस पुत्र कर्णको याद किया, जो दूरकी वस्तुको देख और सुन सकते थे ऐसे वरदान देनेवाले व्यासजीने अर्जुनकी माता कुन्तीको दुःखी होती देखकर उससे कहा, कि-तेरे मनमें

साचिनः । तामुवाच ततो व्यासो यत्ते कार्यं विवक्षितम् ॥ ५१ ॥ तद्‌ ब्रूहि त्वं महाभागे यत्ते मनसि वर्त्तते । श्वसुराय ततः कुन्ती प्रणम्य शिरसा तदा । उवाच वाक्यं सव्रीडा विवृण्वाना पुरातनम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि धृतराष्ट्रादिकृतप्रार्थने ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

कुन्त्युवाच । भगवन् श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम् । स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम ॥ १ ॥ तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः । भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २ ॥ शौचेन त्वागसस्त्यागैः शुद्धेन मनसा तथा । कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यं न कदाचन ॥ ३ ॥ स प्रीतो वरदो मेऽभूत् कृत-

---

जिस कामकी इच्छा हो, हे महाभाग्यशाली ! वह काम मुझे बता तेरे मनमें जो कुछ भी हो उसको कहदे यह सुनकर कुन्तीने मस्तक नमाकर व्यासजीको प्रणाम किया और लज्जाके साथ पुरानी बातको स्पष्ट करती हुई इस प्रकार कहनेलगी ॥४७-५२॥ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

कुन्तीने कहा, कि-हे भगवन् ! आप मेरे श्वसुर हैं, आप मेरे पतिदेवके भी पितृदेव हैं, मेरे लिये आप देवताओंसे भी अधिक पूज्य देव हैं,इसलिये मेरी सत्य बात को सुनिये ॥ १ ॥ एक दिन दुर्वासा नामके एक क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण मेरे पिताके पास भिक्षाके लिये आये थे, उनको मैंने खूब सन्तुष्ट किया था ॥ २ ॥ मैंने उनके साथ पवित्रताका वर्त्ताव किया, इसका ध्यान रक्खा, कि-कोई अपराध न बनजाय, अपने मनको शुद्ध रक्खा, क्रोध करनेके बड़े २ अवसर आने पर भी कभी क्रोध नहीं

कृत्यो महामुनिः । अवश्यन्ते ग्रहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद्वचः ॥ ४ ॥ ततः शापभयाद्विप्रमवोचं पुनरेव तम् । एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मे द्विजः ॥ ५ ॥ धर्मस्य जननी भद्रे भवित्री त्वं शुभानने । वशे स्थास्यन्ति ते देवा यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो विप्रस्ततोऽहं विस्मिताभवम् । न च सर्वास्ववस्थासु स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७ ॥ अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती । संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवानिशम् ॥ ८ ॥ स्थिताहं बालभावेन तत्र दोषमबुध्यती। अथ

किया, इससे मुनि मेरे ऊपर सन्तुष्ट होगये ॥ ३ ॥ जब वर देनेवाले और कृतकृत्य हुए वह मुनि मेरे ऊपर प्रसन्न हुए तो उन्होंने कहा, कि-मैं जो देता हूँ वह तुझे अवश्य लेना होगा ॥४॥ यह सुनकर मैंने शापके डरसे उन मुनिसे कहा, कि-अच्छा जैसी आपकी इच्छा, इस पर उन ब्राह्मणने मुझसे फिर कहा, कि-॥५॥ हे भद्रे ! हे सुमुखी ! तू धर्मकी माता होगी, जिन देवताओंको तू बुलावेगी, वे तेरे सामने आकर उपस्थित होजायँगे॥६॥ ऐसा कहकर वह ब्राह्मण अन्तर्धान होगये, मैं उनकी इस बातको सुनकर आश्चर्यमें होगयी, मेरी स्मरणशक्ति किसी दशामें भी नष्ट नहीं होती है (इसलिये मैं उनकी बातको भूली नहीं) ॥७॥ फिर एक दिन महलकी अटारी में खडी २ मैं उदय होतेहुए सूर्यनारायणको देख रही थी, उस समय उन ऋषिकी बातको याद कर २ के सूर्य की चाहना करनेलगी ॥ ८ ॥ उस समय मैं बालक-दशा में थी, इसलिये मैं यह नहीं समझसकी, कि-ऐसा करने में मुझे दोष लगता है, मेरे स्पृहा करते ही सूर्यनारायण

देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोऽभवत् ॥ ९ ॥ द्विधा कृत्वा-त्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च । तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमत् स माम् ॥ १० ॥ स मामुवाच वेपन्तीं वरं मत्तो वृणीष्व ह । गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसा पदम् ॥ ११ ॥ स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाह्वानं न मे क्षमम् । धक्ष्यामि त्वाञ्च विप्रञ्च येन दत्तो वरस्तव १२ तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम् । पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रुवम् ॥ १३ ॥ ततो मां तेजसाविश्य मोहयित्वा च भानुमान् । उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्य-

मेरे पास आकर उपस्थित होगये ॥ ९ ॥ उन्होंने अपने विग्रहके दो भाग करलिये थे एक भाग भूमिमें आगया और दूसरा आकाशमें रहा, वह एक भागसे लोकोंको तपारहे थे और दूसरे भागसे मेरे पास आये ॥ १० ॥ (लज्जा वा भयसे) काँपती हुई मुझसे उन्होंने कहा, कि–'मुझसे कोई वर माँग' मैंने शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, कि– (मुझे कुछ नहीं चाहिये) आप जाइये ॥ ११ ॥ उन तीक्ष्ण किरणोंवालेने मुझसे कहा, कि–कोई मुझे वृथा बुलावे तो मैंने उसको क्षमा नहीं करता हूँ, (यदि तू वर नहीं माँगेगी तो) तुझे तथा जिसने तुझे वरदान दिया है उस ब्राह्मणको भी जलाकर भस्म करदूँगा ॥ १२ ॥ उपकार करनेवाले उस ब्राह्मण दुर्वासाको शापसे बचानेके लिये मैंने उनसे फिर कहा, कि–हे देव ! मेरे आपकी समान पुत्र होय ॥ १३ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणने मुझे मोहित करके मेरे भीतर तेजके द्वारा प्रवेश किया और फिर मुझसे कहा, कि–'तेरे एक पुत्र होगा' ऐसा कहकर

गगमदिवम् ॥१४॥ ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी। गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम् ॥ १५ ॥ नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात् पुनरेव तु। कन्याहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः ॥ १६ ॥ स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः । तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव ॥ १७ ॥ यदि पापमपापं वा तदेतद्विवृतं मया। तं द्रष्टुमिच्छामि भगवन् व्यपनेतुं त्वमर्हसि ॥१८॥ यच्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ। तच्चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो

वह आकाशमें चलेगये ॥ १४ ॥ फिर अपने पितासे इस वृत्तान्तको छुपानेके लिये मैं महलके भीतर ही रहती थी तहाँ गुप्तरीतिसे उत्पन्न हुए उस बालक पुत्र कर्णको जलमें छोड दिया ॥ १५ ॥ हे विप्र ! निःसन्देह उन ही सूर्यदेवके अनुग्रहसे मैं फिर कन्या होगयी, वास्तवमें उन दुर्वासा ऋषिने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ ॥ १६ ॥ मैं ऐसी मूर्ख थी, कि-उस पुत्रको पहचान लेने पर भी मैंने उसकी उपेक्षा की हे विप्र ! वह मेरी मूर्खता अब मुझे जला रही है,हे विप्रर्षे! यह सब आपको अच्छे प्रकारसे मालूम ही है ॥१७॥ यह जो कुछ मैंने कहा है, मेरा पाप हो चाहे न हो, आज मैं उसको देखना चाहती हूँ, यदि वह दोष भी हो तो आप उसको दूर करसकते हैं ॥ १८ ॥ और हे निष्पाप मुनिराज ! इन धृतराष्ट्रके हृदयकी बात जो आपको मालूम हुई है, इनकी यह कामना आज ही पूरी होनी चाहिये ॥ १९ ॥ कुन्तीके ऐसा कहने पर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ व्यासजीने यह उत्तर दिया, कि-ठीक है, तूने मुझसे जो कुछ कहा, यह सब

वेदविदाम्वर॥ साधु सर्वमिदं माध्थमेश्वमेतद्यथात्थ माम्॥२०
अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि। देवाश्चैश्व-
र्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै॥ २१ ॥ सन्ति देव-
निकायाश्च सङ्कल्पाज्जनयन्ति वै। वाचा दृष्ट्या तथा स्प-
र्शात् संहर्षेणेति पंचधा ॥ २२॥ मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण
हि न दुष्यति। इति कुन्ति विजानीहि व्येतु ते मानसो
ज्वरः॥ २३ ॥ सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्॥ २४॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि
व्यासकुन्तीसम्वादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥
व्यास उवाच। भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि पुत्रान् भ्रातॄन्

ऐसा ही होनेवाला था, सो होगया॥ २०॥ इसमें तेरा कुछ अपराध नहीं है, क्योंकि—तू उस समय कन्याभाव में थी और देवताओंमें ऐसी शक्ति होती है, कि—वह मनुष्योंके शरीरोंमें प्रवेश करसकते हैं॥ २१॥ देवताओं की भी काया (तेजःस्वरूप रहनेका स्थान) होती है और वे सङ्कल्पसे, वाणीसे, दृष्टिसे, स्पर्शसे तथा संघर्षण से सन्तानको उत्पन्न कर देते हैं॥ २२॥ दैवी धर्मसे मनुष्य धर्मको दोष नहीं लगता है, यह जानकर हे कुन्ति! तू अपने मनके सन्तापको दूर कर॥ २३॥ जो बलवान् होते हैं, उनको सब वस्तु पथ्य होती है (हजम होजाती है), जो बलवान होते हैं उनको सब वस्तुएँ पवित्र होती हैं, जो बलवान् होते हैं उनको सब धर्मरूप होता है, जो बलवान् हैं सब उनका ही है॥ २४॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३०॥ ॥ ॥

व्यासजीने कहा, है कि—हे भद्रे गान्धारी! आज रात

सर्वांस्तथा । बन्धूंश्च पितृभिः सार्द्धं निशि सुप्तोत्थितानिव॥१॥कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रञ्चापि यादवी। द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ २ ॥ पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम। यदास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥ ३ ॥ न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः। क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधनं गताः ४ भवितव्यमवश्यन्तत् सुरकार्यमनिन्दिते । अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागा महीतलम् ॥ ५ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः । तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धाः देवर्षयोऽपि च ॥६। देवाश्च दानवाश्चैव तथा देवर्षयोऽमलाः।

में तू अपने पुत्रोंको, अपने भाइयोंको, अपनी बहनेलियों को और अपनी बहुओंको अपने पतियोंके सहित मानो नींदमेंसे उठी हों ऐसा देखेगी ॥ १ ॥ कुन्ती कर्णको और सुभद्रा अपने अभिमन्युको देखेगी, द्रौपदी अपने पाँचों पुत्रोंको, अपने पिता आदिको तथा अपने भाइयों को भी देखेगी ॥ २ ॥ पहलेसे ही मेरे हृदयमें यही बात उठरही थी, इतनेमें ही राजा तथा गान्धारी और कुन्ती इन दोनोंने भी इसी बातके लिये कहा ॥ ३ ॥ तुझे इन महात्माओंका शोक नहीं करना चाहिये, ये सब श्रेष्ठ पुरुष थे, क्षत्रियधर्म पर लगेहुए थे और ऐसा ही वर्त्ताव करके ये मरे हैं ॥ ४ ॥ हे निर्दोष ! यह देवताओंका काम अवश्य ही होना था, इस कामके लिये सब देवता अपने अपने अंशसे पृथिवी पर जन्मे थे ॥ ५ ॥ (वे) गन्धर्व, अप्सरायें, पिशाच, गुह्यक, राक्षस तथा पवित्र पुरुष और सिद्ध तथा देवर्षि ॥ ६ ॥ देव, दानव और देवर्षि थे और ये सब अमल (मलरहित-पवित्र) थे, ये सब

तत्र ते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७ ॥ गन्धर्वराजो यो धीमान् धृतराष्ट्र इति श्रुतः । स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥८॥ पाण्डुं मरुद्गणाद्विद्धि विशिष्टतममच्युतम् । धर्मस्यांशोऽभवत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ कलिं दुर्योधनं विद्धि शकुनिं द्वापरं तथा । दुःशासनादीन् विद्धि त्वं राक्षसान् शुभदर्शने ॥ १० ॥ मरुद्गणाद्भीमसेनं बलवन्तमरिन्दमम् । विद्धि त्वन्तु नरमृषिमिमं पार्थं धनञ्जयम् । नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजौ तथा ॥ ११ ॥ यः स वै पार्थं उद्भूतः संहर्षजननस्तथा ॥१२॥ यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः । स सोम इव सौभद्रो योगादेवाभवद् द्विधा ॥ १३ ॥

कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें मारेगये हैं ॥ ७ ॥ जो गन्धर्वोंका राजा था, वह यह बुद्धिमान् धृतराष्ट्र नामसे प्रसिद्ध है, इस मनुष्यलोकमें वही धृतराष्ट्र तेरा पति हुआ है ॥८॥ सबसे श्रेष्ठ अच्युत पाण्डुको मरुद्गणोंमेंसे आया हुआ जान, धर्मका अंश वह क्षत्ता(विदुर) और राजा युधिष्ठिर हुए ॥ ९ ॥ कलिको दुर्योधन तथा शकुनिको द्वापर जान, हे शुभदर्शनवाली! दुःशासन आदिको तू राक्षस जान१०. शत्रुओंको दबानेवाले बलवान् भीमसेनको मरुत्गणोंमेंसे आया हुआ जान और इस कुन्तीके पुत्र धनञ्जयको पुरातन नरऋषि जान ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णको नारायण जान और ये दोनों नकुल सहदेव अश्विनीकुमार हैं, जो अर्जुनमेंसे उत्पन्न हुआ और जो आनन्द उत्पन्न करनेवाला था ॥ १२ ॥ तथा जो पाण्डवोंका दायाद (वारिस) था तथा जिसको छः महारथियोंने मिलकर मारडाला वह इस लोकमें सुभद्राका पुत्र कहलानेवाला सोम

द्विधा कृत्वात्मनो देहमादित्यं तपतां वरम्। लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णञ्च शोभने ॥ १४ ॥ द्रौपद्या सह सम्भूतं धृष्टद्युम्नञ्च पावकात्। अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसन्तु शिखण्डिनम् ॥ १५ ॥ द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिञ्च रुद्रजम्। भीष्मं च विद्धि गांगेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥ १६ ॥ एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि। ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १७ ॥ यच्च वै हृदि सर्वेषां दुःखमेतच्चिरं स्थितम्। तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृताद्भयात् ॥१८॥ सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति। तत्र द्रक्ष्यथ तान् सर्वान् ये हतास्मिन् रणाजिरे ॥१९॥ वैशम्पायन उवाच। इति व्यासस्य

(चन्द्रमा) था, वह योगबलसे ही दो भागोंमें बटगया था ॥ १३ ॥ और हे शोभने ! तू कर्णको अपने देहके दो भाग करनेवाला, तपनेवालोंमें श्रेष्ठ और लोकोंको ताप देनेवाला आदित्य–सूर्य जान ॥ १४ ॥ द्रौपदीके साथ अग्निमेंसे उत्पन्न हुए धृष्टद्युम्नको अग्निका शुभ भाग जान और शिखण्डीको राक्षस जान ॥ १५ ॥ द्रोणको बृहस्पतिका भाग और अश्वत्थामाको रुद्रका पुत्र जान तथा भीष्मको गङ्गाका पुत्र जान, कि–जो मनुष्यभावको को प्राप्त हुआ आठ वसुओंमें का एक वसु था ॥ १६ ॥ हे महाबुद्धिमती ! इसप्रकार ये सब देवता मनुष्यपनेको प्राप्त हो अपने २ कामोंको करके हे शोभने ! फिर स्वर्गमें चलेगये हैं ॥ १७ ॥ तुम सबके हृदयमें परलोकके भयके कारण चिरकालसे जो दुःख भराहुआ है आज उसको दूर करूँगा ॥ १८ ॥ तुम सब भागीरथी नदीके किनारे पर चलो और तहाँ युद्धमें जो २ मारेगये हैं उन सबको

वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा । महता सिंहनादेन गङ्गा-
मभिमुखो ययौ ॥ २० ॥ धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ
सह पाण्डवैः। सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः२१
ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः । निवासमक-
रोत् सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥२२॥ राजा च पांडवैः
सार्द्धमिष्टे देशे सहानुगः । निवासमकरोद्धीमान् सस्त्री-
वृद्धपुरःसरः ॥ २३ ॥ जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं
यथा । निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतान्नृपान् २४
अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद्रविः । ततः कृताभिषे-
कास्ते नैशं कर्म समाचरन् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि
गङ्गातीरगमने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

देखो ॥ १९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-व्यासजीकी इस बातको सुनकर वे सब बडा सिंहनाद करते हुए गङ्गाकी ओरको मुख करके चलदिये ॥२०॥ धृतराष्ट्र अपने मंत्री और पाण्डवोंके सहित तथा-तहाँ इकट्ठे हुए मुनियोंमें सिंहसमान मुनि और गन्धर्वोंके सहित चलदिये ॥२१॥ तदनन्तर गङ्गाके समीप पहुँचकर उस मनुष्योंके समुद्रने अपनी इच्छानुसार सुखपूर्वक पडाव डालदिया॥२२॥ स्त्रियों और बूढोंको आगे चलाकर और जिनके पीछे सेवक थे ऐसे बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके सहित अपने मन माने स्थानमें निवास किया॥२३॥रात्रिकी बाट देखने वाले और मरणको प्राप्तहुए राजाओंको देखनेकी इच्छा वाले उनको वह दिन सौ वर्षकी समान बीता ॥ २४ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायण पवित्र और श्रेष्ठ अस्ताचल पर पहुँचकर अस्त होगये, तब उन सबोंने स्नान करके रात्रि काम(सायंसंध्याआदि)किया॥२५॥ ३१वाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन उवाच। ततो निशायां प्राप्तायां कृत-
सायाह्निकक्रियाः। व्यासमभ्यगमन् सर्वे ये तत्रासन् समा-
गताः ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा।
शुचिरेकमनाः सार्द्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ॥ २ ॥ गान्धार्या
सह नार्यस्तु सहिताः समुपाविशन्। पौरजानपदाश्चापि
जनः सर्वो यथावयः ॥३॥ ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं
भागीरथीजलम्। अवगाह्याजुहावाथ सर्वाल्लोकान्
महामुनिः ॥ ४ ॥ पांडवानाञ्च ये योधा कौरवाणाञ्च
सर्वशः। राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥५॥
ततः स तुमुलः शब्दो जलान्ते जनमेजय। प्रादुरासीद्यथा
पूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥६॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्म-

वैशम्पायनने कहा, कि-तदनन्तर जब रात हुई तब
जो तहाँ गङ्गाके किनारे पर साथ२ आये थे वे सब सायं-
कालका नित्यकर्म करके व्यासजीके पास गये ॥ १ ॥
पाण्डवोंके सहित धर्मात्मा धृतराष्ट्र पवित्र और एक-
चित्त होकर उन ऋषियोंके साथ तहाँ बैठ गये ॥ २ ॥
गान्धारीके साथ दूसरी आई हुई स्त्रियें भी बैठगयीं
तथा नगरके और प्रान्तके सब मनुष्य भी अवस्थाके
अनुसार आगे पीछे बैठगये ॥ ३ ॥ फिर महातेजस्वी
महामुनि व्यासजीने भागीरथीके पवित्र जलमें घुसकर
सब लोगोंको पुकारा ॥४॥ पांडवोंके और कौरवोंके जो२
योधा थे उन सबोंको तथा भिन्न २ देशोंमें रहनेवाले
महाभाग्यशाली राजाओंको बुलाया ॥५॥ हे जनमेजय!
तब जलमें, कुरु और पाण्डवोंकी सेनाओंका जमघट
होने पर जैसा घोर शब्द हुआ था तैसा ही कोलाहल
होउठा ॥ ६ ॥ फिर सेनासहित भीष्म और द्रोणको

द्रोणपुरोगमाः। ससैन्याः सलिलात्तस्मात् समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥ ७ ॥ विराटद्रुपदौ चैव सहपुत्रौ ससैनिकौ। द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ८ ॥ कर्णदुर्योधनौ चैव शकुनिश्च महारथः। दुःशासनादयश्चैव धार्त्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ ९ ॥ जारासन्धिर्भगदत्तो जलसन्धश्च वीर्यवान्। भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः१० लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः। शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ११ ॥ अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः। वाह्लिकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः ॥ १२ ॥ एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद्ये न कीर्त्तिताः। सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः ॥ १३ ॥ यस्य वीरस्य यो वेशो यो ध्वजो यच्च

आगे करके चलतेहुए वे सब सहस्रों राजे जलमेंसे बाहर आये ॥ ७ ॥ उनमें विराट और द्रुपद अपने पुत्र और सेनाओंके साथ दीखरहे थे, द्रौपदीके पुत्र सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और राक्षस घटोत्कच ॥८॥ कर्ण और दुर्योधन तथा महारथी शकुनि और दुःशासन आदि धृतराष्ट्रके महाबली पुत्र,जरासंधका पुत्र भगदत्त,वीर्यवान् जलसंध, भूरिश्रवा, शल, शल्य और अपने एक छोटे भाईके सहित वृषसेन ॥ १० ॥ राजपुत्र लक्ष्मण, धृष्टद्युम्न और उसका पुत्र, शिखण्डीके सब पुत्र, धृष्टकेतु और उसका छोटा भाई ॥११॥ अचल,वृषक और अलायुध राक्षस,वाल्हीक सोमदत्त और राजा चेकितान ॥ १२ ॥ ऐसे ही और भी बहुतसे थे जो अधिक होनेके कारण गिने नहीं जासके वे सब प्रकाशित शरीरोंवाले जलमेंसे बाहर निकले १३ युद्धमें जिन वीरोंका जैसा वेष था, जो ध्वजा थी, जो

वाहनम् । तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः ॥१४॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः । निर्वैरा
निरहङ्काराः विगतक्रोधमत्सराः ॥१५॥ गन्धर्वैरुपगीयन्तः
स्तूयमानाश्च बन्दिभिः । दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चा-
प्सरसाङ्गणैः ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्यं चक्षुर्नरा-
धिप । मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात्तपोबलात् ॥१७॥
दिव्यज्ञानबलोपेता गान्धारी च यशस्विनी । ददर्श पुत्रां
स्तान् सर्वान् ये चान्येऽपि मृधे हताः ॥ १८ ॥ तदद्भुतम-
चिन्त्यञ्च सुमहल्लोमहर्षणम् । विस्मितः स जनः सर्वो
ददर्शानिमिषेक्षणः ॥ १९ ॥ तदुत्सव महोदग्रं हृष्टनारी-

वाहन थे, उन सबोंके साथ वे राजे तहाँ दीखे ॥ १४ ॥
वे सब दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे, सब चमकते हुए
थे,सब चमकते हुए कुण्डल पहररहे थे, वे सब वैरभाव-
शून्य, निरहङ्कार, क्रोधशून्य और डाहसे हीन थे ॥ १५ ॥
गन्धर्व उनका यश गारहे थे बन्दीजन उनकी स्तुति कर
रहे थे, वे दिव्य मालायें और वस्त्र पहरेहुए थे तथा
अप्सराओंके समूह उनको चारों ओरसे घेरेहुए थे १६
हे राजन् ! सत्यवतीके पुत्र व्यासमुनिने प्रसन्न होकर
अपने तपोबलसे उस समय धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र देदिये थे
(उनसे राजाने सब देखा) १७ और जिसको दिव्य ज्ञान-
बल मिला हुआ था उस यशस्विनी गान्धारीने उन युद्ध
में मारेगये अपने पुत्रोंको देखा ॥ १८ ॥ वह दृश्य,अद्भुत
अचिन्त्य और रोमाञ्च खड़े करनेवाला था, सब जनोंने
पलक बिना हिलाये टकटकी बाँधकर आश्चर्यके साथ यह
सब देखा ॥ १९ ॥ वह मानो आनन्दित नरनारियोंसे
भराहुआ जलके ऊपरका एक उत्सव था, वह आश्चर्य

नराकुलम् । आश्चर्यभूतं ददृशे चित्रं पटगतं तथा ॥२०॥ धृतराष्ट्रस्तु तान् सर्वान् पश्यन् दिव्येन चक्षुषा । मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात्तस्य वै मुनेः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि भीष्मादिदर्शने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्ते पुरुषश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम् । विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः ।१। विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम् । संहृष्टमनसः सर्वे देवलोक इवामराः ॥२॥ पुत्रः पित्रा च मात्रा च भार्याश्च पतिभिःसह। भ्रात्रा भ्राता सखा चैव सख्या राजन् समागताः ॥ ३ ॥ पाण्डवास्तु महेष्वासं कर्णं सौभद्रमेव च। संप्रहर्षात् समाजग्मुर्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥४॥ ततस्ते

में डालनेवाला चित्र मानो उन्होंने कपड़े पर चित्रित किया हुआ देखा ॥ २० ॥ हे भरतसत्तम ! उन व्यासमुनिके अनुग्रहसे उस सबको दिव्य चक्षुसे देखकर धृतराष्ट्रको बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २१ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे राजन ! इसके अनन्तर जिनके क्रोध और डाह जाते रहे हैं और जो पापरहित होगये हैं ऐसे वे श्रेष्ठ पुरुष एक दूसरेसे मिले ॥ १ ॥ ब्रह्मर्षियोंकी विधान कीहुई शुभ और श्रेष्ठ विधिसे उनका स्वागत किया, वे सब मनमें बड़े ही प्रसन्न थे और मानो स्वर्गमें देवता हों, ऐसे मालूम होते थे ॥ २ ॥ पुत्र माता पिताके साथ मिला, स्त्री पतिके साथ मिली, भाई भाई के साथ, मित्र मित्रके साथ, इसप्रकार हे राजन् ! सब मिले॥ ३॥पाण्डव महाधनुषधारी कर्णसे, सुभद्राके पुत्र

प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः । समेत्य पृथिवीपाल सौहृद्ये च स्थिताभवन् ॥५॥ परस्परं समागम्य योधास्ते भरतर्षभ । मुनेः प्रसादात्ते सर्वे क्षत्रिया नष्टमन्यवः ॥६॥ असौहृदं परित्यज्य सौहृद्ये पर्यवस्थिताः । एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैः सह ॥७॥ पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च पार्थिवाः । तां रात्रिमखिलामेवं विहृत्य प्रीतमानसाः ॥ ८ ॥ मेनिरे परितोषेण नृपाः स्वर्गसदो यथा । नात्र शोको भयं त्रासो नारतिर्नायशोऽभवत् ।९। परस्परं समागम्य योधानां भरतर्षभ । समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः ॥ १० ॥ मुदं परमिकां

अभिमन्युसे और द्रौपदीके पुत्रोंसे बड़े हर्षके साथ मिले४ पाण्डव मनमें प्रसन्न होतेहुए कर्णसे फिर मिले और हे राजन् ! उसके साथ मित्रभावका वर्त्ताव किया ॥५॥ हे भरतसत्तम ! वे योधा आपसमें मिले, क्योंकि-व्यासमुनिके प्रसादसे उन क्षत्रियोंके क्रोधका नाश होगया था ॥६॥ शत्रुभावको छोडकर उन्होंने मित्रभाव स्थापन किया था, इसप्रकार वे सब जने गुरु, बान्धव और पुत्रों के साथ मिले ॥ ७ ॥ उन पुरुषसिंहोंने, कौरवोंने तथा दूसरे राजाओंने वह सब रात्रि इसप्रकार मनमें प्रसन्न होकर बिताई ॥ ८ ॥ सन्तोष प्राप्त होनेके कारण उन राजाओंने यह समझा, कि-मानों हम स्वर्गमें बैठे हैं, जब आपसमें मिले, उस समय योधाओंको तहाँ शोक भय, त्रास, पीडा या अपयश इनमेंसे कुछ भी नहीं था ॥९॥ हे भरतसत्तम ! तहाँ आई हुईं उन स्त्रियोंने उन योधाओंमेंसे अपने २ पिता, भ्राता, पति और पुत्रोंसे मिलकर ॥ १० ॥ बडा आनन्द पाया और फिर उन

प्राप्य नार्यो दुःखमथात्मजन्। एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः ॥११॥ आमन्त्र्यान्योऽन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतम्। ततो विसर्जयामास लोकांस्तान्मुनिपुङ्गवः ॥ १२ ॥ क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन्। अवगाह्य महात्मानः पुण्यां भागीरथीं नदीम् ॥१३॥ सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि वेश्मानि भेजिरे। देवलोकं ययुः केचित् केचिद् ब्रह्मसदस्तथा ॥ १४ ॥ केचिच्च वारुणं लोकं केचित् कौबेरमाप्नुवन्। ततो वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन् नृपाः ॥ १५ ॥ राक्षसानां पिशाचानां केचिच्चाप्युत्तरान् कुरून्। विचित्रगतयः सर्वे यानवाप्यामरैः सह ॥ १६ ॥ आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सप-

स्त्रियोंने वियोगके दुःखको त्याग दिया वे वीर तथा स्त्रियें इसप्रकार एक रात्रि विहार करके ॥११॥ आपसमें पुकार कर, आलिंगन करके जैसे आये थे वैसे ही चलेगये, फिर उन मुनिराजने उन सबोंको विदा किया ॥ १२ ॥ और देखते २ एक क्षणमें वे सब अन्तर्धान होगये, पवित्र भागीरथी नदीमें स्नान करके वे सब महात्मा ॥ १३ ॥ अपने रथ और अपनी ध्वजाओंके सहित अपने२ स्थान को चलेगये, कितने ही देवलोकमें चलेगये और कितने ही ब्रह्मलोकमें पहुँचगये ॥ १४ ॥ कोई वरुणलोकमें और कोई कुबेरलोकमें चलेगये और कितने ही राजे तहाँसे सूर्यलोकमें चलेगये ॥ १५ ॥ कितने ही राक्षसोंके कितने ही पिशाचोंके और कितने ही उत्तर कुरुओंके लोकोंमें चलेगये, ये सब विचित्र गतियें हैं, कि–जिनको प्राप्त होकर वे सब महात्मा देवताओंके साथ अपने वाहन और अनुचरों सहित आये थे, उन सबोंके विदा होजाने

दानुगाः । गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः ॥१०॥
धर्मशीलो महातेजाः कुरूणां हितकृत्तथा । ततः प्रोवाच
ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ १८ ॥ या याः पति-
कृतांल्लोकानिच्छन्ति परमस्त्रियः । ता जाह्नवीजलं क्षिप्र-
मवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १९ ॥ ततस्तस्य वचः श्रुत्वा
श्रद्दधाना वराङ्गनाः । श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवी-
जलम् ॥२०॥विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।
समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशाम्पते ॥ २१ ॥
एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः पतिव्रताः । प्रविश्य
क्षत्रिया मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम् ॥ २२ ॥ दिव्यरूप-
समायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः । दिव्यमाल्याम्बरधरा

पर धर्मशील, महातेजस्वी और कुरुओंके हितैषी जलमें खड़ेहुए महामुनि व्यासजीने, जिनके पति मारेगये थे उन क्षत्रियोंकी स्त्रियोंसे कहा, कि—॥१६–१८ ॥ जो २ श्रेष्ठ स्त्रियें अपने पतियोंके लिये निश्चित हुए लोकोंमें जाना चाहती हों उनको सावधान होकर एकसाथ इस जाह्नवीके जलमें गोता लगाना चाहिये(ऐसा करने पर वे वहाँ पहुँच जायँगी)॥१९॥ उनकी इस बातको सुनकर तथा उनपर श्रद्धा रखकर श्रेष्ठ स्त्रियें अपने श्वसुरकी आज्ञा ले जलमें घुसगयीं ॥२०॥ और हे राजन् !(गोता लगाते ही) इस मनुष्यदेहसे मुक्त होकर अपने २ पतियों के साथ वे सब साध्वी स्त्रियें चलीगयीं ॥ २१ ॥ इस प्रकार वे सब शीलवती पतिव्रता क्षत्राणियें जलमें प्रवेश कर गोता लगातीहुई इस मनुष्यदेहसे मुक्त होगई और अपने २ पतियोंके लोकोंमें पहुँचगयीं ॥२२॥ जैसे उनके पति थे तैसी ही वे भी दिव्यरूपधारिणी, दिव्य आभू-

यथास्वं पतयस्तथा ॥२३॥ ताः शीलगुणसम्पन्ना विमा-
नस्था गतकल्मषाः । सर्वाः सर्वगुणोपेताः स्वस्थानं प्रति-
पेदिरे ॥ २४ ॥ यस्य यस्य तु यः कामस्तस्मिन् काले बभूव
ह । तं तं विसृष्टवान् व्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥ २५ ॥
तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः । जहृषुर्मुदिताश्चा-
सन्नानादेशगता अपि ॥ २६ ॥ प्रियैः समागमस्तेषां यः
सम्यक् शृणुयान्नरः । प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य
चैव ह ॥ २७ ॥ इष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।
यश्चैतच्छ्रावयेद्विद्वान् विदुषो धर्मवित्तमः ॥ २८ ॥ स यशः
प्राप्नुयाल्लोके परत्र च शुभां गतिम् । स्वाध्याययुक्ता

वर्णोंसे शोभित,दिव्य मालायें और वस्त्रोंवाली होगईं२३
शील और गुणोंवालीं, विमानोंमें बैठीहुई वे सब गुण-
वती स्त्रियें शोकरहित होकर अपने २ स्थानको चली
गयीं ॥ २४ ॥ उस समय जिस २ की जैसी २ इच्छा
हुई, उस उस के लिये वेही २ वस्तुयें वर देनेवाले
धर्मवत्सल व्यासजीने उत्पन्न करदीं ॥ २५ ॥ नररूपधारी
देवताओंके उस फिर आनेके समाचारको सुनकर भिन्न
भिन्न देशोंके रहनेवाले मनुष्य भी बड़े प्रसन्न हुए।२६।
उनके अपने प्रियजनोंके साथ समागमके इस वृत्तान्तको
जो मनुष्य अच्छे प्रकारसे सुनता है वह नित्य इस लोक
में और मरकर दूसरे लोकमें अपनी प्यारी वस्तुओंको
पाता है ॥ २७ ॥ और विद्वान्के धर्मको जाननेवालोंमें
उत्तम जो कोई विद्वान् इस इष्ट बांधवोंके संयोगको,जो
कि–अनायासमें ही और निर्विघ्नरूपसे हुआ था,पढ़कर
सुनाता है ॥ २८ ॥ उसको इस लोकमें यश मिलता है
और परलोकमें शुभगति प्राप्त होती है, हे भारत !

मनुजास्तपोयुक्ताश्च भारत ॥ २९ ॥ साध्वाचारा दमोपेता दाननिर्धूतकल्मषाः । ऋजवः शुचयः शान्ता हिंसानृतविवर्जिताः ॥ ३० ॥ आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च धृतिमन्तश्च मानवाः । श्रुत्वाश्चर्यमिदं पर्व ह्यवाप्स्यन्ति परां गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि स्त्रीणां स्वस्वपतिलोकगमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

सौतिरुवाच । एतच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान् हृष्टोऽभूज्जनमेजयः । पितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १ ॥ अब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति । कथन्नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २ ॥ इत्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो

स्वाध्याय करनेवाले, तप करनेवाले, श्रेष्ठ आचरण वाले, दमवाले, दानसे अपने पापोंको धोडालने वाले, सरलमार्गसे चलनेवाले, पवित्र, शान्त, हिंसा और मिथ्याभाषणको त्यागनेवाले, आस्तिक, श्रद्धावान् और धीरजवाले मनुष्य इस आश्चर्यमें डालनेवाले पर्वको सुन कर उत्तम गति पाते हैं ॥ २९–३१ ॥ तैतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सौति कहते हैं, कि–अपने सब पितामहोंके परलोक गमन और आगमनको सुनकर वह विद्वान् राजा जनमेजय बडा प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ फिर प्रसन्न होते हुए उसने उनके दुमराकर आनेके विषयमें प्रश्न किया, कि–जिन्होंने अपने शरीरोंको त्याग दिया था, उनका उस ही रूपमें फिर दर्शन कैसे होसकता है ? (क्योंकि–उनका पहला शरीर तो भस्म होगया था) ॥ २ ॥ उसके ऐसा कहने पर उन ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ व्यास

व्यासशिष्यः प्रतापवान् । प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः । कर्मजानि शरीराणि तथै-

जीके प्रतापी शिष्यने उस राजा जनमेजयको उत्तर दिया ३ वैशम्पायन ने कहा, कि–देवता, असुर मनुष्य आदि सबों के कर्मोंका (जबतक उनके फलका भोग नहीं होजाता है) कदापि नाश नहीं होता है यह बात निश्चित है, शरीर कर्मोंसे बँधेहुए हैं तथा उनकी आकृतियें भी हे राजन् ! कर्मोंके अनुसार ही होती हैं (तात्पर्य यह यह है, कि-देवता आदि सबोंके ही कर्म फलभोगके बिना कभी नष्ट नहीं होते, क्योंकि-कर्मका क्षय भोगसे ही होता है, जैसे स्वप्नमें शुभ अशुभ कर्मोंसे शुभ या अशुभ स्वप्नका शरीर मिलकर उसके द्वारा कर्मका फल सुख दुःख आदि भोगनेके अनन्तर ही कर्मकी शान्ति होती है और उस समय उस स्वप्नशरीरका नाश होजाता है परन्तु उस समय जाग्रत्का शरीर तो अविकारी ही रहता है, ऐसे ही कर्मोंके अनुसार होनेवाले मनुष्य आदि शरीरोंका नाश होजाता है तब भी हृदयाकाशमें पिता आदिके देह नष्ट न होकर वैसे ही रहते हैं, श्रुतिमें कहा है, कि–"य इह आत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामान् तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ते न पितृलोकेन सम्पन्नो भवति" जो जीव आत्मा के स्वरूपको जानकर और सकल सत्य कामनाओंको लेकर परलोकमें जाते हैं वे जीवात्मा सकल लोकोंमें इच्छानुसार विचरते हैं यदि वे पितृलोककी कामनावाले

वाक्रूनयो नृप ॥ ४ ॥ महाभूतानि नित्यानि भूताधिपति-संश्रयात् । तेषाञ्च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्य-

होते हैं तो उनके सङ्कल्पसे ही पितर उनके पास आजाते हैं और वह पितृलोकसे सम्पन्न हुआ महान् मानाजाता है । इस श्रुतिके कथनानुसार व्यासजीने सत्य पितृ आदि लोकोंका दर्शन कराया है) ॥ ४ ॥ महाभूत तो नित्य हैं, क्योंकि-वे भूतोंके अधिपतियोंके आश्रयसे रहते हैं, वे नित्य पदार्थोंके साथ रहते हैं, इसलिये उनका कभी नाश नहीं होता है (तात्पर्य यह है, कि-प्राणियोंके अधिपति ईश्वरका आश्रय होनेसे महाभूत हमारे शरीरों की अपेक्षा अविनाशी हैं अर्थात् हृदयाकाशमें रहनेवाले पित्रादिके सम्बन्धसे नित्य हैं, परन्तु भूत कहिये प्राणी कर्मके कारणसे जन्म लेते हैं और कर्मका क्षय होजाने पर उनका लय होजाता है, परन्तु नित्य शरीरवाले उन महाभूतोंका अनित्य शरीरके साथ संसारदशामें सह-वास होता है तब वे तत्तत् तद्रूप बनजाते हैं और अनित्य शरीरोंका नाश होने पर उनसे विलग होजाते हैं, परन्तु उनके साथ विलग हुए नित्य भूतोंका उस समय नाश नहीं होता है, शरीर अनित्य है और बूढ़ा होता है, इस से महाभूत बूढे नहीं होजाते, अनित्यका वध होता है, इसलिये उनका वध नहीं होता " एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम् " हृदयाकाश ब्रह्मपुर कहलाता है, क्योंकि-जहाँ ब्रह्म रहता है और वह सत्य है ऐसी श्रुति है, इसलिये कर्मसे जन्मे हुए शरीरोंका नाश होता है, परन्तु उनके हृदयाकाशमें रहनेवाले पित्रादि देवोंका नाश नहीं होता है, इसलिये उनके असलरूपका दर्शन होना कोई असम्भव बात

ताम् ॥ ५ ॥ अनायासकृतं कर्म सत्यश्रेष्ठः फलागमः ।
आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्नुते ॥ ६ ॥
अविनाशस्तथा युक्तः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः । भूतानामा-
त्मको भावो यथासौ न वियुज्यते ॥ ७ ॥ यावन्न क्षीयते

नहीं है) ॥५॥ प्रवृत्तिरूप कर्म आयास (शारीरिकश्रम) से कियाजाता है,उसके विपरीत अनायासकृत जो निवृत्ति रूप कर्म है वह सत्य है, श्रेष्ठ है और उसका फल भी सत्य है, इन सब आयासयुक्त (प्रवृत्तिरूप) कर्मोंके साथ जुडाहुआ आत्मा सुख और दुःखको भोगता है ६ और उस समय (सुख दुःखसे मुक्त हुआ क्षेत्रज्ञ) तो अविनाशी ही है,यह निश्चय है,क्योंकि-भूतोंका आत्म-भाव ऐसा है, कि-इससे विलग नहीं होता है तात्पर्य यह है कि-यदि कोई यह शंका करे कि-आत्माको कर्म का सम्बन्ध होनेसे आत्माका नाश होजायगा,तो इसके उत्तरमें कहते हैं, कि-आत्मा अविनाशी कहिये नाश-रहित है, आत्माका यद्यपि-शरीरके सम्बन्धसे दुःखोंके साथ सम्बन्ध होता है,तो भी आत्मा उन दुःखोंके कारण से विकारी नहीं होता है, इसका कारण यह है, कि-आत्मा असङ्ग है अर्थात् निर्गुण है, तो भी 'उसका वध करदिया गया' ऐसा जो कहाजाता है यह अज्ञानके अध्यासले कहाजाता है, इसमें यह दृष्टान्त है, कि-जैसे हमारे शरीरका प्रतिबिम्ब दर्पण आदिमें पड़ता है उस समय हमारी प्रतिकृति (प्रतिबिम्ब) दर्पणमेंके मलि-नता आदि गुणोंको भी धारण करती है, परन्तु उस दर्पणका या उसके गुणोंका नाश होनेसे हमारे शरीरका नाश नहीं होजाता है, ऐसे ही क्षेत्रज्ञ कहिये आत्मा

कर्म तावत्तस्य स्वरूपतः। क्षीणकर्मा नरो लोके रूपान्यत्वं नियच्छति॥८॥ नाना भावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहताः। भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानताम् ॥ ९ ॥ अश्वमेधे श्रुतिश्चेयमश्वसंज्ञपनं प्रति। लोकान्तरगता

क्षेत्र कहिये देहके धर्मोंको और देहको धारण किये हुए है परन्तु उस देहका या देहके धर्मोंका नाश होनेसे उस का नाश नहीं होता है) ॥ ७ ॥ जब तक कर्मोंका क्षय नहीं होता है तब तक उसका स्वरूप रहता है जिस मनुष्यका कर्म इस लोकमें क्षीण होगया है वह किसी दूसरे ही रूपको धारण करता है ॥ ८ ॥ जुदे २ भाव एक ही शरीरको प्राप्त होकर इकट्ठे होजाते हैं, पदार्थोंके पृथक्२ भावोंके जाननेवालोंको तो वे नित्य मालूम होते हैं(तात्पर्य यह है, कि-जुदे२ भाव कहिये पाँच महाभूत, इन्द्रियें आदि भिन्न२ पदार्थ जब एक शरीरको प्राप्त होजाते हैं तब, मैं देवदत्त हूँ, मैं मनुष्यका पुत्र हूँ, इसप्रकार देह आदिके साथ तदाकार भावको प्राप्त होजाता है, परन्तु देह आदिके और आत्माके पृथक्पनेको जाननेवाले योगी आत्माके नित्यपनेको जानते हैं अर्थात् अज्ञानी जिन को नित्य मानते हैं उन देह आदिको ज्ञानी नित्य मानता है और ज्ञानी जिसको नित्य मानता है उस आत्माको अज्ञानी अनित्य मानते हैं) ॥ ९ ॥ घोड़ोंकी संज्ञपन विधिके लिये अश्वमेधयज्ञमें यह एक श्रुति है, कि-शरीर वालोंके प्राण नित्य हैं, वह परलोकमें जाते हैं और तहाँ भी नित्य रहते हैं (तात्पर्य यह है, कि-अश्वमेधमें जब घोड़ेकी संज्ञपनविधि अर्थात् वधकी क्रिया कीजाती है उस समय वेदमंत्र पढेजाते हैं, वे मंत्र ये हैं- 'सूर्यन्ते

नित्यं प्राणा नित्यं शरीरिणाम् ॥ १० ॥ अहं हितं वदाम्येतत् प्रियश्चेत्तव पार्थिव । देवयाना हि पन्थानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे॥११॥आहुतो यत्र यज्ञस्ते तत्र देवा हितास्तव । यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः ॥ १२ ॥ गति-

---

चक्षुः वातं प्राणः" हे घोड़े ! तेरा चक्षु सूर्यको प्राप्त हो ! और तेरा प्राण पवनको प्राप्त हो ! इस मंत्रमें नेत्रेन्द्रिय प्राण आदिके सूर्य आदिको प्राप्त होनेकी बात कही है, इससे प्रतीत होता है, कि–शरीरधारी जीवोंके प्राण कहिये इन्द्रियें परलोकमें जाती हैं. आत्मा विभु–व्यापक है, परन्तु उपाधिपरिछिन्न जीव व्यापक नहीं है, उपाधिवाले जीवात्माको मैं अमुक हूँ, अमुक का पुत्र हूँ, ऐसा अविद्याका कियाहुआ अभिमान होता है) ॥ १० ॥ हे राजन् ! यदि तुझे प्रिय लगे तो मैं तेरे हितकी एकबात कहता हूँ,यज्ञके आरम्भमें वे देवताओं के मार्ग ही सच्चे मार्ग हैं, ऐसा श्रुतिमें कहा है अर्थात् तुझे ज्ञानका अधिकार नहीं है,इसलिये तूने उपासनाको और कर्मोंको देवताओंका मार्ग मानलिया है ॥११॥ ज्यों तूने यज्ञ करनेका आरम्भ किया, कि–उसी समय देवता तेरे हितसाधक होजायँगे, जब देवता इकट्ठे होते हैं तो वे पशुओं (जीवों) को स्वर्गमें भेजनेके लिये अनुग्रह करनेवाले बनजाते हैं (अर्थात् तू जिस समय यज्ञ करेगा, कि–उसी समय देवता तेरे सखा बनजायँगे, इस श्लोकमें पशुशब्द जीवका वाचक है, जैसे मनुष्य पशुओंके द्वारा अपने वैभवोंको ग्रहण करते हैं,ऐसे ही देवता भी जीवरूप पशुओंसे यज्ञादिके द्वारा वैभवोंको ग्रहण करते हैं और वे स्वर्ग आदि लोक देकर उनके ऊपर अनुग्रह भी

भक्ताश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्त्युत । नित्येऽस्मिन् पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि पूरुषः ॥ १३ ॥ अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः । वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः ॥ १४ ॥ वियोगे दोषदर्शी यः संयोगं स विवर्जयेत् । असंगे सङ्गमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम् ॥१५॥ परापरज्ञस्त्वपरो नाभिमानादुदीरितः। अपरज्ञः परां बुद्धिं ज्ञात्वा मोहाद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः । नाहं तं वेद्मि नासौ

करते हैं) ॥ १२ ॥ यज्ञ करके नित्य जीव गतिवाले होते हैं (स्वर्गमें जाते हैं) परन्तु दूसरे नहीं जाते, यह पञ्चमहाभूतोंका वर्ग नित्य है और आत्मा भी नित्य है ।१३। जो इस पञ्चमहाभूत वर्गका और आत्माका अनेकों देहों के साथ सम्बन्ध मानता है,उसकी बुद्धि निरर्थक है और जो देहके वियोगसे बहुत ही शोक करता है,मेरी समझमें वह बालबुद्धि है ॥ १४ ॥ जो वियोगमें दोषोंको देखता है, उसको संयोगका त्याग करदेना चाहिये, क्योंकि– असङ्ग रहनेमें सङ्गम होता ही नहीं तथा इस भूतल पर वियोगसे होनेवाला दुःख भी नहीं होता है ॥ १५ ॥ जो पर कहिये ज्ञाननिष्ठ है और अपर कहिये ज्ञाननिष्ठ नहीं है वह अर्थात् पर और अपरके भेदको जाननेवाला (नित्य और अनित्यके भेदको जाननेवाला) अभिमानसे दूर रहता है और जो अज्ञानी है वह दूर नहीं रहता, (उसका देहमें अभिमान होता है) जो अपर कहिये सगुण ब्रह्मको जानता है वह परा विद्याको पाकर मोहसे मुक्त होजाता है ॥१६॥ जीवात्मा अदर्शन (ब्रह्म) मेंसे आया हुआ है और फिर अदर्शन पाजाता है (ब्रह्ममें ही लीन

र्मां न च मेऽस्ति विरागता ॥ १७ ॥ येन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः । तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्नुते । मानसं मनसाप्नोति शरीरञ्च शरीरवान् ॥ १८ ॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयं प्रति वैशम्पायनवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४।

वैशम्पायन उवाच । अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान् दर्शनं प्रतिलब्धवान् । ऋषेः प्रसादात् पुत्राणां स्वरूपाणां कुरूद्वह १ स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदन्तथा । अवाप्तवान्नर-

---

होजाता है) उसको मैं नहीं जानता (क्योंकि-वह इन्द्रियोंके अगोचर है) तथा वह मुझे नहीं जानता (क्योंकि-उसके करण कहिये इन्द्रियें नहीं हैं, यदि कहो, कि-तू भी वैसा ही क्यों नहीं होजाता, तो इसका उत्तर यह है, कि-) मुझे विरागता नहीं है ॥ १७ ॥ अनीश्वर (सत्ताशून्य जीव) जिस २ शरीरसे कर्म करता है, उस २ शरीरसे उसको वह अवश्य ही भोगना पडता है, क्योंकि-मनका कियाहुआ मनसे, शरीरका कियाहुआ शरीरसे और वाणीका कियाहुआ वाणीसे भोगना पडता है किसीको मारो तो मार खानी पडती है, खराब अन्न खाओ तो अजीर्ण होजाता है, बुखार आजाता है, इस लिये मन वाणी और शरीरकी चपलताको त्यागकर प्राणायाम करता हुआ आत्महित साधन करे) ॥ १८ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि हे कुरुवंशको चलानेवाले ! राजा धृतराष्ट्रने (अन्धे होनेके कारण) पहले कभी नहीं देखा था, व्यासऋषिकी कृपासे उसने पुत्रोंके स्वरूपोंका दर्शन किया १ उस मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजाने राजधर्म, ब्रह्मोपनिषद् तथा

श्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च ॥ २ ॥ विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात् । धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चैव तपस्विनम् ॥ ३ ॥ जनमेजय उवाच । ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत् पितरं यदि । तद्रूपवेशवयसं श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ४ प्रियं मे स्यात् कृतार्थश्च स्यामहं कृतनिश्चयः । प्रसादादृषिमुख्यस्य मम कामः समृध्यताम् ॥५॥ सौतिरुवाच । इत्युक्तवचने तस्मिन् नृपे व्यासः प्रतापवान् । प्रसादमकरोद्धीमानानयच्च परिक्षितम् ॥६॥ ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः । श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ।७। शमीकञ्च महात्मानं पुत्रन्तं चास्य शृङ्गिणम् । अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८ ॥ ततः सोऽवभृथे

बुद्धिका निश्चय पालिया था ॥२॥ महाबुद्धिमान् विदुरने अपने तपोबलसे सिद्धि पायी थी और धृतराष्ट्रने तपस्वी व्याससे मिलकर सिद्धि पायी थी॥३॥जनमेजय कहता है, कि-वर देनेवाले व्यासजी यदि मुझे भी मेरे पिताको उस ही रूप, वेष और अवस्थामें दिखादें तो आपके कहेहुए इस सब वृत्तान्त पर श्रद्धा होय ॥ ४ ॥ यह काम मेरा बड़ा ही प्यारा होगा और मैं कृतार्थ होजाऊँगा तथा मुझे इस बातका निश्चय भी होजायगा, उन ऋषियोंमें मुख्य व्यासजीके प्रसादसे मेरी यह इच्छा सफल होनी चाहिये ॥५॥ सौति कहते हैं, कि-उस राजाने यह बात कही, तब प्रतापी और बुद्धिमान् व्यासजीने उसके ऊपर कृपाकी और उन्होंने परीक्षितको तहाँ बुलाया ॥६॥ तब उस ही रूप और उस ही वेषमें अपने पिता श्रीमान् राजा परीक्षितको आकाशमेंसे पृथिवी पर आया हुआ जनमेजयने देखा ॥७॥ तथा महात्मा शमीकको, उनके पुत्र शृङ्गीको

राजा मुदितो जनमेजयः। पितरं स्नापयामास स्वयं सस्नौ च पार्थिवः ॥ ९ ॥ स्नात्वा स नृपतिर्विप्रमास्तीकमिदमब्रवीत्। यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुसुतं तदा ॥ १० ॥ आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः। यदद्यायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥११॥ आस्तीक उवाच। ऋषिर्द्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः। यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥१२॥ श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन। सर्पाश्च भस्मसान्नीता गताश्च पदवीं पितुः ॥१३॥ कथंचित्तक्षको मुक्तः सत्यत्वात्तव पार्थिव। ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिर्दृष्टा महात्मनः ॥ १४ ॥

और उस राजाके जो मंत्री थे उनको भी देखा ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हुए उस राजा जनमेजयने यज्ञान्तस्नानके समय अपने पिताको स्नान कराया और अपने आप भी स्नान किया ॥९॥ स्वयं स्नान करनेके अनन्तर उस राजाने यायावर कुलमें उत्पन्न हुए जरत्कारुके पुत्र आस्तीकसे कहा, कि-॥ १० ॥ हे आस्तीक! मुझे प्रतीत होता है, कि-यह मेरा यज्ञ अनेकों आश्चर्योंसे भरा हुआ है, क्योंकि-आज मेरे शोकका नाश करनेवाले यह मेरे पिताजी मुझे मिले हैं ॥११॥ आस्तीकने कहा, कि-हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजन्! तपस्याके भंडाररूप, पुराणपुरुष द्वैपायन व्यास ऋषि जिसके यज्ञमें विद्यमान हों उसने मानों दोनों लोकोंको जीत लिया है ॥ १२ ॥ हे पाण्डवनन्दन! तूने विचित्र कथा सुनी है और सर्प जलकर भस्म होगए तथा तेरे पिताके लोकमें पहुँच गये हैं।१३।हे राजन्! तेरे सत्यसे तक्षक न जाने कैसे बड़ी कठिनाईसे बचा है, सब ऋषियोंका पूजन होगया और तूने महात्मा व्यासदेवके

प्राप्तः सुविपुलो धर्म्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् । विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५ ॥ ये च पक्षधरा धर्मे सद्वृत्तरुचयश्च ये । यान् दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्य्या नमस्क्रिया ॥ १६ ॥ सौतिरुवाच । एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात् स राजा जनमेजयः । पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥ पप्रच्छ तमृषिञ्चापि वैशम्पायनमच्युतम् । कथावशेषं धर्म्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयस्य स्वपितृदर्शने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जनमेजय उवाच । दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान् सानुबन्धान् जनाधिपः । धृतराष्ट्रः किमकरोद्राजा चैव युधिष्ठिरः॥१॥वैशम्पायन उवाच । तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पुत्राणां

तपोबलको देखलिया है॥१४॥पापोंका नाश करनेवाली इस कथाको सुनकर तूने बडाभारी धर्म प्राप्त किया है, उदार जनके दर्शनसे तेरे हृदयकी गाँठ खुलगयी है ॥१५॥ जो धर्मका पक्ष लेनेवाले हैं, जिनकी धर्ममें अच्छी वृत्ति और रुचि है तथा जिनका दर्शन करनेसे पापका नाश होता है, उनको नमस्कार करना चाहिये ॥१६॥ सौति कहते हैं, कि-द्विजोंमें श्रेष्ठ वैशम्पायनसे ऐसा सुनकर राजा जनमेजयने इस बातको बारम्बार स्वीकार करके उन व्यास ऋषिकी पूजा की ॥१७॥ और हे सत्तम ! फिर अच्युत वैशम्पायन ऋषिसे धर्मको जाननेवाले राजा जनमेजयने कथाका बाकी भाग बूझना आरम्भ किया॥१८॥पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ ॥

जनमेजयने बूझा,कि-पुत्रोंको पौत्रोंको तथा संबन्धियों को देखकर राजा धृतराष्ट्रने तथा राजा युधिष्ठिरने क्या

दर्शनं नृपः। वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ।२।
इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः। प्रतिजग्मुर्यथाकामं
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३ ॥ पाण्डवास्तु महात्मानो लघु-
भूयिष्ठसैनिकाः । पुनर्जग्मुर्महात्मानं सदारास्तं मही-
पतिम् ॥ ४ ॥ तमाश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥५॥ धृतराष्ट्र महा-
बाहो शृणु कौरवनन्दन । श्रुतास्ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां
पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥ ऋद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदि-
नाम्। धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः ॥ ७ ॥
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः। श्रुतं देव-
रहस्यन्ते नारदाद्देवदर्शनात् ॥ ८ ॥ गतास्ते क्षत्रधर्मेण

किया ? ॥ १ ॥ वैशम्पायनने उत्तर दिया, कि—हे राजन् !
बड़े आश्चर्यमें डालनेवाला अपने पुत्रोंका दर्शन करके
शोकरहितहुए राजर्षि धृतराष्ट्र फिर अपने आश्रममें चले
आये ॥२॥ और दूसरे सब लोग तथा परमऋषि धृतराष्ट्रसे
आज्ञा ले अपनी इच्छानुसार चलेगये ॥ ३ ॥ महात्मा
पाण्डव और छोटे बड़े सैनिक अपनी स्त्रियों सहित
महात्मा राजा धृतराष्ट्रके पास फिर पहुँच गये ॥ ४ ॥
तदनन्तर बुद्धिमान् ब्रह्मर्षि, लोकपूजित, सत्यवतीके पुत्र
व्यास मुनि वहाँ आये और धृतराष्ट्रसे कहा ॥५॥ व्यासजी
बोले, कि—हे कौरवनन्दन महाबाहु धृतराष्ट्र ! पुण्य कर्म
करनेवाले, वास्तवमें कुलीन और वृद्ध, वेद वेदाङ्गके ज्ञाता
धर्मको जाननेवाले, पुराण ऋषियोंकी अनेकों कथाएँ तुमने
कहनेवालोंसे सुनी हैं ॥६—७॥ अब तू शोक न कर, ज्ञानी
पुरुषको भावीके होनेसे दुःखी नहीं होना है और तूने
देवदर्शन करनेवाले नारदजीसे देवताओंका रहस्य भी

शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् । यथा दृष्टास्त्वया पुत्रास्तथा कामविहारिणः ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते । सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः॥१०॥ विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम् । मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ॥११॥ एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप । बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद्राज्यं नाम कुरूद्वह ॥१२॥ इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा । युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ अजातशत्रो भद्रन्ते शृणु मे भ्रातृभिः सह । त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते ॥ १४ ॥ रमे चाहं त्वया

सुना है ॥८॥ तेरे पुत्रोंने क्षात्रधर्मका पालन करके शस्त्रसे पवित्र हुई शुभगति पायी है, तूने जैसा देखा इसप्रकार ही तेरे पुत्र यथेच्छ विहार करते हैं ॥ ९ ॥ अपने सब भाइयोंके, स्त्रियोंके तथा मित्रोंके सहित बुद्धिमान् युधिष्ठिर स्वयं तेरी सेवा करते हैं ॥१०॥ अब तू इनको आज्ञा दे, इनको अपने राज्यमें जाने दे और राज्य करने दे,इस वनमें रहतेहुए इनको एक माससे अधिक समय बीत गया है ॥११॥ क्योंकि–हे राजन्! इस राज्यसिंहासनकी सदा यत्नके साथ रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि–हे कुरुवंशके चलानेवाले! जिसको राज्य कहते हैं, इसको पा लेनेकी इच्छावाले बहुतसे होते हैं ॥ १२ ॥ अमेय बुद्धिवाले व्यासजीने कौरवराज धृतराष्ट्रसे इसप्रकार कहा, तब युधिष्ठिरको बुलाकर बोलनेमें चतुर धृतराष्ट्रने उनसे कहा ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि–हे अजातशत्रो! तेरा कल्याण हो! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसको तू अपने भाइयोंके सहित सुन, हे राजन्! तेरी कृपासे मुझे शोक

पुत्र पुरेव गजसाह्वये । नाथेनानुगतो विद्वान् प्रियेषु परि-
वर्त्तिना ॥१५॥ प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ १६ ॥
भवन्तञ्चेह संप्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते । तपोयुक्तं शरीरं
च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः ॥१७। मातरौ ते तथैवेमे शीर्ण-
पर्णकृताशने । मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्त्तयिष्यतः॥१८
दुर्योधनप्रभृतयो दृष्टा लोकान्तरं गताः । व्यासस्य तपसो
वीर्याद्भवतश्च समागमात् ॥ १९ ॥ प्रयोजनन्तु निर्वृत्तं
जीवितस्य ममानघ । उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातु-
मर्हसि ॥ २० ॥ त्वय्यद्य पिण्डः कीर्त्तिश्च कुलञ्चेदं प्रति-

पीड़ा नहीं देता है ॥ १४ ॥ हे पुत्र ! जैसे पहले मैं तेरे साथ हस्तिनापुरमें रहता था, तैसे ही यहाँ भी मैं तेरे साथ आनन्दसे रहता हूं, हे विद्वन् ! मेरा प्रिय करनेके बर्त्तावबाला तुझ सरीखा रक्षक जिसके पीछे चलता है ऐसे मुझे ॥ १५ ॥ तेरे कारणसे पुत्रका फल मिला है, तेरे ऊपर मेरी बड़ी प्रीति है, हे महाबाहो ! मुझे तेरे ऊपर कोप नहीं है, अब तू आनन्दसे राजधानीको लौटजा, यहाँ विलम्ब न कर ॥ १६ ॥ तुम्हें यहाँ देखकर मेरे तप में कमी पड़ती है, तप करनेवाला यह शरीर तुम्हें देखकर मैंने फिर धारण करलिया है ॥१७॥ तेरी ये दोनों मातायें सूखकर गिरेहुए पत्तोंको खाकर रहती हैं और मेरी समान व्रतका पालन करके रहती हैं, हे पुत्र ! अब ये चिरकाल तक ऐसे ढङ्गसे नहीं रहसकेंगी ॥ १८ ॥ व्यास जीके तपोबलसे और तेरे समागमसे दूसरे लोकोंमें गये हुए दुर्योधन आदिको देखलिया ॥ १९ ॥ हे निष्पाप ! मेरे जीवनका प्रयोजन सफल होगया, अब मैं उग्र तप

ष्ठितम् श्वो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम्॥२१ राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ। सन्देष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता प्रभो ॥२२॥ वैशम्पायन उवाच। इत्युक्तवचनन्तन्तु नृपो राजानमब्रवीत्। न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम्॥ २३ ॥ कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा। भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः॥२४॥तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च। त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे ॥२५॥ गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत् पूजिता वयम् ।राजा यदाह तत् कार्यं

करूँगा, इसलिये तू मुझे आज्ञा दे, यही उचित है॥२०॥ अब पितरोंके पिण्डका, कीर्त्तिका और इस कुलका आधार तेरे ऊपर रहा, हे महाबाहो ! तुम कलको या आज ही चलेजाओ, विलम्ब मत करो ॥ २१ ॥ हे भरत-सत्तम! तूने राजनीति तो बहुत अच्छे प्रकारसे सुनी है, हे विभो ! कहनेके योग्य कोई सन्देशा नहीं है, तूने मेरे लिये बहुत कुछ करलिया ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहने पर उनसे युधिष्ठिरने कहा, कि-हे धर्मज्ञ ! मुझ निर्दोषको आप सर्वथा त्याग दें, यह ठीक नहीं है ॥ २३ ॥ मेरे सब भाई और सेवक आनन्दसे चलेजायँ,और मैं संयमव्रतधारी होकर आपकी और अपनी इन दोनों माताओंकी परिचर्यामें रहूँगा२४ इस पर गान्धारीने कहा,कि-नहीं,हे बेटा! सुन! तेरे ऊपर कुरुकुलका और मेरे श्वसुरके पिण्डका आधार है ॥२५॥ अब तुम जाओ, हे बेटा! मेरी इतनी बडी पूजा हुई यही बहुत है, (तेरे ताऊ) राजा (धृतराष्ट्र) ने तुमसे जो कुछ कहा है, हे बेटा! तुझे अपने ताऊजीकी बात माननी

त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥२६॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तः
स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत । स्नेहबाष्पाकुले नेत्रे
प्रमृज्य रुदतीं वचः ॥२७॥ विसर्जयति मां राजा गांधारी
च यशस्विनी । भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि
दुःखितः ॥ २८ ॥ न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचा-
रिणि । तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्॥२६॥
ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा । तपस्येवानु-
रक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा॥३०॥शून्येयञ्च मही कृत्स्ना
न मे प्रीतिकरी शुभे । बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न
यथा पुरा ॥ ३१ ॥ पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रा-

चाहिये ॥२६॥ गान्धारीने इसप्रकार कहा तब युधिष्ठिर
ने प्रेमके आँसुओंसे भरेहुए नेत्रोंको पोंछतेहुए कुन्तीसे
इसप्रकार कहा, कि-॥ २७ ॥ यह राजा और यशस्विनी
गान्धारी मुझे आज्ञा देते हैं, मेरा चित्त तुझमें बँधाहुआ
है, सो मैं दुःखी होताहुआ कैसे चलाजाऊँ? ॥ २८ ॥
हे धर्मचारिणी! मैं तेरे तपमें विघ्न डालना नहीं चाहता
क्योंकि तपसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है और तपसे महत्
(ब्रह्म) मिलता है ॥ २६ ॥ हे रानी ! पहले मेरी राज्य
के ऊपर जैसी भावना थी वैसी अब नहीं है तथा मेरा
मन भी अब सर्वथा तप पर ही लगता है ॥ ३० ॥ यह
सब पृथिवी मुझे सूनी मालूम होती है, हे शुभे ! यह
मुझे आनन्द देनेवाली नहीं मालूम होती, हमारे बान्धव
थोडेसे रहगये और अब मेरा बल पहलेकेसा नहीं रहा
है ॥ ३१ ॥ पांचालोंका बहुत ही अधिक नाश
होगया, वे कथामें कहने मात्रको रहगये हैं, हे शुभे ! मैं
ऐसा किसीको भी नहीं देखता जो उनके कुल (वंश घा

यशेषिताः। न तेषां कुलकर्त्तारं कञ्चित् पश्याम्यहं शुभे ३२
सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे। अवशिष्टा-
श्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ॥ ३३ ॥ चेदयश्चैव
मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः। केवलं वृष्णिचक्रञ्च वासु-
देवपरिग्रहात् ॥ ३४ ॥ यद् दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं
नार्थहेतुनः। शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्श-
नम् ॥३५॥ अविपह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः।
एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेद बाष्पव्याकुललोचनः। नोत्सहेऽहं परि-
त्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥ प्रतियातु भवान्
क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं विभो। इहैव शोषयिष्यामि

जाति) को चलावे ॥ ३२ ॥ द्रोणने रणभूमिमें उन सबों
को जलाकर भस्म करडाला है और जो बाकी रहे थे उनको
द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने उस रातमें मारडाला ॥ ३३ ॥
चेदी और मत्स्य जैसे पहले मालूम होते थे वैसे अब
नहीं हैं, श्रीकृष्णके आश्रयसे केवल वृष्णियोंका मण्डल
दीखरहा है ॥ ३४ ॥ यह सब देखकर मैं केवल धर्मका
पालन करनेके लिये यहाँ रहना चाहता हूँ, मुझे धन
नहीं चाहिये, मेरे ऊपर कल्याणकी दृष्टि कर। हम सबों
को तेरा दर्शन दुर्लभ है ॥ ३५ ॥ और यह राजा तो ऐसा
तीव्र तप आरम्भ करनेवाले हैं, कि-जिसको सहना महा-
कठिन है, यह सुनकर योधाओंका पति सहदेव ॥ ३६ ॥
नेत्रोंमें आँसू भर व्याकुल होताहुआ युधिष्ठिरसे कहने
लगा, कि-हे भरतसत्तम! अपनी माताको छोडनेका
मुझमें साहस नहीं है ॥ ३७ ॥ हे विभो! आप शीघ्र
ही लौटजाइये, मैं यहाँ तप करूँगा और यहाँ तप करके इस

तपसेदं कलेवरम् ॥ ३८ ॥ पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञा मात्रोस्तथानयोः । तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम् ॥ ३९ ॥ गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम । आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः ४० उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते । त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ॥ ४१ ॥ तस्मात् पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पञ्च नः प्रभो । एवं संस्तम्भितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ॥४२॥ सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः । ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः ॥४३ ॥ अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन् । युधिष्ठिर

शरीरको सुखा डालूँगा ३८ मेरा मन ताऊजीके और इन दोनों माताओंके चरणोंकी सेवा करनेको चाहता है, इसपर कुन्तीने उस महाबाहुको हृदयसे लगाकर कहा, कि–३९ हे बेटा ! तू जा, तू ऐसी बात न कर, तू मेरा कहना मानजा, तेरे मार्ग कल्याणकारी हों, हे बेटो ! स्वस्थ हो जाओ ॥ ४० ॥ ऐसा करनेसे तो मेरे तप करनेमें बाधा पडती है, तेरे स्नेहकी पाशमें बँधीहुई मेरे ऊँचे तपमें कमी होती है ॥ ४१ ॥ इसलिये हे बेटा ! तू जा, हे प्रभो! मेरी आयु थोडीसी रही है, इसप्रकार कुन्तीके अनेकों प्रकारके वाक्योंने उनके मनको रोकदिया ॥ ४२ ॥ और विशेषकर हे राजेन्द्र ! सहदेवके और युधिष्ठिरके (मन को, रोका, क्योंकि–उनकी कुन्तीके ऊपर बडी भक्ति थी, फिर माताओंसे और राजा धृतराष्ट्रसे आज्ञा लेकर उन दोनों कुरुसत्तमोंने ॥ ४३ ॥ कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्रको प्रणाम किया तथा उनसे फिर कहनेलगे, युधिष्ठिरने कहा, कि-) आपके कहनेसे हम अपने राज्यको सकुशल

उवाच। राज्यं प्रति गमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः ४४
अनुज्ञातास्त्वया राजन् गमिष्यामो विकल्मषाः। एव-
मुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना ॥ ४५ ॥ अनुजज्ञे
स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम्। भीमञ्च बलिनां श्रेष्ठं
सान्त्वयामास पार्थिवः ॥ ४६ ॥ स चास्य सम्यङ् मेधावी
प्रत्यपद्यत वीर्यवान्। अर्जुनञ्च समाश्लिष्य यमौ च
पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥ अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिन-
न्द्य च। गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः ४८
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम्। चक्रुः प्रद-
क्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥ ४९ ॥ पुनः पुनर्निरी-

लौट जायँगे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! आपकी आज्ञा पायेहुए हम, मनमें किसी प्रकारका मैल न रखकर लौटे जाते हैं, महात्मा धर्मराजने इसप्रकार उन राजर्षिसे कहा, तब ४५ उन्होंने कुरुवंशी युधिष्ठिरको अभिनन्दन (शाबासी) देकर आज्ञा दी, और उन राजा धृतराष्ट्रने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको समझाकर धीरज दिया ॥ ४६ ॥ उस बलवान् और बुद्धिमान् भीमने उनके उस सान्त्वनको स्वीकार किया और अर्जुनको हृदयसे लगाकर तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ उन दोनों भाई नकुल सहदेवको भी आलिङ्गन करके तथा अभिनन्दन देकर कुरुवंशी धृतराष्ट्रने आज्ञा दी, उन्होंने गान्धारीके चरणोंमें प्रणाम किया तब गान्धारीने भी आज्ञा दी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ माता कुन्तीने उनके मस्तकको सूँघकर तथा हृदयसे लगाकर उनको आज्ञा दी, तदनन्तर बछड़े गौका दूध पीनेको आवें और उस समय उनको रोकाजाय तो जैसे वे गौके चारों ओर प्रदक्षिणा करते घूमते हैं तैसे ही उन्होंने राजा धृतराष्ट्र

न्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम् । द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ५० ॥ न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः॥ श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः५१ सन्दिष्टाश्चेति कर्त्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह । ततः प्रजज्ञे निनदः सूतानां युज्यतामिति ॥ ५२ ॥ उष्ट्राणां क्रोशतां चापि हयानां ह्रेषतामपि। ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः ससैनिकः । नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात् सबान्धवः ५३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि युधिष्ठिरप्रत्यागमने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ समाप्तं पुत्रदर्शनपर्व ॥

की प्रदक्षिणा की ॥ ४९ ॥ उन्होंने बार २ प्रदक्षिणा की, तथा द्रौपदी आदिने और कौरवोंकी सब स्त्रियोंने भी श्वसुरजीके ऊपर भक्तिभाव रखकर न्यायपूर्वक(शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अवस्था और पदके क्रमसे)उनके पास जाकर (प्रणाम किया तथा आशीर्वाद लेकर आज्ञाली) फिर दोनों सासुओंसे मिलकर उनका अभिनन्दन पाकर आज्ञा ली ॥ ५० ॥ ५१ ॥ (सासुओंने) उनको कर्त्तव्य का उपदेश दिया और वे अपने २ पतियोंके साथ चली गयीं, फिर सारथियोंको पुकार कर कहागया, कि-रथ जोतो,रथ जोतो५२तब बलबलाते हुए ऊँटोंका,हिनहिनाते हुए घोडोंका शब्द होउठा, तदनन्तर अपने बान्धव, स्त्रियें और सैनिकों सहित राजा युधिष्ठिर लौटकर हस्तिनापुर नामक नगरमें आगये ॥ ५३ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३६ ॥ छ ॥ छ ॥

॥ पुत्रदर्शनपर्व समाप्त ॥

अथ नारदागमनपर्व ।

वैशम्पायन उवाच । द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया । देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥ तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः । आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः ॥२॥ चिरात्तु नानुपश्यामि भगवन्तमुपस्थितम् । कच्चित्ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम् ॥ ३ ॥ के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते । तद् ब्रूहि द्विजमुख्यस्त्वं त्वं ह्यस्माकं परा गतिः ॥४॥ नारद उवाच । चिरदृष्टोऽसि मे त्वेवमागतोऽहं तपोवनात् । परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः ।

नारदागमनपर्व ।

वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजन् ! पाण्डवोंको लौटकर आयेहुए दो वर्ष बीतजाने पर अपनी इच्छासे ही देवर्षि नारदजी युधिष्ठिरके पास आये ॥ १ ॥ महाबाहु कुरुराज युधिष्ठिरने उनका पूजन करके बैठाला, फिर आसन पर बैठेहुए परम विश्वासपात्र ऋषिसे, बोलनेवालोंमें चतुर युधिष्ठिरने कहा, कि-॥२॥ हे विप्र! मैं देखता हूँ; कि-आप भगवान् बहुत ही दिनों बाद पधारे हैं, आप कुशलसे तो हैं? आपका सब शुभ तो है? ॥३॥ मिलकर जानेके बाद आपने कौन२ से लोक देखे हैं ? बतलाइये आपका कौनसा काम करूँ ? आप द्विजोंमें मुख्य और मेरी परमगति हैं ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा, कि-हे राजन् ! बहुत दिन हुए तब मैंने आपको देखा था, इसलिये आपको देखनेके लिये आज मैं तपोवनसे चला आरहा हूँ, मैंने बहुतसे तीर्थोंका और गङ्गाका दर्शन किया है ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-गङ्गाके तटपर रहनेवाले पुरुष आकर मुझसे कहते हैं, कि-महात्मा

धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ६ ॥ अपि दृष्ट-
स्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः। गान्धारी च पृथा चैव
सूतपुत्रश्च सञ्जयः ॥ ७ ॥ कथञ्च वर्तते चाद्य पिता मम स
पार्थिवः। श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः ।८।
नारद उवाच। स्थिरी भूय महाराज शृणु वृत्तं यथात-
थम्। यथाश्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने ॥९॥ वन-
वासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन। कुरुक्षेत्रात्पिता तुभ्यं
गङ्गाद्वारं ययौ नृप ॥ १० ॥ गान्धार्या सहितो धीमान्
वध्वा कुन्त्या समन्वितः। सञ्जयेन च सूतेन साग्निहोत्रः
सयाजकः ॥ ११ ॥ आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपो-
धनः। वीटां मुखे समादाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः ॥१२॥
वने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः। त्वगस्थि-

धृतराष्ट्र परम तपस्या कररहे हैं ॥ ६ ॥ क्या आपने तहाँ
उनको देखा है? वह कुरुकुलके चलानेवाले कुशलसे
तो हैं? गान्धारी और कुन्ती तथा सूतपुत्र सञ्जय कुशलसे
तो हैं? ॥७॥ वह मेरे ताऊजी राजा धृतराष्ट्र आजकल कैसे
हैं? हे भगवन्! आपने यदि उनको देखा हो तो मैं यह बात
सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ नारदजीने उत्तर दिया, कि–हे
महाराज! तहाँका जो कुछ वृत्तान्त है, उस तपोवनमें मैंने
जैसा देखा और सुना है, उसको यथावत् सुनिये ॥ ९ ॥
हे कुरुनन्दन राजन्! जब तुम वनवासमेंसे लौटकर चले
आये तब तुम्हारे ताऊजी कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वारकी ओरको
चलेगये ॥१०॥ उन बुद्धिमान्के साथ गांधारी और उनकी
पुत्रवधू कुन्ती भी थी. साथमें सूत सञ्जय और अग्निहोत्र
तथा याजक ब्राह्मण भी थे ॥११॥ तहाँ तेरे तपोधन ताऊ
जीने तीव्र तप करना आरम्भ करदिया, मुखमें कङ्कर वा
काठका टुकडा रखकर वायुका भक्षण करतेहुए मौन रहने

मात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः ॥ १३ ॥ गान्धारी तु जलाहारी कुन्ती मासोपवासिनी । सञ्जयः षष्ठभुक्तेन वर्त्तयामास भारत ॥ १४ ॥ अग्नींस्तु याजकास्तत्र जुहु-वुर्विधिवत् प्रभो । दृश्यतो दृश्यतश्चैव वने तस्मिन् नृपस्य वै ॥ १५ ॥ अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः । ते चापि सहिते देव्यौ सञ्जयश्च तमन्वयुः ॥ १६ ॥ सञ्जयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च । गान्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता ॥ १७ ॥ ततः कदाचिद्गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः । गङ्गायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽ-भवत् ॥ १८ ॥ अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्म-हान् । ददाह तद्वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः ॥१९॥ दह्यमाने

लगे ॥ १२ ॥ उस वनमें सब मुनि उनकी पूजा किया करते थे, वह महातपस्वी राजा छः महीने बाद तो केवल हड्डी और चमडामात्र रहगये ॥१३॥ गान्धारी जल पीकर रहा करती थी और कुन्ती महीने२भरका उपवास किया करती थी, तथा हे भारत ! सञ्जय ! छः२ दिन बाद खाकर समय बिताता था ॥१४॥ हे प्रभो! तहाँ उस वनमें याजक विधिके अनुसार अग्निमें, राजा देखे चाहे न देखे, आहुति दिया करते थे ॥ १५ ॥ उस राजाके रहनेका स्थान न कोई नियत नहीं था, वह राजा वनमें फिरता रहता था, दोनों देवियें उसके साथ रहती थीं और सञ्जय पीछे२घूमा करताथा १६ सपाट और ऊँची नीची भूमिमें सञ्जय उसका मार्गदर्शक था और श्रेष्ठ गान्धारी और कुन्ती उसकी आँख थीं ॥१७॥ एक दिन वह श्रेष्ठराजा गङ्गाके किनारे पर पहुँच गया और वह बुद्धिमान् गङ्गामें स्नान करके अपने आश्रमकी ओरको लौटचला ॥ १८ ॥ उस समय एकसाथ पवन चलनिकला, और बडीभारी दावाग्नि जलउठी तथा वह वनको चारों

मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समन्ततः। वराहाणां च यूथेषु संश्र-
यत्सु जलाशयान्॥ २०॥ समाविद्धे वने तस्मिन् प्राप्ते
व्यसन उत्तमे।निराहारतया राजा मन्दप्राणविचेष्टितः२१
असमर्थोऽपसरणे सुकृशौ मातरौ च ते। ततः स नृपति-
र्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात्॥ २२॥ इदमाह ततः सूतं
सञ्जयं जयतां वरः। गच्छ सञ्जय यत्राग्निर्न त्वां दहति
कर्हिचित्॥ २३॥ वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां
गतिम्। तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः॥२४॥
राजन्मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना। न चोपायं
प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः॥ २५॥ यदत्रानन्तरं कार्यं

ओरसे घेरकर धधकनेलगी॥ १९॥ इसकारण चारों ओर पशुओंके समूह और दो जिह्वावाले सर्प जलनेलगे, तथा शूकरोंके समूह जलाशयोंमें जाकर आश्रय लेनेलगे॥२०॥ वह वन जलरहा था, ऐसा दुःख आपड़ा था, उस समय हे राजन्! निराहार रहनेके कारण उसके प्राणोंकी चेष्टा मन्द पड़गयी॥२१॥उसमें हिलने डुलने तककी शक्ति नहीं रही और तेरी दोनों माताये बड़ी ही दुर्बल होगयी थीं (इसलिये वे दौड नहीं सकती थीं,ऐसी दशामें) फिर राजा धृतराष्ट्रने उस अग्निको समीपमें पहुँचा हुआ देखा॥२२॥ तब जय पानेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजाने सूत सञ्जयसे यह बात कही, कि-हे सञ्जय! तू ऐसे स्थान पर चला जा कि-जहाँ अग्नि तुझे किसीप्रकार भी न जलासके २३हम तो यहाँ अग्निके साथ एक होकर उत्तम गति पावेंगे, बोलने वालोंमें श्रेष्ठ सञ्जयने व्याकुल होकर धृतराष्ट्रसे कहा, कि-॥२४॥ हे राजन्! इस वृथा (लौकिक) अग्निसे आपकी मृत्यु हो यह ठीक नहीं है तथा इस अग्निसे बचनेका भी मैं कोई उपाय नहीं देखता॥ २५॥ अब इसके बाद इन

तद्भवान् वक्तुमर्हति । इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः ॥ २६ ॥ नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात् स्वयम् । जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणम् ॥२७॥ तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय मा चिरम् । इत्युक्त्वा सञ्जयं राजा समाधाय मनस्तथा ॥२८॥ प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत्तदा । सञ्जयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ २९ ॥ उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो । ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद्वचः ॥ ३० ॥ संनिरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा । गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव ॥३१॥ दावाग्निना समायुक्तौ स च राजा पिता तव । संजयस्तु

विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य हो उसको आप कहिये सञ्जयके ऐसा कहने पर राजा धृतराष्ट्रने उससे फिर कहा, कि-२६ अपने घरको छोडकर बाहर निकलेहुए हम लोगोंके लिये यह अग्नि अनिष्ट नहीं है, जल, अग्नि, वायु अथवा उपवास करके शरीरको सुखाना ॥ २७ ॥ यह हम जैसे तपस्वियोंके लिये तो प्रशंसाकी बात है, इसलिये हे सञ्जय ! तू यहाँसे शीघ्र ही चलाजा, सञ्जयसे ऐसा कहकर राजाने मनको स्थिर किया (समाधि चढायी) ॥२८॥ और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ पूर्वको मुख करके बैठगये, सञ्जयने इस दशामें बैठे हुए देखकर उनकी प्रदक्षिणाकी ॥२९॥ फिर बुद्धिमान् संजयने उनसे कहा, कि-हे प्रभो ! आत्माका योग कहिये, तब बुद्धिमान् ऋषि व्यासजीके पुत्र उस राजाने संजयके कहनेके अनुसार किया ॥३०॥ अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर वह राजा धृतराष्ट्र तथा गान्धारी और महाभाग्यशालिनी तेरी माता कुन्ती भी ऐसे ही बैठगयीं ३१ तदनन्तर तेरे ताऊ धृतराष्ट्र तथा गान्धारी और कुन्ती

महाभागस्तस्माद्दावादमुच्यत ॥ ३२ ॥ गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः। स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ॥ ३३ ॥ प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम् । एवं स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ३४ गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते विशाम्पते । यदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ॥ ३५ ॥ तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत । ततस्तपोवने तस्मिन् समाजग्मुस्तपोधनाः ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा राज्ञस्तदा निष्ठां न त्वशोचन् गताश्च ते । तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत् पुरुषसत्तम ।३७। यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव । न शोचितव्यं राजेन्द्र स्वतः स पृथिवीपतिः ॥३८॥ प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते । वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा

जलकर दावाग्निके साथ मिलगए उस समय उनका मंत्री संजय उस दावाग्निसे बचगया ३२ उसको मैंने गङ्गाके तटपर तपस्वियोंके बीचमें बैठाहुआ देखा था,उन तपस्वियोंको बुलाकर उस तेजस्वीने यह बात कही थी ॥ ३३ ॥ फिर वह श्रीमान् संजय हिमालय पर्वत पर चलागया,इस प्रकार उस बड़े मनवाले कुरुराज धृतराष्ट्रका मरण होगया ३४ हे राजन् ! गान्धारी और तेरी माता कुन्ती ये दोनों भी इसी प्रकार ही मरगयीं, तहाँ घूमते२ अचानक उस राजाका कलेवर ॥ ३५ ॥ तथा हे भारत ! उन दोनों देवियोंके कलेवर भी देखे, फिर उस वनमें तपस्वी इकट्ठे हुए ॥ ३६ ॥ उन्होंने राजाकी श्रद्धाकी बात सुनकर उनकी गतिके विषयमें कुछ भी शोक नहीं किया. हे पुरुषसत्तम ! यह सब मैंने तहाँ ही सुना था ॥ ३७ ॥ हे पाण्डव ! वह राजा किसप्रकार जला, तथा वे दोनों देवियें किसप्रकार जलगयीं, उनके मरणका शोक करनेकी कुछ आवश्यकता

च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ३९ ॥ निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान् । अन्तःपुराणाञ्च तदा महानार्त्तस्वरोऽभवत् ॥ ४० ॥ पौराणाञ्च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम् । अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः ॥४१॥ ऊर्द्ध्वबाहुः स्मरन्मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः । भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ४२ ॥ अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः । प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम् ॥ ४३ ॥ तञ्च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम् । अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं

नहीं है,अपनी इच्छासे ही उस राजाने तथा गांधारी और तेरी जननीने अग्निमें अपने आपको होमदिया,वैशम्पायन कहते हैं, कि-धृतराष्ट्रकी परलोकयात्राकी इस बातको सुनकर सकल पांडव महात्माओंको बडा शोक हुआ और उनके अन्तःपुरमें उसी समय रोनेका कोलाहल मच गया ॥३८-४०॥ हे महाराज! राजाकी इस गतिको सुनकर पुरवासी रोनेलगे,राजा युधिष्ठिर बडे दुःखी होतेहुए डीख फोडकर रोनेलगे, कि-अहो! मुझे धिक्कार है ! ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर माताको याद करके ऊँचे हाथ कियेहुए रोनेलगे, भीमसेन आदि दूसरे सब भाइयोंने भी ऐसा ही किया४२ हे महाराज! कुन्तीकी भी ऐसी गति हुई है, यह सुनकर रणवासमें भी रोनेका बड़ा कोलाहल मचगया ॥४३॥ वह वृद्ध राजा, कि-जिसके पुत्र मारेगये थे,इसप्रकार जलगया और तपस्विनी गांधारीकी भी यही गति हुई, इस बातको सुनकर सब लोग शोक करनेलगे ॥ ४४ ॥ हे भारत! फिर एक दो घडीके बाद वह रोनेका शब्द शान्त होगया, तब

च तपस्विनीम् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्नुपरते शब्दे मुहूर्त्तादिव भारत। निगृह्य वाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि नारदागमनपर्वणि वनाग्निना धृतराष्ट्रादिदाहे सप्तत्रिंशोऽध्यायः३७

युधिष्ठिर उवाच। तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्त्ततः। अनाथस्येव च वने तिष्ठत्स्वस्मासु बन्धुषु॥१॥दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन् पुरुषाणां मतिर्मम। यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना ॥ २ ॥ यस्य पुत्रशतं श्रीमद्भ बह्वाहुशालिनः। नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना ॥ ३ ॥ यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः। तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम् ॥४॥ सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते। धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः ॥ ५ ॥ न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां

धर्मराजने आँखें पोंछकर धीरजके साथ यह बात कही ४५

सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि-ओः! उग्र तप करनेवाले उन महात्माओंकी हम सरीखे सगे सम्बन्धियोंके होतेहुए एक अनाथकीसी दशा हुई!॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं समझता हूँ, कि-पुरुषोंकी गतिको जानना बडा कठिन है, कि-जिसके कारणसे विचित्रवीर्यका पुत्र इसप्रकार वनकी अग्निसे जल गया ॥२॥ जिसके बाहुबलवाले और श्रीमान् सौ पुत्र थे और जो राजा स्वयं भी हजार हाथियोंकी समान बल रखता था वह दावाग्निसे जलगया!॥ ३॥ जिस राजाकी उत्तम स्त्रियें ताड़के पत्रोंसे पवन डुलाया करती थीं, उस दावाग्निसे जलेहुएकी पवन क्या आज गिद्ध करते हैं? ।४ वह सोजाते थे तब उनको सूत मागधोंके समूह जगाया करते थे वह राजा मेरे पापकर्मोंके कारणसे आज

यशस्विनीम् । पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम् ६
पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत् । उत्सृज्य सुमहद्दीप्तं वनवासमरोचयत् ॥ ७ ॥ धिग्राज्यमिदमस्माकं धिग्बलं धिक् पराक्रमम् । क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम् ॥८॥ सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम । यत् समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत् ६ युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च । अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन् ॥१०॥ वृथा संतर्पितो वह्निः खाण्डवे सव्यसाचिना । उपकारमजानन् स कृतघ्न इति मे मतिः ॥ ११ ॥ यत्रादहत् स भगवान्मातरं सव्य-

पृथिवी पर सोरहा है ! ॥ ५ ॥ ओः ! जिस विचारीके सौ पुत्र मारेगये, उस यशस्विनी गान्धारीका तो मैं शोक नहीं करता, क्योंकि—वह तो पतिव्रतका पालन करके अपने पतिलोकमें चलीगयी है ॥ ६ ॥ परन्तु मुझे अपनी माता कुन्तीका शोक होता है, कि-जिसने अपने पुत्रोंके ऋद्धिवाले और अति प्रकाशमान् ऐश्वर्यको छोडकर वनवास पर रुचि दिखायी ॥ ७ ॥ धिक्कार है इस हमारे राज्यको ! धिक्कार है हमारे बलको ! धिक्कार है हमारे पराक्रमको ! और धिक्कार है हमारे क्षत्रियधर्मको, कि-हम मरेहुए भी जीवित हैं ! ८ हे द्विजश्रेष्ठ! कालकी गति बडी सूक्ष्म है, कि उसने राज्यको बिलकुल त्यागकर वनवास पर रुचि की ॥६॥ इस युधिष्ठिर की, इस भीमकी और अर्जुनकी जननी अनाथकी समान क्यों जलगयी ? इसका विचार करने पर मुझे मूर्छा आती है ॥ १० ॥ अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको वृथा ही तृप्त किया था, मुझे तो मालूम होता है, कि—उपकारको न माननेवाला अग्नि तो कृतघ्न है ॥ ११ ॥ तभी तो उस

साचिनः । कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः १२
धिगग्निं धिक् च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसन्धताम् । इदं
कष्टतरं चान्यद्भगवन् प्रति भाति मे ॥ १३ ॥ वृथाऽग्निना
समायोगो यद्भूत् पृथिवीपतेः । तथा तपस्विनस्तस्य
राजर्षेः कौरवस्य ह ॥१४॥ कथमेवं विधो मृत्युः प्रशास्य
पृथिवीमिमाम्। तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने १५
तथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्राप्तः पिता मम । मन्ये
पृथा वेपमाना कृशा धमनिसन्तता ॥१६॥ हा तात धर्म-
राजेति समाक्रन्दन्महाभये । भीम पर्यप्नुहि भयादिति
चैवाभिवाशती ॥१७॥ समन्ततः परिक्षिप्ता माताभून्मे

भगवान् अग्निदेवने धनञ्जयकी ही माताको जलाडाला, कि–जिसने ब्राह्मणके वेषमें अर्जुनके पास आकर भीख माँगी थी ॥ १२ ॥ धिक्कार है ऐसे अग्निको ! और धिक्कार है धनञ्जयके जगत्प्रसिद्ध सत्यसन्धानपनेको (ताकेहुए निशानेको अवश्य बींधडालनेवाली शक्तिको) हे भगवन् ! यह तो मुझे बडा ही कष्टदायक मालूम होता है॥१३॥उस राजाका वृथा (लौकिक–जो कि-अग्निहोत्रका नहीं था ऐसे) अग्निके साथ समागम होगया,उस सरीखे कुरुवंशी तपस्वी राजर्षिका इस पृथिवी पर शासन करलेनेके अनन्तर ऐसा मरण हुआ ही क्यों?उस महावनमें उत्तम मंत्रोंसे पवित्र कियेहुए उनके अग्नि विद्यमान थे,तो भी ॥१४–१५ ॥ मेरे श्रद्धावान् पिताजीका लौकिक अग्निके साथ समागम ही क्यों हुआ ? मेरी समझमें जिसके शरीर पर नसें ही नसें दीखती थीं, जो दुर्बल होगयी थी, ऐसी मेरी जननी कुन्ती तो काँपउठी होगी ! ॥ १६ ॥ और उस महाभयके समय ओ बेटा ! धर्मराज पुकारनेलगी होगी,और हे भीम ! इस

दवाग्निना। सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु॥१८
न चैनां मोचयामास वीरो माद्रवतीसुतः। तच्छ्रुत्वा रुरुदुः
सर्वे समालिङ्ग्य परस्परम् ॥१९॥ पाण्डवाः पञ्च दुःखार्त्ता
भूतानीव युगक्षये। तेषान्तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदित-
स्वनः२०प्रसादाभोगसंरुद्धो अन्वरोत्सीत्सरोदसी॥२१॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि नारदागमन-पर्वणि युधिष्ठिरविलापे अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३८ ॥

नारद उवाच। नासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं
मया। वैचित्रवीर्यो नृपतिस्तत्ते वक्ष्यामि सुव्रत॥१॥ वनं
प्रविशतानेन वायुभक्षेण धीमता। अग्नयः कारयित्वेष्टि-
मुत्सृष्टा इति नः श्रुतम्॥२॥ याजकास्तु ततस्तस्य तान-

महाभयमेंसे मुझे बचा! इसप्रकार उसने बार २ पुकारा होगा॥१७॥दावाग्निने मेरी माताको चारों ओरसे घेरलिया होगा।सहदेव उसको अपने पेटके पुत्रोंसे भी अधिक प्यारा था ॥ १८ ॥ वह माद्रीका पुत्र भी उसको नहीं बचासका ! यह सुनकर सबजने आपसमें लिपटरकर रोनेलगे ॥१९॥ युगका क्षय होनेके समय जैसे प्राणी दुःखी होते हैं,तैसे ही पाँचों पाण्डव बड़े ही दुःखी हुए, पुरुषोंमें इन्द्रसमान उन सबोंके रोनेका शब्द महलोंके गुम्मज आदिको फोडकर सब पृथिवी और आकाशको भरनेलगा॥ २०-२१ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥   ॥

नारदजीने कहा, कि-इस विचित्रवीर्यके पुत्र राजा धृतराष्ट्रको लौकिक अग्निने नहीं जलाया,हे सुव्रत ! तहाँ मैंने जैसा सुना था वह सुनाता हूँ ॥ १ ॥ हमने सुना है, कि-वायुभक्षण करके रहनेवाले उस बुद्धिमान् राजाने जब वनमें प्रवेश किया, उस समय,अग्नियोंको प्रज्वलित

र्ग्नीन्निर्जने वने । समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम३
स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत् किल । तेन तद्वन-
मादीप्तमिति ते तापसाब्रुवन् ॥४॥ स राजा जाह्नवीतीरे
यथा ते कथितं मया । तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरत
र्षभ ॥ ५ ॥ एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ । ये ते
भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥६॥ एवं स्वेनाग्निना
राजा समायुक्तो महीपते । मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः
स परमां गतिम् ॥७॥ गुरुशुश्रूषया चैव जननी ते जना-
धिप । प्राप्ता सुमहतीं सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ॥८॥
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र तेषान्त्वमुदकक्रियाम् । भ्रातृभिः

कर इष्टि करनेके अनन्तरमें ज्योंका त्यों छोड़ दिया था २ फिर उसके याजक उन अग्नियोंको एक निर्जन वनमें छोड़ कर हे भरतसत्तम! अपनी इच्छानुसार कहीं चलेगये थे ३ कहते हैं, कि-उस वनमें वही अग्नि बहुत बढगया था और उसीसे वह वन जलउठा, ऐसा वे तपस्वी कहते थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर जैसा कि–मैंने कहा वह राजा आपही हे भरत-सत्तम! गङ्गाके किनारे पर अग्निके साथ एक होगया (जलगया) ॥५॥ हे अनघ! इसप्रकार उन मुनियोंने मुझसे यह बात कही थी, कि–जिन मुनियोंसे हे युधिष्ठिर! मैं भागीरथीके तटपर मिला था ॥६॥ हे महामते! इसप्रकार वह राजा अपने आप ही अग्निके साथ एक होगया, अब तू उस राजाको शोक न कर, क्योंकि–उसकी परमगति हुई है ॥७॥ हे राजन्! बड़ोंकी सेवासे तुम्हारी माताने भी बड़ीभारी सिद्धि पाई हैं, इसमें मुझे सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र! अब तुम्हें उनकी जलक्रिया (श्राद्ध-क्रिया) करना चाहिये अब तू सब भाइयोंको साथ लेकर श्राद्ध

सहितः सर्वैरेनद्त्र विधीयताम् ॥९॥ वैशम्पायन उवाच। ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरन्धरः। निर्ययौ सह सोदर्यैः सदारश्च नरर्षभः ॥१०॥ पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः। गङ्गां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥११॥ ततोऽवगाह्य सलिलं सर्वे ते नरपुङ्गवाः। युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ १२ ॥ गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः। शौचं निवर्त्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद्बहिः ॥१३॥ प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः गङ्गाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥ तत्रैव तेषां कृत्यानि गङ्गाद्वारेऽन्वशात्तदा। कर्त्तव्यानीति पुरु-

---

विधिका आरम्भ करदे ॥ ९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर पाण्डवोंके धुरन्धर मनुष्योंमें ऋषभसमान वह राजा अपने भाइयोंको तथा स्त्रियोंको साथ लेकर नगरके बाहर गये ॥ १० ॥ नगरनिवासी तथा देशवासी, जिनको राजभक्तिने प्रेरणा की, वे भी उनके आगेर गये, ये सब केवल एक ही वस्त्र ओढ़कर गङ्गाकी ओरको गये ॥ ११ ॥ तहाँ उन सब श्रेष्ठ पुरुषोंने गङ्गाके जलमें स्नान किया और युयुत्सुको आगे करके उन सबोंने धृतराष्ट्रको जलदान दिया ॥१२॥ तथा विधिपूर्वक हरएकके नाम और गोत्रका उच्चारण करके गान्धारीको और कुन्तीको भी जलदान दिया, इसप्रकार शौचको त्यागकर लौटने पर वे नगरके बाहर ही रहे ॥१३॥ फिर वह नरश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र जिस स्थानपर जले थे तहाँ गङ्गाद्वारमें राजाने विधिको जानने वाले तथा अपना प्रिय करनेवाले विश्वासपात्र मनुष्योंको भेजा॥१४॥ और गङ्गाद्वारमें उनकी जोरक्रिया करनी चाहिये

षान् दत्तदेयान् महीपतिः ॥ १५ ॥ द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः । ददौ श्राद्धानि विधिवत् दक्षिणावन्ति पाण्डवः ॥१६॥ धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः । सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः ॥१७॥ गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक् पृथक् । संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम् ॥ १८ ॥ यो यदिच्छति यावच्च तावत् स लभते नरः । शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम् ॥ १९ ॥ यानमाच्छादनं भोगान् दासीश्च समलंकृताः। ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः२० ततः स पृथिवीपालो दत्वा श्राद्धाननेकशः । प्रविवेश

उसके लिये उनको आज्ञा दी तथा उन पुरुषोंको राजा युधिष्ठिरने दानमें देनेकी वस्तुएँ भी दीं॥१५॥ उनके द्वारा बारहवें दिन शौचकर्मको पूरा करके पाण्डुपुत्र उस राजा युधिष्ठिरने विधिपूर्वक दक्षिणावाले श्राद्ध किये ॥१६॥ उस राजाने धृतराष्ट्रके उद्देश्यसे सोना, चाँदी, गौएँ, शय्याएँ, और बहुतसा धन दानमें दिया॥१७॥उस तेजस्वी राजाने गान्धारी तथा कुन्तीका अलग२ नाम लेकर परमउत्तम दान दिया ॥ १८ ॥ जिसने जितना चाहा उस ब्राह्मणने उतना ही शय्या, भोजन, यान, मणि रत्नआदि धन पाया १९ उस राजाने अपनी दोनों माताओंके लिये पालकी रथ आदि सवारियें, वस्त्र, भाँति २की वस्तुएँ और आभूषणोंसे सजी हुईं दासियें दानमें दीं ॥ २० ॥ अनेकों प्रकारके श्राद्ध करनेके अनन्तर उस राजाने हस्तिनापुर नामक नगरमें

पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम् ॥ २१ ॥ ते चापि राजवचनात् पुरुषा ये गताभवन् । संकल्प्य तेषां कल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः ॥२२॥ माल्यैर्गन्धैश्च विविधैरर्चयित्वा यथाविधि। कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः २३ समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्। नारदोऽप्यगमद्राजन् परमर्षिर्यथेप्सितम् ॥२४॥ एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः । वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पंच च ॥ २५ ॥ हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा । ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च ॥ २६ ॥

प्रवेश किया ॥ २१ ॥ राजाके भेजेहुए जो पुरुष गङ्गाद्वारको गये थे वे धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीकी हड्डियोंको इकट्ठीकर गङ्गामें डालकर फिर तहाँसे लौट आये२२अनेकों प्रकारकी मालाओंसे और सुगन्धियोंसे विधिपूर्वक उन हड्डियोंकी पूजा करके और उनके साथ हड्डियोंको इकट्ठी करके गङ्गामें पधरा दिया, यह बात उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे कही ॥ २३ ॥ फिर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन देकर परमऋषि नारदजी हे राजन्! अपनी इच्छानुसार विचरनेको चलेगये ॥ २४ ॥ इसप्रकार जिसके पुत्र मारेगये थे ऐसे बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको, जाति वालोंके, सम्बन्धियोंके, मित्रोंके, भाइयोंके और स्वजनोंके निमित्त सदा दान देते २ नगरमें दश और पाँच पन्द्रह तथा वनवासमें तीन वर्ष बीते थे ॥ २५-२६ ॥ इसप्रकार

युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा। धारयामास तद्राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासक्यां संहितायां
आश्रमवासिकपर्वणि नारदागमनपर्वणि श्राद्ध-
दाने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

समाप्तं.

नारदागमन पर्व

आश्रमवासिकं च पर्व

जिनके जाति बान्धव मारेगये थे ऐसे राजा युधिष्ठिर राज काज तो चलाते रहे, परन्तु उस समय उनका चित्त अधिक प्रसन्न नहीं रहता था॥२७॥उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त

श्रीमहाभारतका आश्रमवासिकपर्व, मुरादाबादनिवासी भारद्वाज-
गोत्र–गौड़वंश्य–पण्डित भोलानाथात्मज–ऋषिकुमार
रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित
हिन्दी–भाषानुवादसहित
समाप्त.

–०–

मिलनेका पता—
सनातनधर्म प्रेस,
मुरादाबाद.

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

❋ मौसल-पर्व ❋

भाषा-टीका-सहित ।




॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

मौसल-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन उवाच । षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः ।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ ववुर्वाताश्च
निर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः । अपसव्यानि शकुना मण्डलानि
प्रचक्रिरे ॥ २ ॥ प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः । उल्का-
श्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रापतन् गगनाद्भुवि ॥ ३ ॥ आदित्यो रजसा
राजन् समवच्छन्नमण्डलः । विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः सम-
दृश्यत ॥ ४ ॥ परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाश्चन्द्रसूर्ययोः । त्रिवर्णाः

श्रीनारायण, नरोंमें उत्तम नर तथा सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय (महाभारत) का कथन करे ॥*॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-जब छत्तीसवाँ वर्ष आलगा, उस समय कौरवनन्दन युधिष्ठिरने कुशकुन होतेहुए देखे ॥१॥ रूखे, कठोर और कंकरियें बरसाने वाले पवन चलने लगे, पक्षी बाईं ओरसे दाईं ओरको मण्डलोंमें उडनेलगे ॥ २ ॥ बडी२ नदियें उलटी बहनेलगीं, दिशायें कुहरेसे घिरगयीं, आकाशमेंसे भूमिमें अङ्गारे बरसातेहुए तारे टूट २ कर गिरनेलगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! सूर्यमण्डल धूलिसे पूरा२ ढकगया, और उदयके समय सूर्य किरणोंसे हीन तथा नित्य कबंधों (शिरों हीन शरीरों) के सहित दीखता था ॥४॥ चन्द्रमा और सूर्यके चारों ओर दारुण परिवेष (घेरे) दीखनेलगे, उनमें तीन रङ्ग होते थे,

श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः ॥ ५ ॥ एते चान्ये च बहवः उत्पाता भयशंसिनः । दृश्यन्ते बहवो राजन् हृदयोद्वेगकारकाः ६ कस्यचित्त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः । शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम् ॥ ७ ॥ विमुक्तं वासुदेवञ्च श्रुत्वा रामञ्च पाण्डवः । समानीयाब्रवीद् भ्रातॄन् किं करिष्याम इत्युत ॥ ८ ॥ परस्परं समासाद्य ब्रह्मदण्डबलात् कृतान् । वृष्णीन् विनष्टांस्ते श्रुत्वा व्यथिताः पाण्डवाभवन् ॥ ९ ॥ निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम् । वीरा न श्रद्दधुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः १० मौसलं ते समाश्रित्य दुःखशोकसमन्विताः । विषण्णा हतसङ्कल्पाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ११ ॥ जनमेजय उवाच । कथं विनष्टा

उनके अन्तिमभाग काले और रूखे होते थे तथा उनकी प्रभा राखके रङ्गकी और लाल २ होती थीं ॥५॥ हे राजन् ! ये तथा और भी बहुतसे भय दिखानेवाले उत्पात होनेलगे, जिनको देखकर हृदय व्याकुल होता था ॥६॥ इसके कुछ ही दिन बाद कुरुराज युधिष्ठिरने सुना, कि-मूसलके कारणसे वृष्णिमण्डलका नाश होगया ॥७॥ युधिष्ठिरने सुना कि-इस संहारमेंसे केवल बलराम और श्रीकृष्ण ही बचे हैं, तब उन्होंने अपने भाइयोंको बुलाकर बूझा, कि-अब क्या करना चाहिये ? ॥८॥ सब पांडव आपसमें मिले और ब्राह्मणके शापके प्रभावसे वृष्णियोंका नाश होगया, इस समाचारको सुनकर बड़े ही दुःखी हुए ॥ ९ ॥ जैसे समुद्रके सूखजानेकी बात पर विश्वास नहीं होसकता तैसे ही श्रीकृष्णकी मृत्युकी बात पर उस शार्ङ्गधनुषधारीके विनाशकी बात पर उन वीरोंको विश्वास नहीं हुआ ॥ १० ॥ मूसलके विषयकी बातको सुनकर पाण्डव दुःख और शोकमें मग्न होगये, खिन्न होगये, उनके संकल्प मरगये और वे उदास होकर बैठगये ॥ ११ ॥ जनमेजयने बूझा, कि-हे भगवन् ! श्रीकृष्ण देखते रहे और

भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह । पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव
महारथाः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच । षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे
वृष्णीनामनयो महान्। अन्योऽन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः काल-
चोदिताः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच । केनानुशप्तास्ते वीराः क्षयं
वृष्ण्यन्धका गताः । भोजाश्च द्विजवर्य त्वं विस्तरेण वदस्व मे १४
वैशम्पायन उवाच।विश्वामित्रञ्च कण्वं च नारदञ्च तपोधनम्।सारण-
प्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकां गतान्१५ते तान् साम्बं पुरस्कृत्य भूष-
यित्वा स्त्रियं यथा । अब्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः१६इयं स्त्री
पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः । ऋषयः साधु जानीत किमियं जन-
यिष्यति ॥ १७ ॥ इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भप्रधर्षिताः ।

महारथी अन्धक,वृष्णि तथा भोज नष्ट होगये,यह कैसा हुआ?१२
वैशम्पायनजीने उत्तर दिया, कि-पाण्डव कौरवोंके युद्धके बाद
छत्तीसवाँ वर्ष आते ही वृष्णियोंके हाथसे बड़े अन्यायकी बात
होगयी इसलिये कालके प्रेरणा कियेहुए वे मूसलसे एक दूसरेको
मारनेलगे ॥१३॥ जनमेजयने बूझा,कि-उन वीर पुरुषोंको किसने
शाप दिया था ? कि-जिसके कारणसे वृष्णि, अन्धक और
भोजोंका क्षय होगया? हे द्विजवर ! यह बात आप मुझे विस्तारसे
सुनाइये ॥१४॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-सारण आदि वीरोंने
देखा, कि-विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारदजी द्वारकामें
आये हैं ॥ १५ ॥ तब दैवके मारेहुए उन्होंने साम्ब नामक एक
यादवको स्त्रीके वेषमें सजाकर अपने आगे करलिया और उन
तपस्वियोंके पास जाकर कहनेलगे, कि-॥१६॥ यह पुत्र चाहने
वाले महातेजस्वी बभ्रुकी स्त्री है, हे ऋषियो ! इसके क्या सन्तान
होगी, इस बातको तुम अच्छे प्रकार जानते होगे, (इसलिये हमें
बतादो) ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस समय ऐसा कहने पर उनकी
छलकी बातसे क्रुद्ध हुए मुनियोंने उनसे जो कुछ कहा, उसको

प्रत्यब्रुवंस्तान्मुनयो यत्तच्छृणु नराधिप ॥१८॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम् । वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति ॥१९॥ येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः । उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ ॥ २० ॥ समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः । जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्स्यति२१ इत्यब्रुवंस्ततो राजन् प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः । मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम्२२तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः अथाब्रवीत्तदा वृष्णीन् श्रुत्वैवं मधुसूदनः ॥ २३ ॥ अन्तज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान् । एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुरं तदा२४कृतान्तमन्यथा नैच्छत् कर्तुं स जगतः प्रभुः । श्वोभूतेऽथ

सुनिये ॥१८॥ (मुनियोंने कहा, कि—) यह श्रीकृष्णका दायाद (कुलको चलानेवाला—वारिस) साम्ब वृष्णि और अन्धकोंके नाशके लिये लोहेके एक घोर मूसलको उत्पन्न करेगा ॥ १९ ॥ कि—जिसके कारणसे अति दुष्ट वर्त्ताववाले, क्रूर और अभिमानी तुम बलराम और कृष्णको छोड़कर सम्पूर्ण कुलका नाश कर डालोगे ॥ २० ॥ श्रीमान् बलरामजी अपने शरीरको त्यागकर समुद्रमें प्रवेश करजायँगे और भूमि पर सोतेहुए महात्मा कृष्णको जरा (नामका व्याध बाणसे) बींध डालेगा ॥२१॥ हे राजन् ! उन दुष्टात्माओंने जिनको धोखा दिया था, इसकारण क्रोधसे जिनकी आँखें लाल२ होरही थीं ऐसे उन मुनियोंने आपसमें एक दूसरेको देखकर यह बात कही ॥ २२ ॥ ऐसा कहकर वे मुनि श्रीकृष्णके पास गये,तब इस वृत्तान्तको सुनकर यदुवंशके अंतको जाननेवाले बुद्धिमान् कृष्णने उन मुनियोंसे कहा, कि—इन वृष्णियोंका भवितव्य ही ऐसा था और ऐसा कहकर हृषीकेश नगरमें चलेगये ॥ २३—२४ ॥ जगत्के प्रभु इन कृष्णने स्वयं ही जिस अन्तको रचदिया था उसको वह पलटना नहीं चाहते थे,तदनन्तर

ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै ॥२५॥ येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात्कृताः । वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत् २६ असूत शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन् । विषण्णरूपस्तद्राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् ॥ २७ ॥ तच्चूर्णं सागरे चापि प्राक्षिपन् पुरुषा नृप । अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य ते ॥ २८ ॥ जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः।अद्य प्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह ॥ २९ ॥ सुरासवो न कर्त्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः । यश्च नो विदितं कुर्यात् पेयं कश्चिन्नरः क्वचित् ॥ ३० ॥ जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः । ततो राजभयात् सर्वे नियमञ्चक्रिरे तदा । नराः शासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ३१

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि मुसलोत्पत्तौ प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरे दिन साम्बने मूसलको उत्पन्न किया ॥२५॥ कि–जिसने वृष्णि और अन्धककुलके पुरुषोंको भस्म करडाला, वृष्णि और अन्धकोंके विनाशके लिये ही मृत्युके किंकर(दूत)की समान महान्, घोर, शापके कारण उत्पन्न होनेवाला मूसल जन्मा था, यह बात श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनसे निवेदन की, तब खिन्न हुए राजा उग्रसेनने उस मूसलका सूक्ष्म चूरा करादिया (रितवा कर बारीक करादिया)२५॥२७और हे राजन् ! उस चूरेको पुरुषोंने समुद्रमें फेंकदिया तथा उन्होंने उग्रसेन, श्रीकृष्ण, बलराम और महात्मा बभ्रुके कहनेसे नगरमें ढिंढोरा पीटदिया, कि–आजसे वृष्णि और अन्धकोंके सब कुलोंमें कोई भी नगरनिवासी सुरा वा आसुव न बनावे और यदि कोई मनुष्य कदाचित् हमसे छुपा कर पीनेकी सुरा बनावेगा तो उसको उसके बान्धवोंसहित जीता हुआ ही सूली पर चढा दिया जायगा, तदनन्तर अमेय पराक्रमी बलरामकी इस आज्ञाको जानकर राजभयसे सब मनुष्योंने इस नियमका पालन किया (अर्थात् उस दिनसे सुरा वा आसव बनाना बन्द करदिया) ॥२८–३१॥ पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

वैशम्पायन उवाच । एवं प्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैः सह । कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः ॥१॥ करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः। गृहाण्यवेक्ष्य वृष्णीनां नादृश्यत कचित् कचित् ॥ २ ॥ तमघ्नन्तं महेष्वासाः शरैः शतसहस्रशः । न चाशक्यत वेद्धुं स सर्वभूतात्ययस्तदा ॥ ३ ॥ उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिने दिने । वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो लोमहर्षणाः ४ विमृद्धमूषिका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा । केशा नखाश्च सुप्तानामद्यन्ते मूषिकैर्निशि ॥ ५ ॥ चीची कूचीति वाशन्ति सारिका वृष्णिवेश्मसु । नोपशाम्यति शब्दः स सदिवारात्रमेव हि ॥ ६ ॥ अन्वकुर्वन्नुलूकानां सारसा विरुतं तथा । अजाः शिवानां विरुतमन्वकुर्वत भारत॥७॥पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहङ्गाः कालचोदिताः।

वैशम्पायन कहते हैं, कि—जब अन्धक और वृष्णि (कालको हटानेका) इस प्रकार उद्योग कररहे थे, उस समय काल हर समय उन सबोंके घरोंके आस पास फिरता था ॥१॥ वह भयानक, विकट, मुण्डित, काला पीला पुरुष वृष्णियोंके कुटुम्बोंको देखता हुआ कभी दीखता था और कभी नहीं दीखता था ॥ २ ॥ उन बड़े २ धनुषधारियोंने सैंकड़ों और हजारों बाणोंसे उसको मारा, परन्तु सब भूतोंका अन्त करने वाले उसको बींध नहीं सके ॥ ३ ॥ प्रति दिन भयानक रूपसे बड़ी २ आँधियें चलनेलगीं, वृष्णि और अन्धकोंके विनाशके लिये रोमांच खड़े करनेवाले ऐसे बहुतसे बनाव बनते थे ॥ ४ ॥ मोहल्लोंमें चूहे बढ़गये, घड़े आदि मट्टीके पात्र आपसे आप फूटनेलगे और रातमें सोयेहुए मनुष्योंके केश और नखोंको चूहे काटने लगे ॥ ५ ॥ वृष्णियोंके घरोंमें फडफडाती हुई सारिकायें (मैनायें) ची ची कूची करने लगीं और रात या दिनमें उनका यह शब्द शान्त ही नहीं होता था ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सारस उल्लुओंकेसा शब्द करने

दिताः । वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ॥८॥ व्यजायन्त खरा गोषु करभाश्वतरीषु च । शुनीष्वपि विडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ॥ ६ ॥ नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा । प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितॄन् देवांस्तथैव च ॥ १० ॥ गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ । पत्न्यः पतीन्व्युच्चरन्तः पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्त्तते ; नीललोहितमञ्जिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् १२ उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः । व्यदृश्यतासकृत् पुंभिः कबन्धैः परिवारितः ॥ १३ ॥ महानसेषु सिद्धेषु संस्कृतेऽतीव भारत । आहार्यमाणे कृमयो व्यदृश्यन्त सहस्रशः ॥ १४ ॥ पुण्याहे वाच्यमाने तु जगत्सु च महा-

---

लगे, बकरियें गीदड़ियोंकी समान शब्द करने लगीं ॥ ७ ॥ कालके प्रेरणा कियेहुए स्वेत वर्णके पक्षी लाल चरणों वाले होगये, उस समय वृष्णि और अन्धकोंके घरोंमें कबूतर विचरनेलगे ८ गौओंके पेटसे गधे, खच्चरियोंके पेटसे हाथी, कुतियोंके पेटसे बिलाव और न्यौलियोंके पेटसे चूहे पैदा होनेलगे ॥ ६ ॥ उस समय वृष्णियोंको पापकर्म करतेमें लज्जा नहीं रही किन्तु उलटे ब्राह्मणोंसे, पितरोंसे और देवताओंसे द्वेष करनेलगे ॥ १० ॥ अपने गुरुजनों (बड़ों) का भी अपमान करनेलगे, केवल बलराम और श्रीकृष्णका ही अपमान नहीं करते थे, स्त्रियें पतियोंको धोखा देनेलगीं और पति स्त्रियोंसे छल करनेलगे ॥ ११ ॥ जलाया हुआ अग्नि उलटी ही रीतिसे जलने लगा, उसमेंसे भूरी लाल और मजीठिया रङ्गकी लपटें अलग २ बाहरको निकलने लगीं १२ उस पुरीमें उदय और अस्तके समय सूर्य नित्य माथे रहित धड़ों वाले पुरुषोंसे घिराहुआ बार२ दीखनेलगा ॥ १३ ॥ हे भारत ! शुद्ध की हुई अच्छी २ पाकशालाओंमें अत्यन्त स्वच्छ किये हुए भोजनके पदार्थों पर हजारों कीड़े दीखने लगे ॥ १४ ॥ जब

त्मसु । अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन ॥ १५ ॥ परस्परञ्च नक्षत्रं हन्यमानं पुनः पुनः । ग्रहैरपश्यन् सर्वे ते नात्मनस्तु कथञ्चन ॥ १६ ॥ नदन्तं पांचजन्यञ्च वृष्ण्यन्धकनिवेशने । समन्तात् पर्यवाशन्त रासभा दारुणस्वराः ॥ १७ ॥ एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम् । त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥ चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः । प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ १९ ॥ विमृशन्नेव कालन्तं परिचिन्त्य जनार्दनः । मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः २० पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारी हतबांधवा । यदनुव्याजहारार्त्ता तदिदं समुपागमत् ॥ २१ ॥ इदञ्च तदनुप्राप्तमब्रवीद्युधि-

पुण्याहवाचनका उच्चारण कियाजाता था और महात्मा पुरुष जप करते थे उस समय ऐसा मालूम होता था, कि-मानो सामने कोई दौडरहे हैं, परन्तु दीखता कोई नहीं था ॥ १५ ॥ वे सब ग्रहोंको बार२आपसमें नक्षत्रों पर चोट करते हुए देखते थे,परन्तु अपने ग्रह नक्षत्रोंको किसीप्रकार नहीं देख पातेथे ॥ १६ ॥ वृष्णियोंके और अन्धकोंके घरोंमें जब पाञ्चजन्य शङ्ख बजता था, उस समय चारों ओरसे दारुण शब्दवाले गधे रैंका करते थे ॥ १७ ॥ इस प्रकार कालकी उलटी गति आयीहुई देखकर और त्रयोदशीके दिन अमावस्या आपड़ने पर श्रीकृष्णने उन वृष्णियोंसे मिलकर यह बात कही, कि-"इस राहुने चतुर्दशीके दिन फिर पूर्णिमा करडाली है,भारतके युद्धके समय भी ऐसा हुआ था और आज हमारा नाश करने लियेके वही दशा फिर हुई है ॥१९॥ केशीका नाश करने वाले श्रीकृष्णने ऐसा विचार करते हुए उस समय सब प्रकारसे विचार करके माना, कि-यह छत्तीसवाँ वर्ष आलगा है ॥ २० ॥ अति दुःख पायी हुई और जिसके बान्धव मारेगये थे उस गान्धारीने दुःखमें जो कुछ कहा था वह वर्ष आलगा है२१

ष्ठिरः । पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान् सुदारुणान् ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षुः सत्यमेव तत् । आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिन्दमः ॥ २३ ॥ अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात् । तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि उत्पातदर्शने द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

वैशम्पायन उवाच । कालीस्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि । स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति ॥ १ ॥ अग्निहोत्रनिकेतेषु वास्तुमध्येषु वेश्मसु । वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः॥२॥ अलङ्काराश्च छत्रञ्च ध्वजाश्च कवचानि च। ह्रियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः॥३॥ तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभम-

---

पहले जब सेनाकी टुकडियों (कंपनियों) का चुनाव हुआ था तब अति भयानक उत्पातोंको देखकर युधिष्ठिरने जो बात कही थी आज वही सब होता दीखरहा है ॥ २२ ॥ गान्धारीकी बातको सत्य करना चाहने वाले शत्रुनाशक श्रीकृष्णने ऐसा कहकर उसी समय सबोंको तीर्थयात्राके लिये जानेकी आज्ञादी॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी आज्ञासे नगरमें राजपुरुषोंने ढिंढोरा पिटवादिया, कि-तुम सब श्रेष्ठ पुरुष समुद्रके तटपर प्रभास तीर्थकी यात्राके लिये जाओ ॥ २४ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-वृष्णियोंकी स्त्रियोंको स्वप्नमें दीखता था, कि-कोई एक काली भुच स्त्री जिसके दाँत सफेद हैं हँसती हुई घरमें घुस आई है और (स्त्रियोंके मंगलसूत्र आदिकी) चोरी करके द्वारकाके चारों ओर दौडी फिरती है ॥१ ॥ पुरुष स्वप्नमें देखते थे, कि-भयानक गिद्ध अग्निहोत्रके स्थानोंमें वास्तुके मध्य में और घरोंमें आकर वृष्णियोंको और अन्धकोंको खारहे हैं २ और अतिभयानक राक्षस उनके गहने,छत्र,ध्वजा और कवचोंको उठाकर लियेजाते हैं ॥ ३ ॥ और वृष्णियोंके देखते हुए ही

योमयम् । दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा॥४॥युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं हया हरन् पश्यतो दारुकस्य । ते सागरस्योपरिष्टादवर्त्तन् मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः॥५॥तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम् । उच्चैर्जह्रुरप्सरसो दिवानिशं वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ६ ॥ ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः । सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन्नरर्षभाः॥७ ततो भक्ष्यं च भोज्यञ्च पेयं चान्धकवृष्णयः । बहु नानाविधञ्चक्रुर्मद्यंमांसमनेकशः ॥ ८ ॥ ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद्बहिः । यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ९ ॥ ततः प्रभासे न्यवसन् यथोद्दिष्टं यथागृहम् । प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवा-

लोहेका बना अग्निका दिया हुआ श्रीकृष्णका चक्र, जिसकी नाभि वज्रकी समान कठोर थी वह आकाशमें चलागया ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान तेजस्वी जुड़े खडेहुए दिव्य रथको दारुक सारथीके देखते हुए, मनकी समान वेगवाले घोडोंमें मुख्य (शैब्य, सुग्रीव मेघपुष्प और बलाहक नाम वाले) चार घोड़े लेकर समुद्रके ऊपरको ही दौड़े चले गये ॥ ५ ॥ बलराम और कृष्णके पूजा कियेहुए ताल और सुपर्ण नामके उत्तम दोनों महाध्वजोंको लेकर अप्सरायें ऊपरको उडगयीं और रातदिन चिल्ला२ कर कहने लगीं कि-तीर्थयात्राको जाओ ॥ ६ ॥ तब वृष्णि और अन्धक वंशके महारथियोंको जानेकी इच्छा हुई, फिर उन उत्तम पुरुषोंने अपनी स्त्रियों सहित तीर्थयात्रा करनेका विचार किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर अन्धक और वृष्णियोंने भोज्य, भक्ष्य, पेय और भाँति २ के मद्य तथा मांस बनाये ॥ ८ ॥ फिर (पहले) सेनाके लोग बाहर निकले, फिर वाहन घोड़े और हाथियों सहित तीक्ष्ण तेजवाले श्रीमान् निकले ॥९॥ तदनन्तर जैसा कि-बतायागया था, प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अनुकूल घरोंमें बहुतसे खान पानका

स्तदा ॥ १० ॥ निविष्टांस्तान्निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित् । जगामामन्त्र्य तान् वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ ११ ॥ तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृतांजलिः। जानन् विनाशं वृष्णीनां नैच्छद्वारयितुं हरिः ॥ १२ ॥ ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः । अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसावृत्य रोदसी ॥ १३ ॥ ब्राह्मणार्थेषु यत् सिद्धमन्नं तेषां महात्मनाम् । तद्वानरेभ्यः प्रददुः सुरा गन्धसमन्वितम् ॥ १४ ॥ ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्त्तकसंकुलम् । प्रावर्त्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् ॥ १५ ॥ कृष्णस्य सन्निधौ रामः सहितः कृतवर्मणा । अपिबद्युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥१६॥ ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः । अब्रवीत् कृतवर्माणम-

---

संग्रह करनेवाले यादवोंने अपनी२ स्त्रियोंके साथ निवास किया ॥१० ॥ ये सब समुद्रके समीपमें ठहरे हुए हैं ऐसा सुनकर, योगके ज्ञाता अर्थको समझनेमें कुशल उद्धवजी उन वीरोंसे आकर मिले और फिर उससे आज्ञा लेकर तहाँसे चले गये ॥ ११ ॥ तहाँसे चलेजानेको उद्यत हुए उन महात्माको हाथ जोड़कर श्रीकृष्णने प्रणाम किया और वह जानते थे, कि-वृष्णियोंका नाश होनेवाला है इसलिये उनको जानेसे रोकना नहीं चाहा ॥ १२ ॥ फिर कालके घेरे हुए वृष्णि और अन्धक महारथियोंने, पृथिवी और आकाशको अपने तेजसे घेरकर जातेहुए उद्धवजीको देखा ॥ १३ ॥ फिर जो अन्न ब्राह्मणोंके लिये पका कर तयार किया गया था, उसमें उन महात्माओंने सुरा और सुगन्धियें मिलकर वानरोंको देदिया ॥ १४ ॥ और तदनन्तर प्रभासक्षेत्रमें उन तीक्ष्ण तेजवालोंके महान् मद्यपानके कामका आरम्भ होगया, कि-जिसमें सैंकड़ों तुरहियें बजरही थीं और नट तथा नर्त्तक घोलमेल होरहे थे ॥ १५ ॥ कृष्णके समीपमें ही कृतवर्माके साथ बलराम,युयुधान,गद तथा बभ्रु मद्यपीनेलगे१६फिर

सहस्यात्रमन्य च ॥ १७ ॥ कः क्षत्रियो मन्यमानः सुप्तान् हन्यो-
न्मृतानिव । तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत्त्वया कृतम् ॥१८॥
इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः । प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो
हार्दिक्यमवमन्य च ॥ १९ ॥ ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्र-
वीत् । निर्दिशन्निव साव्ज्ञं तथा सव्येन पाणिना ॥ २० ॥
भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया । वधेन सुनृशंसेन कथं
वीरेण पातितः॥२१॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
तिर्यक् सरोषया दृष्ट्या वीक्षाचक्रे स मन्युमान् ॥ २२ ॥ मणिः
स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् । तां कथां श्रावयामास
सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्कमगमद्रुदती

इस टोलीके मध्यमें मदके आवेशमें भराहुआ युयुधान जोरसे हँसता और अपमान करता हुआ कृतवर्मासे कहने लगा, कि-१७ अरे! सोते हुए अर्थात् मरे हुएसे घायलोंको मारडालनेवाला तू क्षत्रिय कौन है? अरे हृदीकीके पुत्र! (यादरख,कि—) तूने जो काम किया है इसको यादव नहीं सहसकेंगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार युयुधानने कहा, तब रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने उसका अनुमोदन किया और कृतवर्माका अपमान किया ॥ १९ ॥ तब महाक्रोधमें भरे कृतवर्माने मानो दाहिने हाथसे तिरस्कार करता हो इस प्रकार चेष्टा करके उससे कहा,कि—॥ २० ॥ (बैठजा, बैठजा) युद्धमें जो अन्नजलको त्याग देनेवाले और जिसका हाथ कटगया था ऐसे भूरिश्रवाका तूने वीर कहलाकर क्रूरताके साथ वध कैसे कर डाला? ॥ २१ ॥ उसकी इस बातको सुनकर वैरियोंके वीरोंका विनाश करनेवाले क्रोधमें भरेहुए श्रीकृष्णने कृतवर्माकी ओरको क्रोधभरी तिरछी दृष्टिसे देखा ॥ २२ ॥ और स्यमन्तक मणि लेकर वह सत्राजित बनगया था वह कथा सात्यकीने श्रीकृष्णको सुनाई ॥ २३ ॥ उसको सुनकर बड़े क्रोधमें भरीहुई

तदा । सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥ २४ ॥ तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् । पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ २५ ॥ एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे । सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना ॥ २६ ॥ द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा । समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥२७॥ इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः । अभिद्रुत्य शिरः क्रोधाच्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥२८॥ तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः । अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा २९ एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्ययचोदिताः । भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥३०॥ तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धान् जना-

सत्यभामा श्रीकृष्णको क्रोध दिलाती हुई रोता २ आकर श्रीकृष्णकी गोदी में बैठ गयी ॥ २४ ॥ उसी समय क्रोधमें भरे हुए सात्यकीने खड़े होकर यह बात कही, कि–द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी और धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीकी गति मैं इसको दूँगा (अर्थात् मारडालूँगा) यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ और मैं शाप देता हूँ कि–इस दुष्टात्मा पापी कृतवर्माने अश्वत्थामाकी सहायतासे उन सोते हुओंको निद्राकी दशामें ही मारडाला था, हे सुमध्यमे! आज तू इसकी आयु और यश दोनोंको समाप्त हुई जान॥२५–२७॥ ऐसा कहकर कृष्णके समीपमें ही क्रोधके साथ आगे बढ़कर उसने तलवारसे कृतवर्मा का शिर काटडाला ॥ २८ ॥ और दूसरोंको भी चारों ओरसे मारते हुए युयुधानको रोकनेके लिये उस समय श्रीकृष्ण आगेको बढे २९परन्तु हे महाराज ! कालके उलट फेरके प्रेरणा किये हुए भोज और अन्धक सब एकाकार होगए और सात्यकी को घेरलिया ॥३०॥ वे क्रोधमें भरकर एक साथ उसके ऊपर टूटपड़े यह देखकर तथा कालके उलट फेरको जानकर महातेजस्वी

हनः। न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ३१ ॥ ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताः कालधर्मणा। युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३२ ॥ हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः। तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम् ॥ ३३ ॥ स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह। व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ ॥ ३४ ॥ बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः। हतं दृष्ट्वा तु शैनेयं पुत्रञ्च यदुनन्दनः ॥ ३५ ॥ एरकानान्तदा मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः। तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम् ॥ ३६ ॥ जघान कृष्णस्तांस्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन्। ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा ॥ ३७ ॥ जघ्नुरन्योऽ-

श्रीकृष्णने उनके ऊपर क्रोध नहीं किया॥३१॥मद्यपानके मदमें भरेहुए और कालके बलात्कारसे प्रेरणा कियेहुए उन्होंने अपने उच्छिष्ट(जूठे)पात्रोंसे युयुधानको मारना आरम्भ कर दिया॥३२॥ जब सात्यकीको इसप्रकार मारना आरम्भ करदिया, तब रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नको क्रोध आगया और वह सात्यकीको बचानेकी इच्छासे उनके बीचमें पडगया ॥ ३३ ॥ वह भोजोंके साथ और सात्यकी अन्धकोंके साथ लडने लगा, उन दोनों वीरोंके हाथोंमें बल था और उत्साह था, इसलिये वे खूब लड़े ॥ ३४ ॥ परन्तु वैरी बहुतसे थे, इसलिये श्रीकृष्णकी दृष्टिके सामने ही वे दोनों मारे गये, श्रीकृष्णने अपनी आँखोंसे देखा, कि—सात्यकी भी मारा गया और मेरा पुत्र भी मारागया ॥ ३५ ॥ तब तो श्रीकृष्णको क्रोध आगया और उन्होंने तहाँ उगी हुई पतेलको एक मुट्ठीमें भरलिया, उस समय वह पतेल वज्रकी समान कठोर और भयानक मूसलरूप बनगयी ॥ ३६ ॥ उससे, जो २ उनके सामने आया, उसको ही श्रीकृष्णने मारडाला, फिर अन्धक, भोज, शैनेय और वृष्णि ॥३७॥ कालके प्रेरणा कियेहुए, उस कोलाहलमें पतेलसे

न्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः । यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप ॥ ३८ ॥ वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो । तृणञ्च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ३९ ब्रह्मदण्डकृतं सर्वमिति तद्विद्धि पार्थिव।अविध्यान् विध्यते राजन् प्रक्षिपन्ति स्म यत्तृणम्४० तद्वज्रभूतं मुसलं व्यदृश्यत् तदा दृढम् । अवधीत् पितरं पुत्रः पिता पुत्रञ्च भारत ॥ ४१ ॥ मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम् । पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः ॥ ४२ ॥ नासीत् पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित् । तत्रापश्यन्महाबाहुर्जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ४३ ॥ मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः । साम्बञ्च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णञ्च माधवः ॥ ४४ ॥ प्रद्युम्नञ्चा-

आपसमें एक दूसरेको मारनेलगे, हे राजन् ! उनमेंका जो कोई कोपवश उस पतेल घासको पकडता था ॥ ३८ ॥ उसको ही हे राजन् ! हे विभो ! वह घास वज्रसी बनीहुई मालूम होती थी, उसका हरएक तृण मूसलरूप बनाहुआ ही मालूम होता था ३९ हे राजन् ! यह सब ब्राह्मणोंके शापसे होरहा था ऐसा जानो, हे राजन् ! जो तृण भी फेंकाजाता था वही अविध्यको भी बींध डालता था ॥ ४० ॥ उस समय वह मूसल वज्रकी समान और बडा दृढ़ हुआ मालूम होता था, हे भरतवंशी ! उस पतेलको लेकर पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध कररहा था ॥४१॥ मद्य पीकर मतवाले हुए वे आपसमें लडर कर गिररहे थे,जैसे अग्निमें पतंगे गिरते हैं तैसे ही वे कुकुर और अन्धक गिररहे थे ॥ ४२ ॥ तहाँ मारेजातेमें किसीको यह ध्यान ही नहीं आया, कि-यहाँसे भाग जायँ कालके उलटफेरको जानकर महाबाहु कृष्ण यह सब देखते ही रहे ॥ ४३ ॥ वह मधुसूदन उस पतेलकी मुंढीरूप मूसलको उठाकर खड़ेही रहे, साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको मारेगये देखकर हे भारत ! श्रीकृष्णको क्रोध आगया और मदको

निरुद्धञ्च ततश्चुक्रोध भारत । गदं वीक्ष्य शयानञ्च भृशं कोप-
समन्वितः ॥ ४५ ॥ स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः । तं
निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरञ्जयः ॥४६ ॥ दारुकश्चैव दाशार्हं
मूचतुर्यन्निबोध तत् । भगवन् निहताः सर्वे त्वया भूयिष्ठशो नराः ॥
रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि कृतवर्मादीनां परस्पर-
हनने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो ययुर्दारुकः केशवश्च बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः । अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते ॥ १ ॥ ततः समासाद्य महानुभावं कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत् । गत्वा कुरून् सर्वमिदं महान्तं पार्थाय शंसस्व वधं

भी प्राणहीन हो भूमिमें सोया देखकर उनको बड़ा ही क्रोध चढ़ा ॥ ४४–४५ ॥ उस समय शार्ङ्ग, चक्र और गदाको धारण करनेवाले कृष्णने, जो कुछ बचरहे थे उन सबोंको निःशेष कर डाला, उस समय शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले महातेजस्वी बभ्रुने और दारुकने सबके हन्ता उन कृष्णसे जो कुछ कहा था हे राजन् ! उसको सुन (उन्होंने कहा, कि–) हे भगवन् ! आपके हाथसे इन सबोंका सबसे अधिक भाग मारागया है अब आप जहाँ बलराम गये हैं उधरको चलिये, हम भी तहाँ ही जाना चाहते हैं ॥ ४६–४७ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–तदनन्तर दारुक, श्रीकृष्ण और बभ्रु बलरामके चरणोंकी चिह्नोंकी पहिचान करते हुए चलदिये और उन्होंने अनन्त वीर्यवाले बलरामको एक वृक्षके नीचे बैठकर कुछ विचार करतेहुए देखा ॥ १ ॥ और फिर उन महानुभावसे मिलकर श्रीकृष्णने दारुकको आज्ञा दी, कि–तू कुरुदेशमें जा और अर्जुनको अपने इस महान् संहारका वृत्तान्त सुना ॥२॥ अर्जुनको

यदूनाम् ॥ २ ॥ ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु श्रुत्वा मृतान् यादवान् ब्रह्मशापात्। इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन कुरूँस्तदा दारुको नष्टचेताः ॥ ३ ॥ ततो गते दारुके केशवोऽथ दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम्। स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥४॥ स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो मदातुरः ज्ञातिवधार्दितश्च। तं विश्रान्तं सन्निधौ केशवस्य दुरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम्। ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद्वै कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य। ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः ॥ ६ ॥ इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि। ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ॥ ७ ॥ स्त्रियो

ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश होजानेकी बात सुनाकर शीघ्र ही यहाँको लिवालाना, कृष्णके ऐसा कहने पर वह दारुक, कि-जिसकी बुद्धि नष्ट होगयी थी, रथमें बैठकर कुरुदेशको चला गया ॥३॥ दारुकके चले जाने पर श्रीकृष्णने बभ्रुको पासमें देखकर उससे कहा, कि-स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये तू शीघ्र ही द्वारका चला जा कहीं धनके लोभसे लुटेरे उनको मार न डालें, इस बातकी सम्हाल रखना ॥४॥ मदसे आतुर और भाई बन्धुओंके मारेजानेसे दुःखी हुआ वह बभ्रु श्रीकृष्णके कहनेसे तहाँसे चलदिया, श्रीकृष्णके पास बैठने पर उसको कुछ विश्राम मिला था और फिर कृष्णके पाससे चला आने पर वह एकायकी अकेला होगया ॥ ५ ॥ इस बभ्रुको भी ब्राह्मणोंका शाप लगाहुआ था, उसको एक शिकारीने अपनी कुल्हाडीमें लगे हुए बड़ेभारी मूसलसे मारडाला, तदनन्तर बभ्रुको मारागया देखकर उग्र तेजवाले श्रीकृष्णने अपने बड़े भाईसे कहा, कि-॥६॥ हे राम! मैं अपनी स्त्रियोंको जातिवालोंकी रक्षामें छोडआऊँ, तब तक तुम यहाँ ही मेरी बाट देखना, फिर द्वारावती नगरीमें जाकर

भवान्रक्षतु नः समग्रा धनञ्जयस्यागमनं प्रतीक्षन् । रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मामास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥८। दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम् । नाहं विना यदुभिर्यादवानां पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य ॥९॥ तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे रामेण सार्द्धं वनमभ्युपेत्य । इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ संस्पृश्य कृष्ण-स्त्वरितो जगाम ॥ १० ॥ ततो महान्निनदः प्रादुरासीत् सस्त्री-कुमारस्य पुरस्य तस्य । अथाब्रवीत् केशवः सन्निवर्त्य शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥ ११ ॥ पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची स वो दुःखान्मोक्षयिता नराग्र्यः । ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श रामं वने स्थितमेकं विविक्ते ॥ १२ ॥ तथापश्यद्योगयुक्तस्य तस्य नागं

श्रीकृष्णने अपने पिता वसुदेवको सब समाचार सुनाकर यह बात कही ॥ ७॥ ॥ कि—अर्जुनके आनेकी बाट देखते हुए आप सब स्त्रियोंकी यहाँ रक्षा करते रहें, वनकी सीमा पर बलराम मेरी बाट देखरहे हैं,मैं आज ही जाकर उनसे मिलूँगा ॥८॥ मैंने आज यदुवंशियोंका और पहले कुरुवंशके श्रेष्ठ राजाओंका नाश होते देखा है,अब यह यदुवंशियोंसे सूनीहुई नगरी मुझसे देखी नहीं जाती ९ इसलिये अब मैं रामके साथ वनमें जाकर तपस्या करूँगा, यह आपको मालूम रहे,ऐसा कहकर और मस्तकसे उनके दोनों चरणों को छूकर (प्रणाम करके) श्रीकृष्ण बहुत शीघ्रतासे चलेगये १० तब तो उस नगरीकी स्त्रियों और बालकोंके रोनेका बडाभारी कोलाहल सुनाई आने लगा, तब उन रोतीहुई स्त्रियोंके दुन्दको सुनकर श्रीकृष्ण फिर लौट आये और उनसे यह बात कही, कि- ॥ ११ ॥ अर्जुन इस नगरीमें आयेगा और वह नरश्रेष्ठ तुम्हें दुःखसे बचायेगा (ऐसा कहकर) श्रीकृष्ण तहाँसे चले गये और एकान्त वनमें बलरामको अकेले बैठे हुए देखा ॥ १२ ॥ फिर तहां योगसमाधिमें बैठेहुए उनके मुखमेंसे एक बड़े भारी सफेद

मुखान्निश्चरन्तं महान्तम् । श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो महार्णवो येन महानुभावः ॥ १३ ॥ सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा रक्तानन: स्वां तनुं तां विमुच्य । सम्यक् च तं सागरः प्रत्यगृह्णान्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १४ ॥ कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च पृथुश्रवा वरुणः कुञ्जरश्च । मिश्री शंखः कुमुदः पुण्डरीकस्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥ १५ ॥ ह्रादः क्राथः शितिकण्ठोग्रतेजास्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ । नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ॥ १६ ॥ प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्दंस्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः । ततो गते भ्रातरि वासुदेवो जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ॥ १७ ॥ वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो भूमौ चाथ सन्निवेशाग्र्यतेजाः । सर्वं तेन प्राक्

नागको बाहर निकलते हुए देखा, वह महानुभाव (नाग) महासागरकी ओरको देखता हुआ तहाँसे चलागया ॥ १७ ॥ उसने उस शरीरको छोड़ दिया, उसके सहस्र शिर थे, उसका शरीर पर्वतकी सपाट पीठकी समान बहुत बड़ा था, उसका मुख लाल था, समुद्रमें दिव्य नागोंने और पवित्र नदियोंने उसका उचित स्वागत किया (अर्थात् वह समुद्रके भीतर घुस गया) ॥ १४ ॥ कर्कोटक, वासुकी, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुंजर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक तथा महात्मा धृतराष्ट्र नाग । १५ । ह्राद, क्राथ उग्र तेजवाला शितिकण्ठ तथा चक्रमन्द और अतिषण्ड नामके दो नाग, नागोंमें श्रेष्ठ दुर्मुख अम्बरीष और हे राजन् ! स्वयं राजा वरुण (तहाँ स्वागत करनेको आगये थे, वे) ॥ १६ ॥ उनके सामने गये और स्वागत करके अभिनन्दन किया तथा अर्घ और पाद्य आदि क्रियाओंसे उनका पूजन किया अपने भाईके चलेजाने पर सब गतियोंको जाननेवाले दिव्यदृष्टि श्रीकृष्ण ॥ १७ ॥ विचारमें पड़कर निर्जन वनमें घूमनेलगे,

तदा चिन्त्यमासीद्गान्धार्या यद्वाक्यमुक्तः स पूर्वम् ॥ १८ ॥ दुर्वा-
ससा पायसोच्छिष्टलिप्ते यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार वाक्यम् । संचि-
न्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं कुरुक्षयञ्चैव महानुभावः ॥ १९ ॥ मेने
ततः संक्रमणस्य कालं ततश्चकारेन्द्रियसन्निरोधम् । तथा च
लोकत्रयपालनार्थमात्रेयवाक्यप्रतिपालनाय ॥ २० ॥ देवोऽपि
सन्देहविमोक्षहेतोर्निर्णीतमैच्छत् सकलार्थतत्त्ववित् । स संनिरुद्धे-
न्द्रियवाङ्मनास्तु शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥ २१ ॥ जराथ
तं देशमुपाजगाम लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः । स केशवं योग-
युक्तं शयानं मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥ २२ ॥ जराविध्यत्
पादतले त्वरावांस्तञ्चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम । अथापश्यत् पुरुषं

फिर वह उत्तम तेजस्वी एक स्थान पर भूमिमें बैठगये, गांधारीने पहले जो बात कही थी, वह सब उनको पहलेसे ही याद थी १८ और जब उच्छिष्ट दुग्धपाक शरीर पर लगादिया था, उस समय दुर्वासाने जो बात कही थी वह उनको याद आगयी, फिर अन्धक और वृष्णियोंके नाशका तथा कुरुओंके क्षयका विचार करते २ उन महानुभावने ॥ १९ ॥ इस जगत्‌मेंसे अपने पधारनेका समय आपहुँचा जाना और अपनी इन्द्रियोंका सब प्रकारसे निरोध कर दिया और यद्यपि वह परम पुरुष थे तो भी त्रिलोकीके नियमका पालन करनेके लिये तथा दुर्वासाके वचनको पूरा करनेके लिये ही ऐसा किया ॥ २० ॥ स्वयं देवता भी होतेहुए इस लोकके देहको छोडनेके लिये उन सकल अर्थोंके तत्त्वोंको जाननेवाले कृष्णने,इस निर्णय की हुई बातको ही करना चाहा उन कृष्णने इन्द्रियें, वाणी और मनको सब प्रकारसे रोकदिया और महा-योग (समाधि) को साधकर सोरहे ॥ २१ ॥ उसी समय मृग को पानेकी इच्छावाला एक जरा नामका उग्र शिकारी उधरको ही आनिकला और मृगका शिकार करनेमें आसक्त हुए उस

योगयुक्तं पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २३ ॥ मत्वात्मानं त्वापराद्धं स तस्य पादौ जरा जगृहे शङ्कितात्मा । आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥ २४ ॥ दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे । प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः॥२५॥ ततो राजन् भगवानुग्रतेजा नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च । योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् २६ ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः समागतश्चारणैश्चैव राजन् । गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः २७

जरा शिकारीने योग समाधि लगाकर सोयेहुए उनके पैरोंके तलुए में (मृगके धोखेसे) एक बाण मारकर बींधदिया और उस शिकारको पकडनेकी इच्छासे वह झपटा हुआ उनकी ओरको आया, तहाँ उसने अनेकों बाहुवाले पीताम्बरधारी, योगसमाधि में मग्न हुए एक पुरुषको देखा ॥ २२-२३ ॥ अपनेको अपराधी मानकर अपने मनमें शङ्का करते हुए उस जरा व्याधेने उनके दोनों पैर पकडलिये, उस समय उसको आश्वासन देतेर वह महात्मा अपनी लक्ष्मी (श्री) से पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र व्याप्त होकर ऊपर स्वर्गमें चलेगये ॥ २४ ॥ तहाँ इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेवता, मुनि, सिद्ध और अप्सराओंके सहित मुख्य२ गन्धर्व ये सब उनको स्वर्गमें आते देखकर उनको लेनेके लिये आये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! फिर उग्रतेजवाले भगवान् नारायण, सबके प्रभु अविनाशी, योगाचार्य तहाँ स्वर्गमें भी अपनी लक्ष्मीके साथ सर्वत्र व्याप्त होकर वह महात्मा अपने अप्रमेय-धाममें पहुँच गये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर देवता, ऋषि, चारण श्रेष्ठ, अप्सरायें, सिद्ध और साध्यों से श्रीकृष्ण मिले और उन्होंने प्रणाम करके उनकी पूजाकी २७

तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राजन्मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् २८

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि श्रीकृष्णस्य स्वलोकगमने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच । दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान् । आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योऽन्येनोपसंहृतान् ॥१ ॥ श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककौकुरान् । पाण्डवाः शोकसन्तप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥२॥ ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा । प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥३ ॥ स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो । ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम् ॥४॥ याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुरा-

और हे राजन् ! देवताओंने उनको अभिनन्दन दिया, श्रेष्ठ मुनियों नें उन ईशकी मंत्रोंसे पूजाकी, गन्धर्व उनकी सेवामें उपस्थित हुए, उनकी स्तुति करनेलगे और इन्द्रनें प्रेमके साथ उनको अभिनन्दन दिया ॥ २८ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-(इसी अवसरमें) दारुक भी कुरुदेशमें पहुँचगया और महारथी पाण्डवोंसे मिलकर वृष्णियोंका आपसमें पतेल मारकर जो नाश होगया था उसका समाचार सुनाया ॥ १ ॥ वृष्णियोंका भोज, अन्धक और कुकुरोंके सहित नाश होगया, यह सुनकर पाण्डव शोकसे व्याकुल होगये और उनका मन बहुत ही घबड़ाउठा ॥ २ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णका प्यारा मित्र अर्जुन, सब पाण्डवोंकी आज्ञा लेकर मामा वसुदेवजीसे मिलनेको तत्काल चलदिया और कहने लगा कि-ऐसा नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! दारुकके साथ अर्जुन वृष्णियोंके देशको चलदिया, तहाँ उस वीरने, जिसका पति मरगया हो ऐसी अनाथ स्त्रीकी समान द्वारकाको देखा ॥ ४ ॥ जो स्त्रियें पहले

भवन्। तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ॥५॥ षोडश-स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः । तासामासीन्महानादो दृष्ट्वैवा-र्जुनमागतम् ॥ ६ ॥ तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः। हीना कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत् सोऽभिवीक्षितुम्॥७॥ तां वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम् । वादित्ररथघोषौघां वेश्मतीर्थां महाह्रदाम्॥८॥ रत्नशैवलसंघातां वज्रमाकारमालिनीम् । रथ्यास्रोतोजलावर्त्तां चत्वरस्तिमितह्रदाम् ॥९॥ रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकां सरितं तदा । कालपाशग्रहां भीमां नदीं वैतरणीमिव ॥ १० ॥ ददर्श वासविर्धीमान् विहीनां वृष्णिपुङ्गवैः । गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा ॥ ११ ॥ तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य

उन लोकनाथसे नाथवती थीं, वेही स्त्रियें आज अनाथ थीं, वे अर्जुनरूप रक्षकको देखकर जोरसे रोपड़ीं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णकी विवाही हुई सोलह हजार स्त्रियें थीं, अर्जुनको आते देखकर उनके रोनेका बड़ाभारा कोलाहल होउठा ॥ ६ ॥ अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये वह श्रीकृष्ण और पुत्रोंसे हीन हुई उन स्त्रियोंकी ओरको देख नहीं सका ॥७॥ वृष्णि और अन्धकरूप जलवाली, घोड़ेरूप मछलियों वाली, रथरूप डोंगेवाली, बाजे और रथके शब्दरूप प्रवाहवाली, स्थान और तीर्थरूप बड़े२ सरोवरोंवाली ॥ ८ ॥ रत्नोंरूप सिवारके समूह वाली, वज्र समान किले रूपमाला वाली मोहल्लेरूप जलके भँवरों वाली, चौतरेरूप बड़े २ स्थिर सरोवरोंवाली ॥ ९ ॥ तथा बलराम और कृष्णरूप बड़े २ ग्राहोंवाली द्वारकारूप नदी को उसने कालपाशसे जकड़ी हुई भयानक वैतरणी नदीकी समान देखा ॥ १०॥ इन्द्रके बुद्धिमान् पुत्र अर्जुनने, जैसे शिशिर ऋतुमें शोभाशून्य आनन्दविहीन तलैया दीखती है तैसेही वृष्णिवंशके उत्तम पुरुषोंसे हीन द्वारकाको देखा ॥ ११ ॥ द्वारकाको तथा कृष्णकी स्त्रियोंको देख

योषितः । सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले ॥ १२ ॥सात्रा-
जिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशाम्पते । अभिपत्य प्ररुरुदुः
परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १३ ॥ ततस्तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योप-
वेश्य च । अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ १४ ॥ ततः
संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः । आश्वास्य ताः स्त्रिय-
श्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनागमने पञ्चमोऽध्यायः ।५।

वैशम्पायन उवाच । तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम् ।
पुत्रशोकेन सन्तप्तं ददर्श कुरुपुङ्गवः ॥ १ ॥ तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो
व्यूढोरस्को महाभुजः । आर्त्तस्यार्त्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत२
तस्य मूर्द्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः । स्वस्रीयस्य महाबाहुर्न

कर अर्जुन आँसू बहाता और चीख फोडकर रोताहुआ पछाड़
खाकर भूमिपर गिरपडा ॥ १२ ॥ तब हे राजन् ! सत्राजित्की
पुत्री सत्या और रुक्मिणी अर्जुनके समीप आ पछाड खाकर
गिरपड़ीं और जोरसे रोने लगीं ॥ १३ ॥ तदनन्तर अर्जुनको
उठाकर सोनेके सिंहासन पर बिठलाया और चुप चाप उस
महात्माको घेरकर उसके चारों ओर खडी होगयीं ॥ १४ ॥ फिर
श्रीकृष्णकी प्रशंसा करके और उनके विषेकी बातें करके अर्जुनने
उन स्त्रियोंको आश्वासन दिया और अपने मामा वसुदेव
जीसे मिलनेको गया ॥ १५ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने पुत्रके शोकसे
पीडित, महात्मा, वीर वसुदेवको (भूमिपर) सोतेहुए देखा ।१।
हे राजन् ! विशाल वक्षःस्थलवाले, महाबाहु, दुःखियोंसे भी अधिक
दुःखी और जिसके आँसू भररहे थे ऐसे अर्जुनने उनके दोनों
चरणोंको पकडा ॥ २ ॥ हे शत्रुनाशक ! महाबाहु वसुदेवजीने
अपने भानजेका मस्तक सूँघना चाहा, परन्तु ऐसा कर नहीं सके

शशाङ्क च शत्रुहन् ॥ ३ ॥ समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः । रुदन् पुत्रान् स्मरन् सर्वान् विललाप सुविह्वलः ॥४॥ भ्रातॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् स सखीनपि । वसुदेव उवाच । यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन ॥ ५ ॥ तान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः । यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ तदा ॥ ६ ॥ तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः । यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ ॥-७॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन् कत्थसे च यौ । तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ ॥ ८ ॥ तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनञ्जय । न तु गर्हामि शैनेयं हार्दिक्यञ्चाहमर्जुन ॥ ९ ॥ अक्रूरं रौक्मि-

(ऊँचा साँस न लेसके) ॥ ३ ॥ उन महाबाहु वृद्ध वसुदेवजीने अर्जुनको अपनी भुजासे चिपटाकर सब पुत्रोंको याद करर के रोना आरम्भ करदिया और उन्होंने अति विह्वल होकर बहुत ही विलाप किया ॥ ४ ॥ अपने भाइयोंका, पुत्रोंका, पोतोंका, धेवतोंका और मित्रोंका भी (स्मरण करके विलाप किया) वसुदेवने कहा, कि—हे अर्जुन ! जिन्होंने राजाओंको और अनेकों दैत्योंको जीता था ॥ ५ ॥ उनको पहले देखकर आज नहीं देख पाता हूँ और जीरहा हूँ ! हे अर्जुन ! (प्रतीत होता है) मुझे मौत आना कठिन है,हे अर्जुन ! वह तेरे दोनों शिष्य जो तुझे प्यारे थे और जिनका तू सदा बडा सन्मान करता था ॥ ६ ॥ हे पार्थ ! उनके ही अन्यायसे वृष्णियोंका नाश हुआ है ! वृष्णियोंके बड़े२ वीर पुरुषोंमें जो दो अतिरथी गिनेजाते थे, वे दोनों प्रद्युम्न और सात्यकी,जिनके लिये तू बड़े अभिमानके साथ बोला करता था, हे कुरुसिंह ! वे दोनों कृष्णके प्रियपात्र थे ॥७-८॥ हे धनञ्जय ! वे दोनों ही वृष्णियोंके विनाशका कारण हुए हे अर्जुन ! सात्यकी और कृतवर्माकी मैं निन्दा नहीं करता ॥ ९॥ तथा अक्रूर और

गोयं वै शापो ह्येवात्र कारणम् । केशिनं यस्तु कंसञ्च विक्रम्य जगतः प्रभुः ॥ १० ॥ विदेहावकरोत् पार्थ चैद्यञ्च बलगर्वितम् । नैषादिमेकलव्यञ्च चक्रे कालिङ्गमागधान् ॥ ११ ॥ गान्धारान् काशिराजञ्च मरुभूमौ च पार्थिवान् । प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२ ॥ सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः । त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥ १३ ॥ गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम् । प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥ १४ ॥ समुपेक्षितवान्नित्यं स्वयं स मम पुत्रकः । गान्धार्या वचनं यत्तदृषीणाञ्च परन्तप ॥ १५ ॥ तन्नूनमन्यथा कर्त्तुं नैच्छत् स जगतः प्रभु । प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परन्तप ॥१६॥ अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा । इमां-

प्रद्युम्नकी भी मैं निन्दा नहीं करता हूँ, क्योंकि--इस सर्वनाशका कारण तो ऋषियोंका शाप ही है,जिन जगत्पतिने केशीको और कंसको कुचल डाला था ॥१०॥ और हे अर्जुन ! चेदिके राजा शिशुपालके शरीरको नष्ट करदिया था और निषादोंके राजा एकलव्यको तथा कलिङ्गोंको और मागधोंको मारडाला था ।११। और गान्धारोंको, काशीके राजाको तथा मरुभूमिमें इकट्ठे हुए राजाओंको, पूर्वमेंसे और दक्षिणमेंसे आयेहुए राजाओंको तथा पर्वतोंमें बसनेवाले राजाओंको मारडाला था ॥ १२ ॥ उन श्रीकृष्णने बालकोंके अन्यायकी रक्षा क्यों नहीं की,तुम, नारदजी तथा मुनि उनको सनातन निष्पाप, अच्युत, देव और गोविंदरूप जानते थे वह विभु अधोक्षज ज्ञातिके वधको देखते ही रहे१३-१४ हे परन्तप ! उस मेरे पुत्रने (मालूम होता है) गान्धारीके शापकी और ऋषियोंके वचनोंका जान बूझकर उपेक्षा की ॥१५॥ उस जगत्पतिने उन वचनोंको मिथ्या करना (पलट देना) चाहा ही नहीं, हे परन्तप ! तेरे सामने ही तेरे पोते (परीक्षित) को अश्व-

स्तु नैच्छत् स्वान् ज्ञातीन् रक्षितुं स सखा तव१७ ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखीनपि। शयानान्निहतान् दृष्ट्वा ततो माम-ब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥ सम्प्राप्तोऽयमयमस्यान्तः कुलस्य भरतर्षभ। आगमिष्यति बीभत्सुरियां द्वारवतीं पुरीम् ॥१९॥ आख्येयं तस्य यद्वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत्। स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो ॥२०॥ आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा। योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ॥ २१ ॥ यद् ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति बुध्यस्व भारत। स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बाल-केषु च ॥ २२ ॥ प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम्। इमाञ्च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनञ्जये ॥ २३ ॥ प्राकाराट्टालको-

स्थाणने नष्ट करना चाहा था तो भी उन्होंने अपने तेजसे जीवित करदिया परन्तु इन अपने जातिबान्धवोंको उस तेरे सखाने बचाना ही नहीं चाहा ॥ १६-१७॥ हे भरतसत्तम! अपने पुत्र, पौत्र, भाई और मित्रोंको मरकर सोयेहुए देखकर उसने मुझसे यह बात कही थी, कि-१८अब वह हमारे कुलका अन्तसमय आलगा है, अर्जुन द्वारका पुरीमें आवेगा ॥ २० ॥ उसको, यह वृष्णियोंका सर्वनाश जिसप्रकार हुआ है सब सुनादेना, हे प्रभो! यादवोंके नाशका समाचार सुनकर वह महातेजस्वी तुरन्त ही यहाँ आवेगा, इसमें मुझे जराभी विचार नहीं करना है, जो मैं हूँ, उसको ही तुम अर्जुन जानो और जो अर्जुन है वही तुम मुझे जानो २१ वह जैसा कहे, वैसा ही काम करना, उसने ऐसा कहा था, सो हे भारत! तू समझले वह अर्जुन जिन स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न होनेका समय समीप ही है उनकी और बालकोंकी रक्षा करे-गा ॥ २२ ॥ और वह अर्जुन तुम्हारी और्ध्वदैहिक (श्राद्ध) क्रिया भी करेगा और धनञ्जयके लौटजाने पर किले और मौहल्लोंसे भरीहुई इस नगरीको समुद्र एकदम डुबोदेगा मैं किसी

पेतां समुद्रः प्लावयिष्यति । अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियम-
मास्थितः ॥ २४ ॥ कालं कर्त्ता सत्य एव रामेण सह धीमता ।
एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ।२५। हित्वा मां बालकैः
सार्द्धं दिशं कामप्यगात् प्रभुः । सोऽहन्तौ च महात्मानौ चिन्तयन्
भ्रातरौ तव ॥ २६ ॥ घोरं ज्ञातिवधञ्चैव न भुञ्जे शोककर्षितः ।
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव ॥ २७ ॥
यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत् सर्वमखिलं कुरु । एतत्ते पार्थ राज्यञ्च
स्त्रियो रत्नानि चैव हि । इष्टान् प्राणानहं हीमांस्त्यक्ष्याम्यरिनि-
षूदन ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनवसुदेवसम्वादे
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परन्तपः ।
दुर्मना दीनवदनो वसुदेवमुवाच ह ॥ १ ॥ नाहं वृष्णिप्रवीरेण

पवित्र स्थानमें व्रतधारण करके ॥२३॥ बुद्धिमान् बलरामके साथ
कालकी बाट देखताहुआ बैठारहूँगा, इतना कहकर, जिनके परा-
क्रमका पार नहीं पाया जासकता ऐसे श्रीकृष्ण प्रभु यहाँ बाल-
कोंके सहित मुझे छोडकर किसी दिशामेंको चलेगये हैं और मैं
उन महात्मा दोनों भाइयोंका विचार करताहुआ तथा जातिबान्धवोंके
घोर विनाशका विचार करता हुआ शोकसे सूखगया हूँ, मुझसे
खाया नहीं जाता, अन्न खाऊँगा ही नहीं और जीवित भी नहीं
रहूँगा, हे पाण्डव ! सौभाग्यसे तू मुझे मिलगया है ॥२४-२७॥
हे पार्थ!कृष्णने जो कुछ कहा है,उस सबको तू पूरा कर,हे अर्जुन!
यह राज्य, स्त्रियें और रत्न तेरे हैं, हे वैरीदमन ! ये प्राण प्यारे
हैं तो भी मैं इनको त्यागदूँगा ।२८॥ छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे परन्तप जनमेजय ! अर्जुनसे
उसके मामा वसुदेवने ऐसा कहा, तब उसने मनमें दुःखित होते

बन्धुभिश्चैव मातुल । विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्तोमीह कथञ्चन २
राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः । नकुलो याज्ञसेनी च
षडेकमनसो वयम् ॥ ३ ॥ राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्त्तते
ध्रुवम् । तमिमं विद्धि संप्राप्तं कालं कालविदां वर ॥ ४ ॥ सर्वथा
वृष्णिदारांस्तु बालं वृद्धं तथैव च । नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थ-
मरिन्दम५इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनञ्जयः । अमात्यान्
वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम्६इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां
यादवीं सभाम् । प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ॥७॥
तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा । ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परि-
वार्योपतस्थिरे ॥८॥ तान् दीनमनसः सर्वान् विमूढान् गतचेतसः।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा ॥ ९ ॥ शक्रप्रस्थमहं नेष्ये

हुए दीनमुखसे वसुदेवजीको यह उत्तर दिया, कि—॥ १ ॥
हे मामाजी! वृष्णियोंमें परमवीर कृष्ण और अपने सम्बन्धियोंसे
शून्य हुई यह पृथ्वी मुझसे किसीप्रकार भी नहीं देखी जाती। २
राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, पाण्डव नकुल, सहदेव और द्रौपदी
(तथा मैं) हम छहोंका एक ही मन है ॥३॥ अब राजा युधिष्ठिरके
इस लोकसे दूसरे लोकमें जानेका वास्तवमें यही समय वर्त्तरहा है,
हे कालको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ मामाजी ! समझलो, कि—अब
काल आगया ॥४॥ तो भी हे अरिदमन ! वृष्णियोंकी स्त्रियोंको
बालकोंको और वृद्धोंको मैं अपने साथ इन्द्रप्रस्थको लिवाजा-
ऊँगा ॥५॥ ऐसा कहकर अर्जुनने दारुकसे यह बात कही, कि—
वृष्णिवीरोंके मंत्रियोंसे मैं शीघ्र ही मिलना चाहता हूँ ॥६॥ ऐसा
कहकर सुधर्मा नामक यादवोंकी सभामें महारथियोंका शोक करते
हुए अर्जुनने प्रवेश किया ॥७॥ तहाँ आसन पर बैठेहुए अर्जुनको
घेरकर सब प्रजाके लोग और शास्त्रको जाननेवाले ब्राह्मण बैठ
गये ॥८॥ दीन मनवाले, उत्साहहीन मूढ़से बनेहुए उन सबोंसे,

वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम्। इदन्तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति १०
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च। वज्रोऽयं भवतां राजा
शक्रप्रस्थे भविष्यति ॥११॥ सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमलमुद्गते।
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम् ॥ १२ ॥ इत्युक्तास्तेन
ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा। सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्धयर्थं
समुत्सुकाः ॥ १३ ॥ तां रात्रिमवसत् पार्थः केशवस्य निवेशने।
महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः ॥ १४ ॥ श्वोभूतेऽथ ततः
शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान्। युक्त्वात्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्त-
माम् ॥ १५ ॥ ततः शब्दो महानासीत् वसुदेवनिवेशने। दारुणः
क्रोशतीनाञ्च रुदतीनाञ्च योषिताम् ॥१६॥ प्रकीर्णमूर्द्धजाः सर्वाः

उनसे भी अधिक दीन हुए अर्जुनने उस समय यह बात कही, कि–॥ ६ ॥ मैं स्वयं वृष्णि और अन्धक लोगोंको इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा, क्योंकि–(मेरे चलेजाने पर) समुद्र इस सब नगरीको डुबादेगा ॥ १० ॥ इसलिये रथ, वाहन और अनेकों रत्नोंकी तयारी करो, (जो कुछ साथ लेना हो उसको बाँधलो) इन्द्रप्रस्थमें यह वज्र (कृष्णका पोता) तुम्हारा राजा होगा ॥११॥ आजसे सातवें दिन निर्मल सूर्यका उदय होते ही हम सब बाहर जाकर बसेंगे, इसलिये तुम सब शीघ्र ही तयारी करो ॥ १२ ॥ शुद्ध कर्मोंवाले अर्जुनने उन सबोंसे ऐसा कहा, तब अपनी रक्षाके लिये एकसी आतुरतावाले उन सबोंने तत्काल तयारी करना आरंभ करदिया१३उस रातको अर्जुन श्रीकृष्णके महलमें रहा; वह एकायकी बड़ेभारी शोक और मोहमें डूबगया था ॥ १४ ॥ फिर प्रातःकाल होने पर शूर वंशके प्रतापी महात्मा वसुदेवजी अपने आत्माको योगसे साधकर उत्तम गतिको प्राप्त होगये १५ तब वसुदेवजीके महलमें डकराती और रोती हुई स्त्रियोंका बड़ा दारुण शब्द होउठा ॥ १६ ॥ उन सब स्त्रियोंके शिरोंके बाल

विमुक्ताभरणस्रजः । उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः १७ तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा । अन्वारोढुं च तदा भर्त्तारं योषितां वराः १८ ततः शौरिं नृयुक्तेन बहुमूल्येन भारत । यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत्तदा ॥ १९ ॥ तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमाहताः । द्वारकावासिनः सर्वे पौरजानपदा हिताः ॥ २० ॥ तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः । पुरस्तात्तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः ॥ २१ ॥ अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः । स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः ॥ २२ ॥ यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः । तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ २३ ॥ तं चिताग्निगतं वीरं

खुलकर बिखरगये थे, गहने तथा मालायें उतारडाली थीं और हाथोंसे छातियोंको कूटती हुई ऐसा विलाप कररही थीं, कि-जिसको देखकर दया आती थी ॥१७॥ स्त्रियोंमें उत्तम देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा अपने पतिके साथ परलोकको पधारगयीं ॥ १८ ॥ हे भारत ! तदनन्तर अर्जुन, एक बहुमूल्य पालकी,कि-जिसको मनुष्य उठारहे थे,उसमें वसुदेवजीके शवको लेकर नगरके बाहर निकला ॥ १९ ॥ उसके पीछे२ दुःख और शोकमें भरेहुए द्वारकावासी पुर तथा ग्रामोंके लोग जो उनके हितैषी थे वे सब चले ॥ २० ॥ उनकी अरथीके आगे उनका अश्वमेधयज्ञके समयका छत्र और अग्निहोत्रके नित्य पूजन किये हुए प्रज्वलित अग्नि थे तथा याजक चल रहे थे ॥ २१ ॥ उस वीरके पीछे उत्तम आभूषणोंवाली वे देवियें,कि-जो हजारों स्त्रियों और हजारों बहुओंसे घिरीहुई थीं वे चलदीं ॥२२॥ जो स्थान उनको अपने जीवनकालमें प्यारा था तहाँ ही उन वसुदेवजीके शवको रखकर सङ्कल्पपूर्वक पितृमेध(अग्निसंस्कार)कियागया २३ चिताकी अग्निमें पड़ेहुए उस वीर शूरके पुत्रके पीछे उनकी चार

शूरपुत्रं वराङ्गनाः। ततोऽन्वारुरुहुः पत्नयश्च तस्य पतिलोकगाः २४
तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वितं पाण्डुनन्दनः । अदाहयच्चन्दनैश्च
गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ २५ ॥ ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभा-
वसोः । सामगानाञ्च निर्घोषो नराणां रुदतामपि ॥२६॥ ततो
वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धककुमारकाः । सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रिय-
श्चैव महात्मनः ॥२७॥ अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥ २८ ॥ स तान् दृष्ट्वा
निपतितान् कदने भृशदुःखितः । बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं
चकार ह ॥ २९ ॥ यथा प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः ।
ये हताः ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥३०॥ ततः शरीरे रामस्य
वासुदेवस्य चोभयोः । अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ३१

स्त्रियोंने भी प्रवेश किया(सती होगयीं)और अपने पतिके लोकको चली गयीं ॥२४॥ पाण्डुपुत्र अर्जुनने चार स्त्रियोंके सहित उन वसुदेवजीको भाँति२ के चन्दन और सुगन्धित पदार्थोंसे भस्म करदिया तदनन्तर जलतेहुए अग्निमेंसे शब्द निकलनेलगा तथा सामवेदके तथा रोतेहुए पुरुषोंका शब्द सुनायी आनेलगा॥२६॥ फिर वज्र आदि वृष्णि और अन्धकोंके कुमारोंने तथा स्त्रियोंने उन महात्माका जलदान कर्म किया ॥ २७ ॥ जिसके धर्मका नाश नहीं होनेपाया था ऐसा अर्जुन वह धर्म क्रिया करवाकर हे भरत-सत्तम ! फिर जहाँ वृष्णियोंका नाश हुआ तहाँ (प्रभासमें,गया२८-उनको मैदानमें पड़े हुए देखकर वह बड़ा ही दुःखी हुआ, फिर अर्जुनने ऐसे अवसर पर करनेका काम किया ॥ २९ ॥ एरकामेंसे निकलेहुए मूसलोंसे जो ब्रह्मशापके कारण मारे गये थे, उन सबोंकी क्रमसे मुख्य२ सब क्रियायें कीं ॥ ३० ॥ फिर बलराम और श्रीकृष्ण इन दोनोंके शरीरोंको खोजनेके लिए विश्वासपात्र पुरुषोंको अपने पास बुलवाया ॥ ३१ ॥ अर्जुन उनका प्रेतकर्म

स तेषां निश्चित्य कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः। सप्तमे दिवसे प्रायात् रथमारुह्य सत्वरः ॥३२॥ अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि। स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदन्त्यः शोककर्षिताः ॥ ३३ ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनञ्जयम्। भृत्यास्त्वन्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये ॥ ३४ ॥ वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा। ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ ३५ ॥ कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा। स पादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः ॥ ३६ ॥ पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः ॥ ३७ ॥ दश षट् च सहस्राणि वासुदेवावरोधनम्। पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ॥ ३८ ॥ बहूनि च सह-

---

विधिविधानसे करके सातवें दिन शीघ्र ही रथमें बैठकर नगरसे बाहर चलागया ॥ ३२ ॥ फिर घोड़ोंसे जुते हुए रथोंमें और गदहे खच्चर तथा ऊँटोंसे जुते हुए रथोंमें वृष्णियोंकी शोकसे सूखी हुई और रोती हुई स्त्रियें ॥३३॥ महात्मा पाण्डवपुत्र धनञ्जयके पीछे चलदीं, उनके पीछे वृष्णि और अन्धकोंके नौकर,घुड़सवार और रथी चलदिये ॥ ३४ ॥ उन वीर कृष्णसे हीन वृद्ध और बालक, पुर तथा ग्रामोंके लोग अर्जुनकी आज्ञासे उन स्त्रियों की टोलीके चारों ओर घिरकर साथमें चलदिये ॥ ३५ ॥ हाथी सवार पर्वतोंकी समान ऊँचे हाथियों पर चढ़कर चलदिये,म्यानदार शस्त्रोंको धारण करनेवाले अपने रक्षक पैदलोंके साथ चल दिये ॥ ३६ ॥ अन्धक और वृष्णियोंके सब कुमार, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और बड़े२ धनवान् शूद्र भी अर्जुनके पीछे२ चलदिये ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णके रणवासकी सोलह हजार स्त्रियों और बुद्धिमान कृष्णके पोते वज्रको आगे करके सब चलदिये॥३८॥ भोज, वृष्णि और अन्धकोंकी स्त्रियें जिनके पति मारे गये थे

स्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथा विनिर्ययुः ॥ ३९ ॥ तत् सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमत् । उवाच रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरञ्जयः ॥ ४० ॥ निर्याते तु जने तस्मिन् सागरो मकरालयः । द्वारकां रत्नसम्पूर्णां जलेनाप्लावयत्तदा ॥ ४१ ॥ यद्यद्धि पुरुषव्याघ्रो भूमेस्तस्या व्यमुञ्चत । तत्तत् संप्लावयामास सलिलेन स सागरः ॥ ४२ ॥ तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः । तूर्णात्तूर्णतरं जग्मुरहोदैवमिति ब्रुवन् ४३ काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च । निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनञ्जयः ॥ ४४ ॥ स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् । देशे गोपशुधान्याढ्ये निवासमकरोत् प्रभुः॥४५॥ ततो लोभः

उनकी अनेकों हजार, प्रयुत और अर्बुदकी संख्याओंकी टोलियें द्वारकासे बाहर निकलीं ॥ ३९ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ, वैरियोंके नगरों को जीतने वाला अर्जुन समुद्रकी समान वृष्णियोंके इस बड़े और धनवान् टोलेको लेकर चलदिया ॥ ४० ॥ मनुष्य नगरसे बाहरको निकल रहे थे, कि-मगर मच्छोंके मन्दिररूप समुद्रने रत्नोंसे भरा द्वारकाको जलसे डुबोदिया ॥ ४१ ॥ उस भूमिके जिस२ भागको उस पुरुषसिंहने छोड़ा उस २ भागको जलसे डुबोताहुआ समुद्र बढ़आया॥४२॥उस अद्भुत दृश्यको देखकर द्वारकावासी मनुष्य 'हायरे प्रारब्ध' कहते हुए बड़ी शीघ्रतासे आगे को चलेगये ॥ ४३ ॥ फिर रमणीय वन, पर्वत और नदियों पर विश्राम करता हुआ अर्जुन वृष्णियोंकी स्त्रियोंको लिए हुए चला आ रहा था । ४४ । उस बुद्धिमान् समर्थ अर्जुनने पंजाबमें पहुँचकर गौ, पशु और धान्यसे भरपूर उस प्रदेशमें एक बड़ी समृद्धिवाली छावनी डाली । ४५ । हे भरतवंशी ! उस समय जिनके पति मारे गये थे ऐसी उन स्त्रियोंको लिए हुए अकेला अर्जुन जारहा था, यह देखकर वहाँके लुटेरोंके चित्तमें लोभ

समभवद्दस्यूनां निहतेश्वराः । दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ।। ४६ ।। ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः । आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्याशुभदर्शिनः ।। ४७ ।। अयमेकोऽर्जुनो धन्वी वृद्धबालं हतेश्वरम् । नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्चेमे हतौजसः ४८ ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः । अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ।। ४९ ।। महता सिंहनादेन त्रासयन्तः पृथग्जनम् । अभिपेतुर्वधार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ।। ५० ।। ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः । उवाच तान्महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ।। ५१ ।। निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि जीवितुमिच्छथ । इदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ।। ५२ ।। तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्थीकृत्य तद्वचः । अभिपेतुर्जनं मूढा वार्य-

---

आया ।।४६।। तब जिनके चित्तको लोभने दबा लिया था ऐसे पाप कर्म करने वाले, विकराल सूरत वे आभीर इकट्ठे होकर संमति करने लगे । ४७ । यह अकेला धनुषधारी अर्जुन हमारे देशको लाँघकर बूढे, बालक और स्त्रियोंकी इस टोलीको लिये हुए जारहा है और अब इन योधाओंका उत्साह भी नष्ट होगया है ।। ४८ ।। तदनन्तर जिनके पास प्रहार करनेके लिए केवल बाँसकी लाठियें ही थीं ऐसे वे लूटका माल लेनेवाले हजारों लुटेरे वृष्णियोंके टोलेपर टूटपड़े ।४९। और बड़े गरजते (डाटते) हुए हरएकको त्रास देने लगे, समयके उलट फेरके प्रेरणा किये हुए मारने पर ही पिल पड़े ।।५०।। तब अपने पैदलोंके सहित अर्जुन एक साथ पीछेको लौटा. और मानो हँसता हो इस प्रकार महाबाहु अर्जुनने उनसे कहा, कि–। ५१ । अरे अधर्मको जानने वालो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो पीछेको लौटजाओ ! (नहीं तो) अभी इन मेरे बाणोंसे भिदे हुए और घायल हुए शोक करने लगोगे ।।५२।। उस वीर अर्जुनने उनसे ऐसा कहा

माणाः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥ ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् । आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथञ्चन ॥ ५४ ॥ चकार सज्जं कृच्छ्रेण सम्भ्रमे तुमुले सति । चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ ५५ ॥ वैकृत्यन्तन्महद्दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथा युधि । दिव्यानां महदस्त्राणां विनाशाद्व्रीडितोऽभवत् ॥ ५६ ॥ वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्च रथयोधिनः । न शेकुरावर्त्तयितुं ह्रियमाणञ्च तं जनम् ॥ ५७ ॥ कलत्रस्य बहुत्वाद्धि संपतत्सु ततस्ततः । प्रयत्नमकरोत् पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥५८॥ मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः । समन्ततो व्यकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥ ५९ ॥ ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो

परन्तु इस बातको उन्होंने कुछ भी नहीं गिना और बार २ मना करने पर भी वे मूढ उस टोलेके ऊपर चढते चले आये ॥५३॥ तब अर्जुनने उस महान् अजर, दिव्य गाण्डीव धनुषको बडी कठिनतासे चढाना आरंभ किया ॥ ५४ ॥ जब कि—बडी भारी गडबडी मचरही थी, उस समय परिश्रम करके उसने उसको तयार किया, फिर उसने अपने शस्त्रोंका ध्यान किया, परन्तु उसको उनका स्मरण ही नहीं हुआ ॥ ५५ । इस युद्धमें अपनी भुजाके महान् बलको विकार पाया हुआ देखकर तथा अपने महान् दिव्य अस्त्रोंके नाशसे वह लज्जित होगया ॥ ५६ ॥ तथा हाथी घोड़े और रथोंपर-लडनेवाले वे सब वृष्णि योधा उस टोलेको लुटते हुए रोक नहीं सके ॥ ५७ ॥ वह स्त्रियोंकी टोली बहुत बडी थी, इसलिये लुटेरे जहाँ तहाँ उसके ऊपर टूटपड़े, तथापि अर्जुनने उस स्त्रीमण्डलकी रक्षा करनेके लिये उद्योग किया ॥ ५८ ॥ कितनी ही स्त्रियें सब योधाओंके देखते हुए चारों ओरसे घसीटी गयीं, कितनी ही राजीखुशीसे चली गयीं, ॥ ५९ ॥ फिर धनञ्जय पार्थने गाण्डीव धनुषमेंसे

धनञ्जयः । जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः॥६०॥
क्षणेन तस्य ते राजन् क्षयं जग्मुरजिह्मगाः । अक्षया हि पुरा
भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः ॥ ६१ ॥ स शरक्षयमासाद्य दुःख-
शोकसमाहतः । धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत् पाकशासनिः॥६२॥
प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः । जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः
समन्ताज्जनमेजय ॥ ६३ ॥ धनञ्जयस्तु दैवं तत् मनसाचिन्तयत्
प्रभुः । दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥६४॥ अस्त्रा-
णाञ्च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात् । धनुषश्चाविधेयत्वात्
शराणां संक्षयेण च ॥ ६५ ॥ बभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनु-
चिन्तयन् । न्यवर्त्तत ततो राजन्नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६६ ॥

छूटेहुए बाणोंसे और वृष्णियोंके हजारों नौकरोंकी सहायतासे बडी घबडाहटसे सहस्त्रों लुटेरोंको मारडाला ॥ ६० ॥ परन्तु हे राजन्! थोडी ही देरमें उसके बाण निवडगये, पहले अर्जुनके बाण निवडते नहीं थे परन्तु इस समय घावमेंसे निकलते हुए रुधिर आदिका भोजन करनेवाले बाण निवडगये ॥६१॥ अपने बाणोंके निवडजानेसे बडे ही दुःख और शोकमें पडाहुआ इन्द्रपुत्र अर्जुन अपने धनुषकी नोकसे लुटेरोंको मारनेलगा ॥६२॥ परन्तु जनमेजय! अर्जुनके देखते २ में ही वृष्णि और अन्धकोंकी श्रेष्ठ स्त्रियोंको वे म्लेच्छ लुटेरे चारों ओरसे पकडकर लेगये ॥ ६३ ॥ तब बलवान् अर्जुन अपने मनमें विचारने लगा, कि-यह सब दैवकी लीला है, फिर दुःख और शोकसे घिरा हुआ वह लम्बे२ श्वास लेनेलगा ॥ ६४ ॥ अस्त्रोंका नाश होजानेसे, भुजबलका क्षय होजानेसे, धनुषके इच्छानुसार काम न देनेसे और बाणोंके निवडजानेसे ॥ ६५ ॥ अर्जुन विमना (निरुत्साह) होगया, हे राजन्! यह सब दैवकी लीला है,ऐसा विचारता हुआ वह पीछेको लौटा और फिर बडबडानेलगा,कि नहीं ऐसा नहीं है६६फिर वह

ततः स शेषमादाय कलत्रस्य महामतिः । हृतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६७ ॥ एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम् । न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनञ्जयः ६८ हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरं मार्त्तिकावतम् । भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः६९ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः । वीरैर्विहीनान् सर्वांस्तान् शक्रप्रस्थे न्यवेशयत् ॥ ७० ॥ यौयुधानिं सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम् । न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥ ७१ ॥ इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा । वज्रेणाक्रूरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ७२ ॥ रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि । देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ ७३ ॥ सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य सम्मताः । वनं प्रविविशुः

महाबुद्धिमान् उस स्त्रीमण्डलके शेषभागको, कि-जिसके बहुतसे रत्न लुटगये थे, साथ लेकर कुरुक्षेत्रमें आपहुँचा ॥६७॥ कुरुवंशी अर्जुनने इसप्रकार लुटते २ जो शेष रहगया था उस वृष्णियोंके समूहको जहाँ तहाँ बसादिया ॥ ६८ ॥ नरश्रेष्ठ अर्जुनने कृतवर्मा के पुत्रको आर्त्तिकावत (मृत्तिकावत्) नगरमें भोजराजकी शेष बची हुई स्त्रियोंके सहित छोडदिया६९फिर अर्जुनने बूढ़े, बालक और स्त्रियोंको साथ लेकर उस वीर पुरुषोंसे हीन सब मण्डलीको इन्द्रप्रस्थमें रक्खा ॥७०॥ इस धर्मात्मा अर्जुनने वृद्ध और बालकों को आगे करके सात्यकीके प्यारे तथा सरस्वतीके पुत्र यौयुधानिको इन्द्रप्रस्थमें रक्खा ॥ ७१ ॥ और शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुनने इन्द्रप्रस्थका राज्य वज्रको देदिया, वज्रके रोकने पर भी अक्रूरकी स्त्रियें जङ्गलमें चलीगयीं ॥ ७२ ॥ रुक्मिणी गान्धारी, शैब्या, हैमवती और देवी जाम्बवतीने अग्निमें प्रवेश किया ७३ ॥ हे राजन् ! सत्यभामा और दूसरी कृष्णकी मान्य स्त्रियें तपस्या करनेका निश्चय करके वनमें चलीगयीं ॥ ७४ ॥

राजंस्तापस्ये धृतनिश्चयाः ॥ ७४ ॥ द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमन्वयुः । यथार्हं संविभज्यैनान् वज्रे पर्यददज्जयः ॥ ७५ ॥ स तत् कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः । कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७६ ॥ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥*॥

वैशम्पायन उवाच । प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः । ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १ ॥ स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम् । अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत्ततः ॥२॥ स्वागतन्तेऽस्त्विति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः । आस्यतामिति होवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः ॥ ३ ॥ तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः । निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थं व्यासोऽब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥ नखकेशदशाकुम्भवारिणा किं समुक्षितः । आवीरजानुगमनं ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ॥ ५ ॥ युद्धे पराजितो

अर्जुनके पीछे २ आने वाले अन्य द्वारकावासियोंको अर्जुनने यथोचित रूपसे बाँटकर वज्रको सौंप दिया॥७५॥अर्जुन समयके अनुसार नेत्रोंमें आँसू भरेहुए जब इस कामको करचुका तब कृष्णद्वैपायनके आश्रममें पहुँचा और वहाँ ऋषिको बैठेहुए देखा७६

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् ! अर्जुनने सत्यवादीके आश्रममें प्रवेश करके सत्यवतीके पुत्र व्यासमुनिको एकान्तमें बैठे हुए देखा ॥ १ ॥ अर्जुन उन धर्मके ज्ञाता महाव्रतधारीके पास जाकर खड़ा होगया और उनको 'मैं अर्जुन हूँ' इसप्रकार अपना नाम बताया तब व्यासजी उसकी ओरको देखकर बोले ॥ २ ॥ प्रसन्नात्मा महामुनि सत्यवतीके पुत्र व्यासमुनिने कहा; कि-तू बहुत अच्छा आया, बैठ जा ॥ ३ ॥ फिर अर्जुनको बार२ लम्बे साँस भरता, चलितचित्त और उत्साहहीन देखकर व्यासजीने यह बात कही. कि-॥ ४ ॥ क्या तुझे किसीने नखोंके या केशोंके या वस्त्रके छोरके या घड़ेके जलसे न्हवादिया है क्या ? अथवा तूने रजस्वला स्त्रीके साथ समागम किया है? या तूने किसी ब्राह्मण

वासि गतश्रीरिव लक्ष्यसे। न त्वां प्रभिन्नं जानामि किमिदं भरत-र्षभ ॥६॥ श्रोतव्यञ्चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि । अर्जुन उवाच। यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पङ्कजलोचनः ॥ ७ ॥ स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः । मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ॥ ८ ॥ बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः । ये ते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ॥ ९ ॥ भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि । गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥१०॥ त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम् । हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ॥ ११ ॥ निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम् । पुनः पुनर्न मृष्यामि विनाशममितौजसः

को मारडाला है ? ॥ ५ ॥ अथवा तू युद्धमें किसीसे हारगया है ? कि-जिससे तू श्रीहीनसा दीखरहा है, मेरी समझमें तुझे किसीने हराया तो नहीं है।हे भरतसत्तम!फिर यह क्या है ?॥६॥ हे पार्थ ! (तेरा वृत्तान्त) यदि मेरे सुनने योग्य हो तो शीघ्र ही मुझे सुना, अर्जुनने कहा, कि-जिनका शरीर मेघकी समान था जिनके नेत्र बड़े २ कमलोंकी समान थे वह श्रीमान् ॥ ७ ॥ कृष्ण (अपने बड़े भाई) बलरामके साथ इस देहको छोड़कर स्वर्गमें चलेगये,ब्राह्मणोंके शापके कारण मूसलयुद्धमें वृष्णियोंका नाश होगया ॥८॥ रोमाञ्च खड़े करनेवाली और वीरोंका अन्त करनेवाली यह घटना प्रभासमें हुई है,इन सिंहकी समान अभिमान वाले महाबली महात्मा शूर भोज,वृष्णि और अन्धकोंने हे ब्रह्मन् ! युद्धमें एक दूसरेको मार डाला है, गदा, परिघ और शक्तिकी चोटको सहनेवाले, परिघकी समान भुजाओंवाले इन सबोंका पतेल नामकी घाससे नाश होगया,इस समयके उलटफेरको तो देखिये, बलवान् बाहुवाले इनमेंके पाँच सौ हजार (पाँच लाख) का नाश होगया ॥९-११॥ आपसमें एक दूसरेके सामने पडकर नष्ट होगये, इस दुःखको मैं बार२ नहीं सहसकता, उन अमित

साम् ॥ १२ ॥ चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः । शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ॥ १३ ॥ नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च । अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १४ ॥ न चेह स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविना कृतः। इतः कष्टतरं चान्यत् शृणु तद्वै तपोधन ॥ १५ ॥ मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः । पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्रशः ॥ १६ ॥ आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः। तत्राहं धनुरादाय नाशकं तस्य पूरणे ॥ १७ ॥ यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाऽभवत् । अस्त्राणि मे प्रनष्टानि विविधानि महामुने ॥ १८ ॥ शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः । पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १९ ॥ चतुर्भुजः पीतवासाः श्यामः पद्मदलेक्षणः ।

तेजस्वी यदुओंके और कीर्त्तिमान् कृष्णके विनाशका, सागरके सूखनेका, पर्वतोंके डगमगानेका, आकाशके गिरपडनेका तथा अग्निमें शीतलता आजानेका और शार्ङ्गधन्वाके विनाशका विचार करता हूँ तो मेरे चित्तमें तो यह बात आती है, कि—यह घटना विश्वासके योग्य नहीं है ॥ १२–१४ ॥ और कृष्णके विना मैं इसलोकमें रहना नहीं चाहता, हे तपोधन ! दूसरी घटना इससे भी अधिक कष्टदायक हुई है, उसको भी सुनिये ॥१५॥ उसका बार२ विचार करने पर मेरा मन टूटाजाता है, हे ब्रह्मन् ! मेरी दृष्टिके सामने वृष्णियोंकी हजारों स्त्रियोंको पंजाब देशके आभीर (लुटेरे) युद्धमें मेरे पीछे पकडकर ले गये, तहाँ मैंने धनुष हाथमें लिया, परन्तु उसको मैं चढा नहीं सका ॥ १६–१७ ॥ इस मेरी भुजाका बल जैसा पहले था वैसा वहाँ नहीं रहा, हे महामुने ! मेरे भाँति२ के अस्त्र भी नष्ट होगये ॥ १८ ॥ और एक क्षणमें ही चारों ओरसे मेरे बाण निबडगये ! वह अप्रमेय आत्मावाला, शङ्ख,चक्र और गदाको धारण करनेवाला चतुर्भुज, पीताम्बरधारी श्यामवर्ण,कमलदलकी समान नेत्रोंवाला और अति महान्प्रकाश

यश्च याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः ॥ २० ॥ प्रदहन् रिपुसैन्यानि न पश्याम्यहमच्युतम् । येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा ॥ २१ ॥ शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाद्व्यनाशयम् । तमपश्यन् विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम ॥ २२ ॥ परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च । विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २३ ॥ श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः ।प्रनष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः ॥ २४ ॥ उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम । व्यास उवाच।ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ २५ ॥ विनष्टाः कुरुशार्दूल न ताञ्छोचितुमर्हसि । भवितव्यं तथा तच्च दृष्टमेतन्महात्मनाम् ॥ २६ ॥ उपेक्षितञ्च

वाला जो पुरुष मेरे रथके आगे चला करता था ॥ १९—२० ॥ और जो वैरियोंके सेनादलको भस्म कर डालता था,उस अच्युत पुरुषको मैं यहाँ इस लोकमें नहीं देखता, जिसने पहले अपने तेजसे वैरियोंकी सेनाओंको भस्म करडाला था ॥ २१ ॥ और फिर मैंने उन सेनाओंको गाण्डीवमेंसे छोड़ेहुए बाणोंसे नष्ट किया था, हे सत्तम ! उस पुरुषको न देखनेसे मेरे मनमें दुःख होरहा है और मेरा मस्तिष्क चक्कर खाता है ॥२२॥ मनमें दुःखी और उत्साहहीन हुए मुझको जरा भी शान्ति नहीं मिलती है, वीर जनार्दनके बिना मुझे जीवित रहनेकी उमङ्ग भी नहीं होती ।२३। विष्णु चलेगये,यह सुननेके बादमें मुझे दिशाओंका भी भ्रम होने लगा है, ज्ञातियोंकी और जिसकी अपनी वीरता नष्ट होगयी है, ऐसा मैं हृदयशून्य हुआ इधर उधर भटकता फिरता हूँ ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! अब आप ही मुझे श्रेयका (क्या करना ठीक होगा इसका) उपदेश देसकते हैं, व्यासजीने उत्तर दिया, कि—वृष्णि और अन्धकोंके महारथी, ब्राह्मणोंके शापसे भस्म होगये ॥२५॥ और नष्ट होगये हैं, हे कुरुसिंह ! तुझे उनका शोक नहीं करना चाहिये, यह ऐसा ही होना (भावी) था,उन महात्माओंका यही

कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितुम् । त्रैलोक्यमपि गोविन्दः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥२७॥ प्रसहेदन्यथा कर्तुं कुतः शापं महात्मनाम् । रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ तव स्नेहात् पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः । कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ॥ २९ ॥ मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम् । त्वयापीह महत् कर्म देवानां पुरुषर्षभ ॥ ३० ॥ कृतं भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज । कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान् कुरुपुङ्गव ॥ ३१ ॥ गमनं प्राप्तकालन्त्व इदं श्रेयस्करं विभो । एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ॥ ३२ ॥ भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये ।कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय ॥ ३३ ॥

दैव था ॥ २६ ॥ और यद्यपि कृष्ण इसको टालसकते थे, तो भी उन्होंने जान बूझकर इसकी उपेक्षा की, वह गोविन्द तो तीनों लोकोंके समस्त स्थावर जङ्गमोंको पलटसकते थे ॥ २७ ॥ वह फिर महात्माओंके शापको क्यों नहीं पलट सकते थे ? (इससे प्रतीत होता है, कि–उनकी इच्छा ही ऐसी थी), जो चक्र और गदाको धारण करनेवाला पुरुष तेरे रथके आगे२ चलता था ॥२८॥ यह बात तेरे ऊपर उनका स्नेह होनेके कारण थी, वह पुराण ऋषि चतुर्भुज, विशाल नेत्रोंवाले वासुदेव श्रीकृष्ण पृथिवीके भारको उतारनेका काम करके अपने इस लोकके शरीरको छोडकर अपने उत्तम धामको चलेगये हैं हे पुरुषसत्तम ! हे महाबाहो ! यहाँ तूने भी भीमसेन और नकुल सहदेव जैसे सहायकोंको साथमें लेकर देवताओंका बडाभारी काम किया है, हे कुरुपुङ्गव ! मैं समझता हूँ, कि–तुम अपने काममें कृतकृत्य होगये ॥ २९–३१ ॥ हे विभो ! अब तुम्हारे भी जानेका समय आलगा है और यह मार्ग ही तुम्हारा कल्याण करनेवाला है, हे भारत ! ऐसी बुद्धि तेज और प्रतिपत्ति (भविष्यका ज्ञान) अभ्युदयके समय होता है और जब अधोगति होनेवाली होती है

काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया । स एष बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः॥३४॥ स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः । कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ॥ ३५ ॥ पुनरेष्यन्ति ते हस्तं यदा कालो भविष्यति । कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ॥ ३६ ॥ एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ । वैशम्पायन उवाच । एतद्वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥३७॥ अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् । प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम्। आचष्ट तद्यथा वृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति३८

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां मौसलपर्वणि व्यासार्जुनसंवादे अष्टमोऽध्यायः।

तो जाता रहता है, हे धनंजय! इस सबका कारण काल है काल ही जगत्‌का बीज है ॥ ३३ ॥ काल ही जब उसकी इच्छामें आता है तो फिर देदेता है और फिर लेलेता है, इसलिये ही एक मनुष्य पहले बलवान् होकर फिर दुर्बल होजाता है ॥ ३४ ॥ वही एक वार राजा होकर फिर इसही लोकमें दूसरोंका आज्ञाकारी बन जाता है, जैसे तेरे शस्त्र अपने कर्त्तव्य कामको करके आये थे तैसे ही चले गये ॥ ३५ ॥ जब फिर समय आवेगा तो वेही शस्त्र तेरे हाथमें फिर आजायँगे, हे भारत! इस समय अब तुम्हारा समय उत्तम गतिको प्राप्त होनेका है ॥ ३६ ॥ हे भरतसत्तम ! मुझे तो यह परम कल्याण मालूम होता है वैशम्पायन कहते हैं, कि–अमेय तेजवाले व्यासजीके ऐसा कहने पर॥३७॥अर्जुन उनकी आज्ञा लेकर हस्तिनापुर नामक नगरको चलागया वह वीर उस नगरीमें घुसकर राजा युधिष्ठिरसे मिला और वृष्णि तथा अन्धकों के वंशमें जैसी घटना हुई थी उसका सब समाचार सुनाया॥३८॥

श्रीमहाभारतका मौसलपर्व, मुरादाबादनिवासी भारद्वाज–गोत्र गौड़वंश्य-पण्डित भोलानाथात्मज ऋषिकुमार रामस्वरूपशर्मा द्वारा सम्पादित हिन्दी-भाषानुवाद सहित समाप्त.

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

❋ महाप्रस्थानिक-पर्व ❋

भाषा-टीका-सहित ।




॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

महाप्रस्थानिक-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच । एवं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम् । पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवङ्गते ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत् । प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥ कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते । कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ॥ ३ ॥ इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः काल इति ब्रुवन् । अन्वपद्यत तद्वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः ॥ ४ ॥ अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ

श्रीनारायण,नरोंमें श्रेष्ठ नर तथा सरस्वती देवीको प्रणाम कर के जय (महाभारत) का कीर्त्तन करे ॥ॐ॥ जनमेजयने बूझा कि–हे भगवन् ! वृष्णि और अन्धकोंके कुलमें मौसल–युद्ध होने का समाचार सुनकर तथा कृष्णके स्वर्गको पधारजाने पर पांडवों ने क्या किया ? ॥ १ ॥ वैशम्पायनने उत्तर दिया, कि-कौरवराज युधिष्ठिरने वृष्णियोंके महानाशकी बात सुनकर वहाँ (इन्द्रप्रस्थ)से जानेका विचार करके अर्जुनसे यह बात कही, कि–॥ २ ॥ हे महामते ! काल सब प्राणियोंको पकाता है मैं कालके पाशका सन्मान करता हूँ और तू भी उसको देख सकता है ॥ ३ ॥ युधि-ष्ठिरके ऐसा कहने पर अर्जुनने 'काल २' कहकर अपने बुद्धिमान् बड़े भाईकी बातका अनुमोदन किया (अर्थात् कालका निवारण कोई नहीं करसकता फिर देर क्यों है,)४ अर्जुनके मतको जान

तथा । अन्वपद्यंत तद्वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना ॥ ५ ॥ ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया । राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः ॥६ ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम् । दुःखार्त्तश्चाब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः ॥ ७ ॥ एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति । यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह ॥ ८ ॥ परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः । वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा धर्मराजः स वासुदेवस्य धीमतः । मातुलस्य च वृद्धस्य रामादीनां तथैव च१० भ्रातृभिः सह धर्मात्मा कृत्वोदकमतन्द्रितः । श्राद्धान्युद्दिश्य सर्वेषां

कर भीमसेनने तथा नकुल सहदेवने भी अर्जुनने जो बात कही थी उसका ही समर्थन किया॥५॥ फिर धर्मकी कामनासे संसार को छोडकर जाना चाहनेवाले उन पाण्डवोंने युयुत्सुको बुलाया और युधिष्ठिरने उस वनैनीके पुत्रको सब राज्य सौंप दिया (अर्थात् अधिकार न होनेसे राज्याभिषेक न करके देखभाल करने का काम सौंपदिया)॥ ६ ॥ और राजा परीक्षितका अपने राजसिंहासन पर अभिषेक करदिया, फिर पाण्डवोंके बड़ेभाई राजा युधिष्ठिरने दुःखित होते हुए सुभद्रासे कहा, कि-॥ ७ ॥ यह तेरे पुत्रका पुत्र कुरुओंका राजा होगा और जो यदुवंशी बचरहे हैं, उनका राजा वज्रको करदिया है ॥ ८ ॥ हस्तिनापुरमें परीक्षितका और इन्द्रप्रस्थमें यादवोंका राज्य होगा, राजा वज्रकी तुझे रक्षा करनी है, इसलिये अपने मनको अधर्मकी ओर न लेजाना (अपने पोतेके लाभके लिए ही अपने पीहरवालेको, इन्द्रप्रस्थ पाण्डवोंका था ऐसा समझकर दुःख न देना) ॥९॥ इतना कहकर अपने भाइयों सहित धर्मात्मा धर्मराजने श्रीमान् वासुदेवका, अपने बूढे मामा वसुदेवका तथा बलराम आदिका तर्पण किया, उन्होंने सावधानीके साथ सबके नाम लेकर विधि-

चकार विधिवत्तदा ॥ ११ ॥ द्वैपायनं नारदञ्च मार्कण्डेयं तपोधनम् । भारद्वाजं याज्ञवल्क्यं हरिमुद्दिश्य यत्नवान् ॥१२॥ अभोजयत् स्वादु भोज्यं कीर्त्तयित्वा च शार्ङ्गिणम् । ददौ रत्नानि वासांसि ग्रामानश्वान्रथांस्तथा ॥ १३ ॥ स्त्रियश्च द्विजमुख्येभ्यस्तदा शतसहस्रशः । कृपमभ्यर्च्य च गुरुमथ पौरपुरस्कृतम् १४ शिष्यं परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः । ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥ सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः । ते श्रुत्वैव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः ॥ १६ ॥ भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः । नैवं कर्त्तव्यमिति ते तदोचुस्तं नराधिपम् ॥ १७ ॥ न च राजा तथाऽकार्षीत् कालपर्यायधर्मवित् । ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपदं जनम् ॥१८॥ गम-

पूर्वक उनके श्राद्ध किये॥१०–११॥फिर द्वैपायन व्यास, नारद, तपोधन मार्कण्डेय भारद्वाज और याज्ञवल्क्यको हरिके लिये यत्न के साथ बुलवाकर॥१२॥ स्वादिष्ट भोजन जिमाया तथा कृष्णकी कीर्ति गाकर रत्न, वस्त्र, ग्राम, घोडे, रथ ॥ १३ ॥ तथा सहस्रों दासियें मुख्य२ ब्राह्मणोंको दानमें दीं और नगरनिवासियोंको आगे रख कृपाचार्यका, गुरुके पदपर अभिषेक करदिया ॥ १४ ॥ और भरतसत्तम युधिष्ठिरने परीक्षितको उनके हाथमें शिष्यरूपसे सौंपदिया, फिर सब प्रजाओंको बुलाकर राजर्षि युधिष्ठिरने अपनी विचारी हुई सब बात सुनाई, वे पुरवासी और देशवासी युधिष्ठिरकी इस बातको सुनते ही मनमें बहुत घबडाये और उनकी इस बातको ठीक नहीं बताया और उस समय वे सब राजासे कहनेलगे, कि आपको ऐसा नहीं करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥ परन्तु कालके उलट फेरके धर्मको जाननेवाले धर्मराजने तैसा नहीं किया(उनकी बात नहीं मानी) तदनन्तर धर्मात्मा युधिष्ठिरने नगरके और

नाय मतिं चक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा । ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १९ ॥ उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत । भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ २० ॥ तथैव जगृहुः सर्वे वल्कलानि नराधिप । विधिवत् कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ ॥ २१ ॥ समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन् प्रतस्थुर्नरपुङ्गवाः । ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान् ॥ २२ ॥ प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान् पुरा द्यूतजितान् यथा । हर्षोऽभवच्च सर्वेषां भ्रातृणां गमनं प्रति ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरमतं ज्ञात्वा वृष्णिक्षयमवेक्ष्य च । भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः ॥ २४ ॥ आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात् । पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तः-

---

मान्तके रहनेवालोंको समझाकर ॥ १८ ॥ जानेका निश्चय करलिया और उनके भाइयोंने भी ऐसा ही निश्चय किया, फिर उन कुरुवंशी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने शरीरपरसे आभूषणोंको उतार कर वल्कल धारण करलिये, भीम अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी, इन सबोंने भी हे राजन् ! उसी प्रकार वल्कल धारण करलिये, हे भरतसत्तम ! फिर विधिविधानसे नैष्ठिकी (संसारसे त्यागनेके समयकी) इष्टि करवाकर उन नरश्रेष्ठोंने अपने (अग्निहोत्रके) अग्नियोंको जलमें पधरादियो और चल दिये, उस समय नगरकी सब स्त्रियें, जैसे पहले जुएमें हारजाने पर वनको गए थे तैसे ही इस समय द्रौपदीके सहित छहों नरश्रेष्ठोंको महलसे निकलते देखकर जोरसे रोनेलगीं, परन्तु उन सब भाइयोंको इस यात्राके लिये बडा हर्ष हुआ ॥ १९-२३ ॥ युधिष्ठिरके निश्चयको जानकर और यादवोंका नाश हुआ देखकर पाँचों भाई, छठी द्रौपदी और सातवाँ कुत्ता ये सब चलदिये २४ छहोंको साथ ले स्वयं सातवें राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुरमेंसे बाहर निकले, कितनी ही दूरतक नगरनिवासी तथा सब अन्तःपुर उनके

पुरैस्तथा ॥ २५ ॥ न चैनमशक्नत् कश्चिन्निवर्त्तस्वेति भाषितुम् । न्यवर्तन्त ततः सर्वे नरा नगरवासिनः ॥ २६ ॥ कृपप्रभृतयश्चैव युयुत्सुं पर्यवारयन् । विवेश गङ्गां कौरव्य उलूपी भुजगात्मजा॥२७ चित्राङ्गदा ययौ चापि मणिपूरपुरं प्रति । शिष्टा परिक्षितं त्वन्या मातरः पर्यवारयन् ॥ २८ ॥ पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी । कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः ॥ २९ ॥ योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः । अभिजग्मुर्बहून् देशान् सरितः सागरांस्तथा ॥ ३० ॥ युधिष्ठिरो ययावग्रे भीमस्तु तदनन्तरम् । अर्जुनस्तस्य चान्वेव यमौ चापि यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥ पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा । द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा ययौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥ श्वा चैवानुययावेकः प्रस्थितान् पाण्डवान्

पीछे२ गया ॥ २५ ॥ परन्तु पीछेको लौटजाओ, उनसे यह बात कोई नहीं कहसका, फिर धीरे २ सब नगरनिवासी पीछेको लौट आये ॥ २६ ॥ कृपाचार्य आदि युयुत्सुको घेरे हुए पीछेको लौटे, हे कुरुवंशी जनमेजय ! नागकन्या उलूपी गंगामें प्रवेश करगयी२७ चित्राङ्गदा मणिपुर नगरको चलीगयी, बाकीकी सब मातायें परीक्षितको घेरे हुए पीछेको लौटआयीं ॥ २८ ॥ हे जनमेजय ! महात्मा पाण्डव तथा यशस्विनी द्रौपदी उपवास करते२ पूर्वदिशाकी ओरको मुखकर आगेको चलनेलगे ॥ २९ ॥ वे महात्मा योगके नियमोंसे युक्त होकर त्यागधर्मका सेवन करते हुए बहुतसे देश, नदी और सागरोंकेपार होगये ॥ ३० ॥ युधिष्ठिर आगे२ चलरहे थे, उनके पीछे भीम, भीमके पीछे अर्जुन अर्जुनके पीछे क्रमसे नकुल और सहदेव चलरहे थे ॥ ३१ ॥ हे भरतसत्तम ! सबके पीछे उत्तम नितम्बोंवाली, श्यामवर्ण, कमलसे नेत्रोंवाली ,स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी चलरही थी ॥ ३२ ॥ जब पाण्डव वनको जाने लगे, उस समय उनके साथ २ एक कुत्ता भी पीछे लगलिया था, वे वीर

वनम् । क्रमेण ते ययुर्वीरा लौहित्यं सलिलार्णवम् ॥ ३३ ॥ गाण्डीवन्तु धनुर्दिव्यं न मुमोच धनञ्जयः । रत्नलोभान्महाराज ते चाक्षय्ये महेषुधी ॥ ३४ ॥ अग्निं ते ददृशुस्तत्र स्थितं शैलमिवाग्रतः । मार्गमावृत्य तिष्ठन्तं साक्षात् पुरुषविग्रहम् ॥ ३५ ॥ ततो देवः स सप्तार्चिः पाण्डवानिदमब्रवीत् । भो भोः पाण्डुसुता वीराः पावकं मां निबोधत ॥३६॥ युधिष्ठिर महाबाहो भीमसेन परन्तप । अर्जुनाश्विसुतौ वीरौ निबोधत वचो मम ॥३७॥ अहमग्निः कुरुश्रेष्ठा मया दग्धं च खाण्डवम् । अर्जुनस्य प्रभावेण तथा नारायणस्य च ॥ ३८ ॥ अयं वः फाल्गुनो भ्राता गाण्डीवं परमायुधम् । परित्यज्य वने यातु नानेनार्थोऽस्ति कश्चन ॥ ३९ ॥ चक्ररत्नन्तु यत् कृष्णे स्थितमासीन्महात्मनि । गतं तच्च पुनर्हस्ते

पुरुष धीरे २ लौहित्य नामक जलभण्डार(सरोवर)पर पहुँचे ३३ परन्तु हे महाराज ! अर्जुनने अपना दिव्य गाण्डीव धनुष और अक्षय वाणोंवाले बड़े २ भाथे परमोत्तम रत्नरूप होनेसे नहीं त्यागे थे ॥ ३४ ॥ उस सरोवर पर उन्होंने अपने आगे, मानो बड़ाभारी पहाड हो ऐसे मार्गको रोककर साक्षात् पुरुषके शरीरमें खड़े हुए अग्निको देखा ॥ ३५ ॥ उस सप्तार्चि (सात ज्वालाओं वाले) अग्निदेवने पाण्डवोंसे यह बात कही, कि-अरेरे पाण्डुके पुत्रो ! तुम्हें मालूम हो, कि-मैं अग्नि हूँ ॥ ३६ ॥ हे महाबाहु युधिष्ठिर ! हे परन्तप भीमसेन ! हे अर्जुन ! हे अश्विनीकुमारके दोनो पुत्रो ! मेरी बात सुनो ॥३७॥ हे कुरुश्रेष्ठा ! मैं अग्नि हूँ, अर्जुनके तथा नारायणके प्रभावसे मैंने खाण्डव वनको जलाया था॥३८॥यह तुम्हारा भाई अर्जुन ! अपने परम आयुध गाण्डीव को यहाँ ही छोड़कर वनमें आनन्दसे चला जाय, अब इसको धनुषकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ३९ ॥ वह चक्ररूप रत्न जो महात्मा श्रीकृष्णके पास था, वह भी चलागया है और अवसर

कालेनैष्यति तस्य ह ॥ ४० ॥ वरुणादाहृतं पूर्वं मयैतत् पार्थकारणात् । गाण्डीवं धनुषां श्रेष्ठं वरुणायैव दीयताम् ॥ ४१ ॥ ततस्ते भ्रातरः सर्वे धनञ्जयमचोदयन् । स जले प्राक्षिपच्चैतत् तथाऽक्षय्ये महेषुधी ॥ ४२ ॥ ततोऽग्निर्भरतश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत । ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्ते दक्षिणामुखाः ॥ ४३ ॥ ततस्ते तूत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः । जग्मुर्भरतशार्दूल दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ॥ ४४ ॥ ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते । ददृशुर्द्वारकां चापि सागरेण परिप्लुताम् ॥ ४५ ॥ उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरतसत्तमाः । प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः ॥४६ इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिकपर्वणि प्रथमोऽध्यायः १

वैशम्पायन उवाच । ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः ।

आते ही वह फिर उनके हाथमें आजायगा ॥ ४० ॥ अर्जुनके लिये ही पहले वरुणके पाससे सब धनुषोंमें श्रेष्ठ यह गाण्डीव धनुष मैंने लिया था, अब यह वरुणको ही फिर देदेना चाहिये ४१ तब उन सब भाइयोंने ऐसा ही करनेके लिये अर्जुनको दबाया, तब उसने वह धनुष तथा अक्षय बाणोंके बड़े भारी दोनों भाथे जलमें डालदिये ॥ ४२ ॥ हे भरतसत्तम ! फिर अग्नि तहाँ ही अन्तर्धान होगया और वीर पाण्डव दक्षिण दिशाकी ओरको मुख करके आगेको चलदिये ॥ ४३ ॥ हे भरतशार्दूल ! तदनन्तर लवणसागरके उत्तरी किनारे २ चलतेहुए वे दक्षिण पश्चिम दिशा (नैऋत्य कोणमें) चलने लगे॥४४॥ तहाँसे वे फिर पश्चिमकी ओरको लौटे, तहाँ उन्होंने समुद्रमें डूबी हुई द्वारकाको देखा ४५ तदनन्तर वे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ पुरुष फिर पश्चिमकी ओरको लौटे, योगके नियमोंका पालन करनेवाले उन्होंने पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनी चाही ॥ ४६ ॥ पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ *

वैशम्पायन कहते हैं, कि–तदनन्तर आत्माको नियममें रखने

ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम् ॥१॥ तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम् । अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम् २ तेषान्तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम् । याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥३॥ तान्तु प्रपतितां दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । उवाच धर्मराजानं याज्ञसेनीमवेक्ष्य ह ॥४॥ नाधर्मश्चरितः कश्चि-द्राजपुत्र्या परन्तप । कारणं किन्नु तद्ब्रूहि यत् कृष्णा पतिता भुवि ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनञ्जये । तस्य तत् फलमद्यैषा भुंक्ते पुरुषसत्तम॥ ६ ॥ वैशंपायन उवाच । एवमुक्त्वानवेक्ष्यैनां ययौ भरतसत्तमः । समाधाय मनो धीमान् धर्मात्मा पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥ सहदेवस्ततो विद्वान् निपपात

वाले, योगसाधनामें लगेहुए, उत्तर दिशाकी ओरको चलनेवाले पाण्डवोंने महागिरि हिमालयको देखा ॥ १ ॥ उसको भी लाँघ कर उन्होंने बालूका समुद्र देखा, फिर शिखरवाले पर्वतोंमें श्रेष्ठ महापर्वत मेरुको देखा ॥ २ ॥ योगधर्मका पालन करनेवाले शीघ्र चलनेवाले उन सबोंमेंसे द्रौपदी, जो योगके नियमसे भ्रष्ट होगयी थी वह पृथ्वी पर गिर गयी ॥ ३ ॥ उसको जोरसे पछाड खाकर गिरी हुई देखकर बलवान् भीमसेनने उसकी ओरको देखते हुए धर्मराजसे कहा, कि—॥ ४ ॥ हे परन्तप ! इस राजपुत्रीने कोई भी अधर्म नहीं किया है,इसलिये जिस कारणसे यह कृष्णा भूमि पर गिरपडी है वह कारण आप मुझे बताइये ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर ने कहा, कि—हे सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! इसका अर्जुनके ऊपर विशेष कर बडाभारी पक्षपात था, यह उसका ही फल भोगरही है ६ वैशम्पायन कहते हैं, कि—ऐसा कहकर उस द्रौपदीकी ओरको न देखकर भरतवंशमें श्रेष्ठ, पुरुषोंमें ऋषभ समान बुद्धिमान् धर्मात्मा युधिष्ठिर मनको दृढ रखकर आगेको चलदिये ॥ ७ ॥ फिर कुछे आगे चलकर विद्वान् सहदेव पछाड़ खाकर भूमिपर गिरपडा

महीतले। तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ॥ ८ ॥ योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः। सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच। आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन। तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः १० वैशम्पायन उवाच। इत्युक्त्वा तं समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा। भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥ कृष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवम्। आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह ॥ १२ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे नकुले चारुदर्शने। पुनरेव तदा भीमो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ योऽयमक्षतधर्मात्मा भ्राता वचनकारकः। रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि १४ इत्युक्तो भीमसेनेन प्रत्युवाच युधिष्ठिरः। नकुलं प्रति धर्मात्मा

उसको भी गिराहुआ देखकर भीमसेनने राजासे बूझा, कि-८ जिसने हम सबोंकी सेवा करनेमें अभिमान नहीं किया ऐसा यह माद्रीका पुत्र पृथ्वी पर क्यों गिर पडा ? ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-यह किसीको भी अपनी समान बुद्धिमान् नहीं समझता था उस दोषके कारणसे ही यह राजकुमार पछाड खाकर गिर पडा है ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-ऐसा कहकर वह कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सहदेवको तहाँ ही छोड भाइयों तथा कुत्तेके सहित आगेको चलदिये ॥ ११ ॥ द्रौपदीको तथा पाण्डुकुमार सहदेवको पछाड खाकर गिरे हुए देख भाइयोंके ऊपर प्रीति रखनेवाला दयालु शूर नकुल भी पछाड खाकर गिर गया॥१२॥जब सुन्दर दर्शनवाला वीर नकुल गिरगया तब भीमने राजा युधिष्ठिरसे फिर कहा, कि-॥ १३ ॥ अक्षत धर्मरूप आत्मावाला, हमारे कहनेके अनुसार काम करनेवाला अनुपमरूपवान् हमारा भाई यह नकुल इस लोकमें भूमिपर क्यों गिरगया ? ॥१४॥ भीमसेनके ऐसा कहने पर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिरने नकुलके

सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ १५ ॥ रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम् । अधिकश्चाहमेवैकं इत्यस्य मनसि स्थितम् ॥१६॥ नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर । यस्य यद्विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते ॥ १७॥ तांस्तु प्रपतितान् दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः । पपात शोकसन्तप्तस्ततोऽनु परवीरहा ॥ १८ ॥ तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे पतिते शक्रतेजसि । म्रियमाणे दुराधर्षे भीमो राजानमब्रवीत् ॥ १९ ॥ अनृतं न स्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः । अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ॥ २० ॥ युधिष्ठिर उवाच । एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत् । न च तत् कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत् ॥२१॥ अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः

विषयमें कहा, कि—॥ १५ ॥ यह अपनेको देखकर कहा करता था, कि—मेरी समान रूपवान् कोई नहीं है, इसका ऐसा दृढ निश्चय था, कि—रूपमें एक मैं ही सबसे अधिक हूँ ।१६।इसलिये यह नकुल गिरगया है, हे भीम ! अब तू आगेको चल, हे वीर ! जिसके लिए जो निश्चय हो चुका है वह उसको अवश्य ही भोगना पड़ेगा ॥ १७ ॥ उनको गिरे देखकर श्वेत घोड़ेवाला तथा शत्रुओंके वीरोंको मारनेवाला और शोकसे सन्ताप पाता हुआ पाण्डव अर्जुन भी गिरपडा ॥ १८ ॥ पुरुषोंमें सिंहसमान इन्द्रकी समान तेजस्वी, जिसका पराजय करना बडा ही कठिन था वह मरनेकी अनी पर आकर गिर पडा तब भीमने राजासे कहा, कि—॥ १९ ॥ इस महात्माने तो हँसी की बातोंमें भी कभी मिथ्या भाषण किया हो, यह मुझे याद नहीं आता तो यह किस कर्मका खोटा फल है, कि—जिसके कारणसे यह भूमि पर गिरा है ? ॥ २० ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—इस अर्जुनने " एक दिनमें सब शत्रुओंको भस्म करडालूँगा,, ऐसा कहा था, परन्तु इस शूरताके अभिमानीने अपने कहनेके अनुसार वह काम नहीं किया इस लिये यह गिरगया है ॥ २१ ॥ और यह अर्जुन सब धनुष-

तथा चैतन्न तु तथा कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा भीमोऽथ निपपात ह । पतितश्चाब्रवीद्भीमो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥२३॥ भो भो राजन्नवेक्षस्व पतितोऽहं प्रियस्तव । किं निमित्तं च पतनं ब्रूहि मे यदि वेत्थ ह२४ युधिष्ठिर उवाच । अतिभुक्तञ्च भवता प्राणेन च विकत्थसे । अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानवलोकयन् । श्वाप्येकोऽनुययौ यस्ते बहुशः कीर्त्तितो मया ॥ २६ ॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः सन्नादयन् शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः । रथेनोपाययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम् ॥ १॥ स भ्रातॄन् पतितान् दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । अब्रवीच्छोकसन्तप्तः सहस्राक्षमिदं

धारियोंका तिरस्कार करता था, परन्तु अपनी उन्नति चाहनेवाले को ऐसा नहीं करना चाहिए ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर आगेको चलदिए, इतनेमें ही भीमसेन भी पछाड खाकर भूमिपर गिरगया, गिरे हुए भीमसेनने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, कि-॥ २३ भो भो राजन् ! देखो२ मैं तुम्हारा प्यारा भाई गिरगया हूं मैं किस कारणसे गिरगया हूँ उसको यदि तुम जानने हो तो बताओ ? ॥ २४ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-तू बहुत ही अधिक भोजन किया करता था, और हे पार्थ ! अपने प्राणबलके अभिमानसे दूसरों की परवाह न करके चाहे सो बात कहदेता था, इसलिए तू भूमिपर गिरगया है २५ ऐसा कहकर पीछेको विना देखे ही वह महाबाहु आगेको चले गये, केवल एक कुत्ता उनके पीछे२ गया, कि-जिसकी मैंने बडी कीर्त्ति गायी है ॥ २६ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-फिर आकाश और भूमिको सब ओरसे गुञ्जारता हुआ इन्द्र रथमें बैठकर आया और युधिष्ठिरसे कहा, कि-तुम रथमें बैठजाओ ॥१॥ तब अपने भाइयोंको गिरे

वचः ॥२॥ भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छेयुस्ते मया सह । न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर ॥ ३ ॥ सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरन्दर । साऽस्माभिः सह गच्छेत तद्भवाननुमन्यताम् ४ शक्र उवाच । भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान् । कृष्णया सहितान् सर्वान्मा शुचो भरतर्षभ ॥५॥ निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ। अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः ६ युधिष्ठिर उवाच । अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह । स गच्छेत मया सार्द्धमानृशंस्या हि मे मतिः ॥ ७ ॥ शक्र उवाच । अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजन् श्रियं च कृत्स्नां महतीं चैव सिद्धिम् । संप्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ८ युधिष्ठिर उवाच । अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र शक्यं कर्तुं दुष्कर-

हुए जानकर शोकसे सन्ताप पाते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने हजार नेत्रोंवाले इन्द्रसे यह बात कही, कि-॥ २ ॥ हे सुरेश्वर ! मेरे भाई यहाँ गिरगए हैं उनको मेरे साथ चलने दो, अपने भाइयोंके विना मैं स्वर्गमें जाना नहीं चाहता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! सुकुमारी,सुख भोगनेके योग्य उस द्रौपदीको भी मेरे साथ आने दो,आप इस बातकी आज्ञा दीजिये४इन्द्रने कहा कि हे भरतसत्तम! द्रौपदीके साथ और तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँचे हुए अपने सब भाइयोंके साथ तुम स्वर्गमें ही मिलना, तुम उनका शोक न करो५ हे भरतसत्तम ! वे मनुष्यशरीरको छोडकर स्वर्गमें पहुँच गये हैं, केवल तुम ही इस शरीरसे स्वर्गमें जानेवाले हो इसमें सन्देह नही है ॥६॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे भूत और भविष्यत्के स्वामी ! इस कुत्तेने मेरी सदा भक्ति की है, यह मेरे साथ जाना चाहिये, मेरी बुद्धिमें इसके ऊपर दया आरही है७इन्द्रने कहा कि हेराजन्! आज तुम्हें अमरपना,मेरी समानता पूर्णश्री और बडी भारी सिद्धि ये सब मिले हैं, अब तुम इस कुत्तेको त्याग दो, इसमें कुछ क्रूरता नहीं है ॥८॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे सहस्रनेत्र ! हे आर्य !

मेतदार्य । मा मे श्रिया सङ्गमनं तथास्तु यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम् ॥ ९ ॥ इन्द्र उवाच । स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्यमिष्टापूर्त्तं क्रोधवशा हरन्ति । ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच । भक्तत्यागं प्राहुरनन्तपापं तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन । तस्मान्नाहं जातु कथञ्चनाद्य त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ ११ ॥ भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्त्तं प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम् । प्राणत्यागादप्यहं नैव मोक्तुं यतेयं वै नित्यमेतद्व्रतं मे ॥१२॥ इन्द्र उवाच । शुना दृष्टं क्रोधवशा हरन्ति यद्दत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च । तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व । शुनस्त्यागात् प्राप्स्यसे देवलोकम् ॥ १३ ॥ त्यक्त्वा भ्रातॄन् दयितां चापि कृष्णां प्राप्तो लोकः

एक आर्य पुरुषसे अनार्य काम होना कठिन है, ऐसी यह श्री मुझे भले ही न मिले, कि—जिस श्रीके कारणसे मुझे एक भक्तजनको त्यागना पडता है ॥ ९ ॥ इन्द्रने कहा कि—स्वर्गमें कुत्ते वालोंके लिये स्थान नहीं है, क्योंकि—क्रोधवश नामके देवता अपवित्र मनुष्यके इष्टापूर्त्त (यज्ञ तथा बावडी कूप आदि खुदाने) के फलको हरकर लेजाते हैं (नष्ट करदेते हैं) ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा—(प्राचीन मुनि) कहते हैं, कि—भक्तोंको त्यागदेना महापाप है, यह पाप इसलोकमें ब्रह्महत्याकी समान है, इसलिये हे महेन्द्र ! चाहे सो हो तो भी आज मैं अपने सुखकी इच्छासे इसको किसी प्रकार भी नहीं त्यागूँगा ॥ ११ ॥ डरे हुएको, भक्तको, और मेरे कोई दूसरा सहायक नहीं है, ऐसा कहकर रक्षा के लिये आये हुए दुःखीको, क्षीणहुएको या प्राणकी इच्छा रखनेवालेको, चाहे मेरे प्राण जाते रहें तो भी मैं छोड़नेका उद्योग कदापि नहीं करूँगा, यह मेरा सदाका व्रत है ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा, कि—जो दान दिया होता है, जो कुछ यज्ञ किया जाता है और जो आहुतियें अग्निमें दीजाती हैं, यदि उसको कुत्ता देखले

कर्मणा स्वेन वीर । श्वानं चैनं न त्यजसे कथन्तु त्यक्तं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर उवाच। न विद्यते सन्धिरथापि विग्रहो मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा । न ते मया जीवयितुं हि शक्यास्ततस्त्यागस्तेषु कृतो न जीवितान्॥ १५ ॥ भीतिप्रदानं शरणागतस्य स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः । मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे।॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच।तद्धर्मराजस्य वचो निशम्यधर्मस्वरूपी भगवानुवाच।युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तवसंप्रयुक्तैः ॥ १७ ॥ धर्म उवाच । अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया । अनुक्रोशेन

तो उसके फलको क्रोधवश नामके देवता हरकर लेजाते हैं, इस लिये इस कुत्तेको त्यागदेनेसे तू स्वर्गलोक पावेगा ॥ १३ ॥ हे वीर ! भाइयोंका तथा प्यारी द्रौपदीका भी त्याग करके तूने अपने कर्मसे इस स्वर्गलोकको पाया है, तूने सबका तो त्याग करदिया है, तो फिर तू अब इस कुत्तेका त्याग क्यों नहीं करता है ? तुझे आज मोह क्यों हुआ है ? युधिष्ठिरने कहा, कि–तीनों लोकोंमें यह बात निश्चित है, कि–जो मरगये हैं उनके साथ मरण धर्मवाले मनुष्योंका कुछ मेल या विरोध नहींहोता है(मेरे भाई और द्रौपदी ये सब मरगये) मुझमें उनके जीवित करलेने की शक्ति नहीं है, इसलिये मैंने उनको त्याग दिया है, मैंने उनको जीवित दशामें नहीं त्यागा है।॥१५॥शरण आये हुएको भय देना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन लूटलेना और मित्रोंसे द्रोह करना, हे इन्द्र ! ये चारों बातें और एक भक्तको त्यागना मेरी समझमें ये सब बातें एकसी हैं १६ वैशम्पायन कहते हैं, कि–धर्मराजकी इस बातको सुनने पर प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे अत्यन्त स्तुतिवाले मीठे वाक्योंसे धर्मके स्वरूप भगवान्(श्वानने कहा, कि–हेभरतवंशी १७ हेराजेन्द्र! अच्छे बर्त्तावसे और चित्तसे सब प्राणियोंके ऊपर ऐसी दया रखनेके कारण तू अपने पितासे

चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ १८ ॥ पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः । पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः ॥ १९ ॥ भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ । मात्रोः साम्यमभीप्सन् वै नकुलं जीवमिच्छसि ॥२०॥ अयं श्वा भक्त इत्येव त्यक्तो देवरथस्त्वया । तस्मात् स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिपः२१ अतस्तवाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत । प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम् ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो धर्मश्च शक्रश्च मरुतश्चाश्विनावपि । देवा देवर्षयश्चैव रथमारोप्य पाण्डवम् ॥ २३ ॥ प्रययुः स्वैर्विमानस्ते सिद्धाः कामविहारिणः । सर्वे विरजसः पुण्याः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मिणः ॥ २४ ॥ स तं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्वहः।ऊर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसावृत्य रोदसी२५

योग्य पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! पहले द्वैतवनमें जब जलके लिये दुःखी होतेहुए तेरे सब पराक्रमी भाई मारे गये थे, उस समय तहाँ मैंने तेरी परीक्षा ली थी ॥ १९ ॥ तहाँ तूने अपने प्यारे भीम और अर्जुन दोनों भाइयोंको छोडकर, दोनों माताओंमें समान भक्तिभाव दिखानेकी इच्छासे नकुलको जीवित करनेकी इच्छा की थी ॥२०॥ यह कुत्ता मेरा भक्त है, ऐसा कह कर तूने स्वर्गके देवरथको त्यागदिया है, इसलिये स्वर्गमें तेरी समान कोई दूसरा राजा है ही नहीं ॥२१॥ इसलिये हे भारत ! तुझे तेरे इस शरीरसे अक्षय लोक मिले हैं,हे भरतसत्तम ! तुझे दिव्य और उत्तम गति मिलचुकी है ॥२२॥ तदनन्तर धर्म, इन्द्र, मरुत् तथा दोनों अश्विनाकुमार, देवता और देवर्षि धर्मराजको रथमें बैठालकर ॥२३॥ वे, इच्छानुसार विहार करनेवाले सिद्ध रजोगुणशून्य पुण्यवान्, पवित्र वाणी बुद्धि और कर्मोंवाले सब अपने २ विमानोंमें बैठकर चलेगये ॥ २४ ॥ उस रथमें बैठकर तदनन्तर कुरुकुलको चलानेवाले उस राजाने अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको घेरकर शीघ्र ही ऊपरको उठना आरम्भ कर

ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित् । उवाचोच्चैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपाः ॥ २६ ॥ येऽपि राजर्षयः सर्वे ते चापि समुपास्थिताः । कीर्तिं प्रच्छाद्य तेषां वै कुरुराजोऽधितिष्ठति ॥ २७ ॥ लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसम्पदा । स्वशरीरेण संप्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात् ॥ २८ ॥ तेजांसि यानि दृष्टानि भूमिष्ठेन त्वया विभो । वेश्मानि भुवि देवानां पश्यामूनि सहस्रशः ॥२६॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् । देवानामन्त्र्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान् ॥ ३० ॥ शुभं वा यदि वा पापं भ्रातॄणां स्थानमद्य मे । तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान्न कामये ॥३१॥ राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराजः पुरन्दरः । आनृशंस्यसमायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ३२ ॥ स्थानेऽस्मिन् वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जितैः शुभैः । किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि ॥ ३३ ॥

दिया ॥२५॥ तदनन्तर सब लोकोंको जाननेवाले, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, देवमण्डलोंमें बैठेहुए नारदजीने उस समय यह बात कही, कि-॥ २६ ॥ जो सब राजर्षि यहाँ इकट्ठे हुए हैं, उन सबोंकी कीर्तिको ढककर कुरुराज (युधिष्ठिर) श्रेष्ठ बनगये हैं ॥ २७ ॥ अपने यश,तेज-और सदाचाररूप सम्पदाके कारणसे अपने इस (भौतिक) शरीरसे युधिष्ठिरके सिवाय किसी दूसरेने स्वर्ग पाया हो,यह हमने तो सुना नहीं२८हे विभो ! तू पृथ्वी पर था उस समय तूने जो तेज देखे थे,उनको देवताओंके इन हजारों घरों में देखो२६नारदकी इस बातको सुनकर धर्मात्मा राजाने देवताओं की तथा अपने पक्षके राजाओंकी आज्ञा लेकर यह बात कही,कि३० शुभ हो चाहे पापका स्थान हो तो भी मैं आज अपने भाइयोंके स्थान पर ही जाना चाहता हूँ, मुझे और किसी लोकमें जानेकी इच्छा नहीं है ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरकी इस बातको सुनकर देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरको दयाभरे शब्दोंमें उत्तर दिया,कि-३२ हे राजेन्द्र ! शुभ कर्मोंसे जीतनेवाले इस स्थानमें ही रहो अब भी

सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां यथा नान्यः पुमान् क्वचित्। नैव ते भ्रातरः स्थानं संप्राप्ताः कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥ अद्यापि मानुषो भावः स्पृशते त्वां नराधिप । स्वर्गोऽयं पश्य देवर्षीन् सिद्धांश्च त्रिदिवालयान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरस्तु देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम् । पुनरेवाब्रवीद्धीमानिदं वचनमर्थवत् ॥ ३६ ॥ तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण । गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र मे भ्रातरो गताः ॥३७॥ यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता । द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां महाप्रस्थानिकपर्वणि युधिष्ठिरस्वर्गारोहे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

समाप्तं महाप्रस्थानिकं पर्व.

तुम मनुष्योंके स्नेहको क्यों खेंचते हो?३३ तुम्हे ऐसी परमसिद्धि मिली है कि जैसी सिद्धि कभी दूसरे पुरुषको मिली ही नहीं, हे कुरुनन्दन ! तेरे भाइयोंको तो ऐसा स्थान मिला ही नहीं है३४ हे राजन्!अब भी तुम्हें मानुषी भाव स्पर्श कररहा है,तुम इस स्वर्गको, इन देवर्षियोंको,इन सिद्धोंको और इन स्वर्गके महलोंको देखो३५ ऐसा कहतेहुए देवेन्द्रसे बुद्धिमान् युधिष्ठिरने फिर यह अर्थभरी बात कही कि-३६हे दैत्योंको मारनेवाले ! उनके विना मुझे यहाँ कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, मैं तो जहाँ मेरे भाई गये हैं वहाँ ही जाना चाहता हूँ ॥ ३७ ॥ जहाँ बुद्धि और सत्त्वगुणवाली, श्यामा बड़े शरीरवाली और सकल स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मेरी द्रौपदी गयी है, मैं तहाँ ही जाना चाहता हूँ ॥ ३८ ॥

श्रीमहाभारतका महाप्रस्थानिकपर्व, मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र-गौडवंश्य-पण्डित भोलानाथात्मज-ऋषिकुमार
रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित
हिन्दी-भाषानुवादसहित
समाप्त.

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

❀ स्वर्गारोहण-पर्व ❀

भाषा-टीका-सहित ।

❀ श्रीहरिः ❀

महाभारत

स्वर्गारोहण-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच । स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः । पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे ॥ १ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वविच्चासि मे मतः । महर्षिणाभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः । युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु ॥ ३ ॥ स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः । दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने ॥४॥ भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभिसंवृतम् । देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः ५

श्रीनारायण, नरोंमें श्रेष्ठ नर तथा सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय (महाभारत) का कीर्त्तन करे ॥❀॥ जनमेजयने पूछा, कि—हे वैशम्पायनजी ! मेरे पूर्व पितामह इस स्वर्ग त्रिविष्टपमें पहुँचगये, तदनन्तर पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने कौन २ से स्थान भोगे ? ॥१॥ मैं यह सुनना चाहता हूँ और अद्भुत कर्मवाले महर्षि व्यासजीने आपसे यह सब कहा है, इसलिये मैं समझता हूँ, कि—आप यह सब जानते हैं ॥२॥ वैशम्पायनने कहा, कि—तेरे पूर्व-पितामह युधिष्ठिर आदिने त्रिविष्टप स्वर्गको पाकर जो कुछ किया उसको सुन ॥ ३ ॥ त्रिविष्टप स्वर्गको पानेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीसे शोभायमान, सूर्यकी समान प्रकाशमान, वीर पुरुषोंकी लक्ष्मी (शूरता आदि) से चारों ओरसे घिरे,

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः । सहसा सन्निवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधनेऽब्रुवन्तुच्चैर्वचस्तान् वै नाहं दुर्योधनेन वै । सहितः कामये लोकान् लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ ७ ॥ यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा । हतास्माभिः प्रसह्याजौ क्लिष्टैः पूर्वं महावने ॥ ८ ॥ द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी । पर्याकृष्टानवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसन्निधौ ॥ ९ ॥ अस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम् । तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥१०॥ नैवमित्यब्रवीत्तन्तु नारदः प्रहसन्निव । स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर महाबाहो मैवं

दमकतेहुए देवता और पुण्य कर्म करनेवाले साध्योंके साथमें एक आसन पर बैठेहुए दुर्योधनको देखा ॥ ४-५ ॥ दुर्योधनको इस दशामें देखकर युधिष्ठिरसे सहा नहीं गया, दुर्योधनकी ऐसी श्रीको देखकर वह एकसाथ पीछेको लौटपड़े ॥ ६ ॥ और बड़े जोरसे चिल्लाकर यह बात कही, कि-लोभी और दीर्घदृष्टि (विचार) से शून्य दुर्योधनके साथ रहकर मैं इस स्वर्गलोककी चाहना नहीं करता॥७॥ कि-जिसके कारणसे पहले महावनमें हमने दुःख सहे और जिसके कारणसे हमने सब मित्रोंको तथा बान्धवोंको पृथ्वी पर मारडाला ॥ ८ ॥ और जिसके कारणसे बीच सभामें गुरु जनोंके सामने उत्तमाङ्गी हमारी धर्मचारिणी पत्नी पांचालराजकी पुत्री द्रौपदीको घसीटागया (ऐसे दुर्योधनके साथ रहकर मैं इस लोकको नहीं भोगना चाहता) ॥९॥ हे देवताओं ! दुर्योधनको देखनेकी तो मुझे इच्छा ही नहीं है, मैं तो वहाँ जाना चाहता हूँ, जहाँ वे मेरे भाई हैं ॥ १० ॥ नारदने बड़े जोरसे हँसकर राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि-ऐसा नहीं हो सकता, हे राजेन्द्र ! स्वर्गमें निवास होनेसे विरोधका नाश होजाता है ॥ ११ ॥ हे महाबाहु युधिष्ठिर ! राजा दुर्योधनके विषयमें ऐसी बात कदापि न कहिये,

शोचः कथंचन । दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२ ॥
एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह। सद्भिश्च राजप्रवरैर्य इमे
स्वर्गवासिनः ॥ ७ ॥ वीरलोकगतिः प्राप्ता युद्धे हुत्वात्मनस्तनुम्।
यूयं सर्वे सुरसमाः सदैवानेन हिंसिताः ॥ १४ ॥ स एष क्षत्र-
धर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् । भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवी-
पतिः ॥ १५ ॥ न तन्मनसि कर्त्तव्यं पुत्र यद्द्यूतकारितम् । द्रौप-
द्याश्च परिक्लेशं न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १६ ॥ ये चान्येऽपि परि-
क्लेशा युष्माकं ज्ञातिकारिताः। संग्रामेष्वथवान्यत्र न तान् संस्मर्तु-
मर्हसि ॥१७॥ समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै । स्वर्गोऽयं
नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ १८ ॥ नारदेनैवमुक्तस्तु कुरु-
राजो युधिष्ठिरः । भ्रातॄन् पप्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह १६

और मेरी इस बातको सुनिये ॥ १२ ॥ सत्पुरुष तथा स्वर्गमें निवास करनेवाले राजे देवताओंके साथमें इस राजा दुर्योधनकी पूजा करते हैं ॥१३॥ यह सत्य है, कि–देवताओंकी समान तुम सबोंको यह दुःख दिया करता था, परन्तु इसने युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर वीर पुरुषोंको मिलनेवाली गति पाई है।१४। ऐसे इसने क्षत्रियोंके धर्मका पालन करके यह स्थान पाया है,यह राजा दुर्योधन बड़ेभारी भयमें पड़ने पर भी निर्भय रहा था १५ और हे पुत्र ! इसने जुआ खिलाया था इस बातको अपने मनमें न रख, और द्रौपदीको दियेहुए दुःखोंका भी तुझे विचार नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ तथा और भी जो २ क्लेश तुम्हें इसने अपने भाई बन्धुओंसे दिलाये थे और रणभूमिमें तुम्हें जो क्लेश दिये गये थे उनको अब तुम्हें याद नहीं करना चाहिये॥१७॥ अब तुम राजा दुर्योधनके साथ न्यायपूर्वक मिलो, हे राजन् ! यह स्वर्ग है, यहाँ आकर वैरभाव नहीं रहते हैं ॥ १८ ॥ नारदजीने कुरुराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहा, तब बुद्धिमान् युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके विषयमें फिर बूझतेहुए यह बात कही, कि–१६

यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः । अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवी सुहृदद्रुहः ॥२०॥ यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सनरद्विपा । वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः ॥ २१ ॥ ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः । सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥ २२ ॥ तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम् । कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसङ्गरम् ॥ २३॥ धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् । ये च शस्त्रैर्वधं प्राप्ता क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः २४ ॥ क्व नु ते पार्थिवा ब्रह्मन् नैतान् पश्यामि नारद । विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥२५॥ शिखण्डिनञ्च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः । अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद॥२६॥ नारदयुधिष्ठिरसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अधर्मको ही सब कुछ समझनेवाले, पापी सब पृथिवीसे और मित्रोंसे द्रोह करनेवाले उस दुर्योधनके ही यदि ये सनातन वीर लोक हैं, कि-जिसके कारणसे घोड़े, मनुष्य और हाथियोंसहित सब पृथिवीका नाश होगया और जिससे वैरका बदला लेना चाहनेवाले हम क्रोधसे भस्म होगये थे ॥ २०-२१ ॥ तो अब जो महाव्रतवाले, सत्यप्रतिज्ञावाले, सत्य बोलनेवाले और मनुष्य लोकमें शूर मानेजानेवाले मेरे महात्मा वीर भाई थे, उनके लोकोंको और उनको मैं देखना चाहता हूँ तथा सत्यका युद्ध करनेवाले कुन्तीके पुत्र कर्णको तथा धृष्टद्युम्नको, सात्यकीको और धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको तथा दूसरे जो राजे क्षत्रियधर्मसे लडतेहुए शस्त्रोंसे कटगये थे उनको (भी मैं देखना चाहता हूँ) ॥ २२-२४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे नारदजी ! वे राजे कहाँ हैं ? उनको तथा विराट, द्रुपद और धृष्टकेतु आदि क्षत्रियोंको मैं देखना चाहता हूँ ॥२५॥ हे नारद ! शिखण्डीको, पञ्चालदेशके राजकुमारको, द्रौपदीके सब पुत्रोंको और दुर्धर्ष अभिमन्युको हे नारद ! मैं देखना चाहता हूँ ॥२६॥ पहला अध्याय समाप्त ॥१॥ ॥ ॥

युधिष्ठिर उवाच । नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम् । भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १ ॥ जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नौ महारथाः । राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २ ॥ क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः । तैरप्ययं जितो लोकः कच्चित् पुरुषसत्तमैः ॥ ३ ॥ यदि लोकानिमान् प्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः । स्थितं वित्त हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥ कच्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः । न तैरहं विना रंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ॥ ५ ॥ मातुर्हि वचनं श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि । कर्णस्य क्रियतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ॥ ६ ॥ इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः । यन्मातुः

युधिष्ठिरने कहा, कि–हे देवताओ ! यहाँ अमिततेजस्वी राधाके पुत्र कर्णको उन महात्मा युधामन्यु और उत्तमौजा दोनों भाइयोंको मैं क्यों नहीं देखता हूँ ? ॥१॥ कि–जिन महारथियोंने रणरूप अग्निमें अपने शरीरोंकी आहुति देदी थी तथा वे राजे और राजकुमार जो मेरे लिये रणमें मारेगये हैं ॥ २ ॥ सिंहकी समान पराक्रमी वे सब राजे कहाँ हैं ? क्या उन उत्तम पुरुषोंने भी इस लोकको जीता है ? ॥ ३ ॥ यदि उन सब महारथियोंने इस लोकको पालिया हो तो हे देवताओ! मुझे भी उन महात्माओंके साथ ही रहनेवाला जानो ॥ ४ ॥ परन्तु यदि उन राजाओंको यह शुभ और अक्षय लोक न मिला हो तो मैं अपने भाइयोंके और ज्ञातिबान्धवोंके विना यहाँ नहीं रहूँगा ॥५॥ जब श्राद्धकर्म कियागया था तब मैंने अपनी माताका यह वचन सुना था, कि–कर्णके लिये भी श्राद्धकर्म कर और जबसे यह बात सुनी है तबसे मैं दुःखी होरहा हूँ (क्योंकि–यह बात मैंने उसी समय जानी थी, कि–कर्ण मेरा भाई है) ॥ ६ ॥ और हे देवताओ ! मुझे बार बार यह दुःख होता है, कि—मैं उस अमेय आत्मावालेके

सदृशौ पादौ तस्याहममितात्मनः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वैव तौ नानुगतः कर्णं परबलार्दनम्। न ह्यस्मान् कर्णसहितान् जयेत् शक्रोऽपि संयुगे॥८॥तमहं यत्र तत्रस्थं द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम्। अविज्ञातो मया योऽसौ घातितः सव्यसाचिना ॥ ९ ॥ भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम। अर्जुनं चेन्द्रसङ्काशं यमौ चैव यमोपमौ ॥ १० ॥ द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम्। न चेह स्थातुमिच्छामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ ११ ॥ किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः। यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः। यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र मा चिरम्। प्रिये हि तव वर्तामो देवराजस्य शासनात् ॥१३॥ वैशम्पायन उवाच। इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन्। युधिष्ठिरस्य सुहृदो

पैर अपनी माताके से देखकर वैरियोंके बलको नष्ट करडालने वाले कर्णका अनुगामी नहीं हुआ (कर्णको बडा भाई मानकर उसका आज्ञाकारी नहीं हुआ)॥७॥यदि हम युद्धमें कर्णके साथी होते तो हमको इन्द्र भी नहीं जीतसकता॥८॥वह सूर्यका पुत्र जहाँ हो तहाँ मैं जाना चाहता हूँ, मैंने उसको पहचाना नहीं और सव्यसाचीने उसको मारडाला॥ ९ ॥ भयानकपराक्रमी और मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे अपने भीमको, इन्द्रकी समान अर्जुनको और यमकी उपमाके योग्य नकुल तथा सहदेवको तथा धर्मचारिणी द्रौपदीको मैं देखना चाहता हूँ,मैं यहाँ रहना नहीं चाहता,यह बात मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ १० ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! भाइयोंसे जुदा होने पर मैं स्वर्गको लेकर क्या करूँगा। जहाँ वे हैं वहाँ ही मेरा स्वर्ग है, यह स्वर्ग नहीं है ऐसा मेरा मत है ।१२। देवताओंने कहा, कि–यदि तेरी श्रद्धा वहाँ ही जानेकी है तो हे बेटा ! चल, देर न कर ॥१३॥ हे राजन् ! युधिष्ठिरसे ऐसा कह कर देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी, कि–युधिष्ठिरको, इसके

दर्शयेति परन्तप ॥१४॥ ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः। सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५ ॥ अग्रतो देवदूतस्तु ययौ राजा च पृष्ठतः । पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥१६॥ तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम्।युक्तां पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् ॥ १७ ॥ दंशोत्पातकभल्लूकमक्षिकामशकावृतम् । इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात् परिवारितम् १८ अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम्। ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात् परिवेष्टितम्१९अयोमुखैश्च काकाद्यैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् । सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥२०॥ मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः । निकृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः २१ स तत् कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम् । जगाम राजा धर्मात्मा

प्यारे दिखलादे ॥ १४ ॥ तदनन्तर राजशार्दूल ! कुन्तीका पुत्र राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ२ जहाँ ये श्रेष्ठ पुरुष थे वहाँ गये ॥ १५ ॥ आगे २ देवदूत और पीछे २राजा गया, वह मार्ग अशुभ था और उसमें बडी कठिनतासे चलाजाता था, उसमें जहाँ तहाँ पापियोंका जमाव था ॥ १६ ॥ अन्धकारसा भरा हुआ था,घोर, केशरूप सिवार और हरी घासवाला, पाप करनेवालोंकी गन्धोंके कारण दुर्गन्धियोंसे भराहुआ मांस और रुधिरकी कीच वाला।१७।काटनेवाले रीछ और मक्खी और मच्छरोंसे भराहुआ,और चारों ओर इधर उधर सड़ेहुए मुरदोंसे भराहुआ था १८ उसमें जहाँ तहाँ हड्डियें और केश बिखरेहुए थे, कृमि कीट रेंगते फिरते थे, चारों ओरसे धक २ जलती हुई आगसे घिराहुआ था१९उस मार्गमें लोहेकी चोंचवाले काक आदि और गिध्ज पत्ती उडरहे थे सूचीमुख तथा विन्ध्याचल पर्वतके आकारके प्रेत खचाखच भरे हुए थे२०चरवी और रुधिरमें सने हुए, बाहु, जङ्घा और हाथ कटे हुए, पेट और पैर कटे हुए मुरदे जहाँ तहाँ

मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥ २२ ॥ ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम् । असिपत्रवनं चैव निशितक्षुरसंवृतम् ॥ २३ ॥ करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक् । लोहकुंभीश्च तैलस्य क्वाथमानाः समन्ततः ॥ २४ ॥ कूटशाल्मलिकं चापि दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम् । ददर्श चापि कौन्तेयो यातनाः पापकर्मिणाम् २५ स तं दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह । कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम् ॥ २६ ॥ क्व च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि । देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २७ ॥ स सन्निववृते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम् । देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद्गमनं तव ॥ २८ ॥ निवर्तितव्यो हि मया तथास्म्युक्तो दिवौ-

---

बिखरे पड़े थे ॥ २१ ॥ सड़ते हुए शवोंकी दुर्गन्धिवाले, अशुभ और रोमाञ्च खड़े करनेवाले उस मार्गमें पहुँचकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर बहुत विचार करते हुए चलने लगे ॥ २२ ॥ मार्गमें गरम पानीसे भरी हुई और जिसके पार होनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी ऐसी एक नदी देखी तथा तलवारकेसे और तेज छुरी केसे पत्तोंवाला एक वन भी देखा ॥ २३ ॥ मार्गमें तची हुई सूक्ष्म भाड़कीसी बालू और तपी हुई लोहेकी शिलायें भी अलग पड़ी हुई देखीं तथा चारों ओर खौलते हुए तेलसे भरे लोहेके कड़ाव भी देखे २४ तीखे काँटोंवाला और जिसको छूना भी कठिन था, ऐसा कूटशाल्मलिका वृक्ष तथा पाप कर्म करने वालोंको मिलने वाले कष्ट भी युधिष्ठिरने देखे ॥ २५ ॥ तहाँकी दुर्गन्ध पर ध्यान देकर युधिष्ठिरने देवदूतसे कहा, कि-इस ऐसे मार्गमें हमें कहाँ तक चलना होगा, ? ॥ २६ ॥ और मुझे यह बतलाओ, कि-मेरे वे भाई कहाँ हैं ? और देवताओंका यह कौनसा देश है, इस बातको भी मैं जानना चाहता हूँ ॥ २७ ॥ धर्मराजकी इसबात को सुनकर वह देवदूत पीछेको लौटा और उसने उत्तर दिया,

कसै। । यदि श्रान्तोऽसि राजेन्द्र त्वमथागन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्छितः । निवर्त्तने धृतमनाः पर्यावर्त्तत भारत ॥ ३० ॥ स सन्निवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः । शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ ३१ ॥ भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव । अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम् ॥ ३२ ॥ आयाति त्वयि दुर्द्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः । तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत् ॥ ३३ ॥ ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ । सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥ ३४ ॥ संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्त्तमपि भारत । त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान्न बाधते ॥ ३५ ॥ एवं बहु-

---

कि—आपको यहाँ तक ही चलना है ॥२८॥ स्वर्गके निवासियोंने मुझसे कहदिया था, कि—जब तक युधिष्ठिर प्रश्न करें तब तक ही इनको लेजाना, इसलिए अब मुझे पीछेको लौटना चाहिए, हे राजेन्द्र ! यदि आप थक गये हों तो आप भी मेरे पीछे२लौट आइये ॥२९॥ परन्तु युधिष्ठिर बहुत घबडारहे थे तथा दुर्गन्धिसे मूर्छितसे हो रहे थे,हे भारत ! तदनन्तर पीछेको लौटनेका निश्चय करके वह पीछेको लौटपड़े ॥ ३० ॥ दुःख और शोकसे भरे हुए वह धर्मात्मा पीछेको लौटे ही थे,कि—चारों ओरसे मनुष्योंकी दीन वाणी सुनायी आने लगी कि—॥३१॥ भो भो धर्मराज ! हे राजर्षि ! हे पवित्र जन्म वाले ! हे पाण्डव ! हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए एक मुहूर्त भर तो खड़े रहो३२हेदुर्धर्ष ! आपके आने पर आपकी गन्धको लेकर पवित्र वायु चलनेलगा,कि-जिससे हमको सुख मिलनेलगा था३॥३॥हे पार्थ ! हे पुरुषसत्तम ! हे श्रेष्ठ राजन् ! बहुत दिनों वाद आपको देखकर हम सुखी हुए हैं ३४ इसलिये हे महाबाहो हे भारत ! तुम एक मुहूर्त भर तो खड़े रहो, हे कुरुवंशी ! तुम्हारे खड़े रहनेसे हमको यह यमयातना पीडा

विधा वाचः कृपणा वेदनावताम् । तस्मिन् देशे च शुश्राव समन्तात् वदतां नृप ॥३६॥ तेषान्तु वचनं श्रुत्वा दयावान् दीनभाषिणाम्। अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥ स ता गिरः पुरस्ताद्वै श्रुतपूर्वाः पुनः पुनः । ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पाण्डवः ॥ ३८ ॥ अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । उवाच के भवन्तो वै किमर्थं चेह तिष्ठत ॥३९॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे । कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो॥४०॥नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत । द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवन्ते विचुक्रुशुः ॥ ४१ ॥ ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप । ततो विममृषे राजा किन्विदं दैवकारितम् ४२

नहीं देती है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भाँति २ की पीडा भोगनेवालोंकी और चारों ओरसे पुकार करनेवालोंकी वे दया भरी बातें युधिष्ठिरने तहाँ सुनीं ॥३६॥ दीनवचन बोलनेवालोंकी उन बातोंको सुनकर दयावान् युधिष्ठिर रुकगये और ओः ! बड़ा दुःख है, इसप्रकार कहनेलगे ॥३७॥ युधिष्ठिरने मार्गमें आगे भी ये ही वचन बार बार शोकमें मग्न और दुःखी प्राणियोंके मुखसे निकलेहुए सुने थे परन्तु उस समय वह उन शब्दोंको पहचान नहीं सके ॥३८॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरने, जब यह शब्द किनके हैं, यह बात समझमें नहीं आयी तब बूझा, कि—आप कौन हैं ? और यहाँ किसलिये रहते हैं ॥३९॥ हे राजन् ! जब युधिष्ठिरने ऐसा कहा, तब तो वे सब चारों ओरसे कहनेलगे, कि— मैं कर्ण हूँ, मैं भीमसेन हूँ और मैं अर्जुन हूँ ॥ ४० ॥ मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ, हम द्रौपदीके पुत्र हैं, इसप्रकार वे सब पुकारने लगे ॥४१॥ हे राजन् ! उस समय उस देशके अनुकूल इन बातोंको सुनकर वह राजा मनमें विचार करने लगा, कि—यह दैवने क्या करडाला है ? ॥ ४२ ॥ कर्ण, द्रौपदीके

किन्तु तत् कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः । कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥ ४३ ॥ य इमे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे । नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम् ४४ किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः । तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥४५॥ महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः । कस्येदानीं विकारोऽयं य इमे नरकं गताः ॥ ४६ ॥ सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः । क्षत्रधर्मपराः सन्तो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ ४७ ॥ किन्तु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये । अहो चित्तविकारोऽयं स्याद्वा मे चित्तविभ्रमः ॥ ४८ ॥ एवं बहुविधं राजा विममर्ष युधिष्ठिरः । दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्या-

---

पुत्र और कृशोदरी द्रौपदी इन महात्माओंने ऐसा कौनसा पाप कर्म किया था ? ॥ ४३ ॥ कि-जिसके कारणसे इनको ऐसे पापरूप गन्धवाले और अतिभयानक स्थानमें आना पडा है ! पुण्यकर्म करनेवाले इन सबोंके किसी पापकर्मको मैं तो जानता नहीं ॥ ४४ ॥धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधनने कैसा कर्म कर इस सब पापी साथियोंके सहित ऐसी श्री (सद्गति) पायी है ? ४५ वह इन्द्रकी समान श्रीमान् हुआ है और परमपूजनीय बनगया है, यह न जाने कौनसे कर्मका खोटा परिणाम है कि-जिसके कारणसे ये सब नरकमें आकर पड़े हैं ? ॥ ४६ ॥ ये सब तो धर्मको जानने वाले थे, शूर थे, सत्यवक्ता और वेदपाठी थे, क्षत्रियोंके धर्म पर प्रेम रखते थे साधु थे, यज्ञ करते थे और बडी२ दक्षिणायें देते थे ४७ मैं सोरहा हूँ ? या जागरहा हूँ मुझे चेत है या अचेत हूँ ? ये मेरे चित्तमें विकार आगया है अथवा मेरे चित्तको भ्रम होगया है ॥ ४८ दुःख और शोकसे घिरेहुए तथा चिन्तासे व्याकुल हुई इन्द्रियोंवाले राजा युधिष्ठिरने ऐसे अनेकों विचार किये ॥ ४९ ॥ फिर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको बडा क्रोध आया, वह देवताओंकी

कुलितेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः । देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ ५० ॥ स तीव्रगन्धसन्तप्तो देवदूतमुवाच ह । गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥ ५१ ॥ न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम् । मत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२ ॥ इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता । जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३ ॥ निवेदयामास च तद्धर्मराजचिकीर्षितम् । यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरस्य
नरकदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच । स्थिते मुहूर्त्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे । आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १ ॥ स च विग्रहवान् धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम् । तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो

और धर्मकी बड़ी निन्दा करनेलगे ॥ ५० ॥ फिर तीव्र दुर्गन्धसे सन्ताप पातेहुए उन्होंने देवदूतसे कहा कि—तू जिनका दूत है, उनके ही पास जा ॥ ५१ ॥ और कहना, कि—मैं तो तहाँ आऊँगा नहीं, किन्तु यहाँ ही खड़ा रहूँगा, क्यों कि—मेरा आश्रय पाकर ये मेरे दुःखी भाई सुखी हुए हैं॥५२॥बुद्धिमान् पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने देवदूतसे ऐसा कहा, तब वह तुरन्त ही जहाँ देवराज इन्द्र थे तहाँ गया ॥ ५३ ॥ और हे राजन् !जो कुछ धर्मराज करना चाहते थे तथा उन्होंने जो कुछ कहा था वह सब निवेदन किया ॥ ५४ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-कुन्तीके पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर एक मुहूर्त्तभर खड़ेरहे, हे जनमेजय! इतनेमें ही इन्द्र आदि देवता तहाँ आपहुँचे ।१॥ जहाँ कुरुराज युधिष्ठिर थे तहाँ उस राजाको देखनेके लिये धर्म स्वयं अपने स्वरूपमें आपहुँचा ॥ २ ॥ हे राजन् ! प्रका-

युधिष्ठिरः ॥ २ ॥ तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु । समागतेषु देवेषु व्यगमत्तत्तमो नृप ॥ ३ ॥ नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाःपापकर्मिणाम् । नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४ ॥ लोहकुम्भ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः । विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ॥ ५ ॥ ददर्श राजा कौरव्यस्तान्यदृश्यानि चाभवन् । ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ ६ ॥ ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत । मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ॥ ७ ॥ साध्या रुद्रास्तथादित्या ये चान्येऽपि दिवौकसः । सर्वे तत्र समाजग्मुः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८ ॥ यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत् । ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः । युधिष्ठिर महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ १० ॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृत-

---

शमान शरीरोंवाले, पवित्र और उत्तम कर्मोंवाले वे देवता तहाँ आये तब तहाँसे अन्धकार एक साथ जाता रहा ॥ ३ ॥ पापकर्म करनेवालोंकी यातनायें तथा उस कूटशाल्मलिके सहित वैतरणी नदीका भी पता नहीं रहा ॥ ४ ॥ लोहेकी भयानक कढाइयें और शिलायें भी देखनेमें नहीं आयीं, तहाँ चारों ओर जो विकृत (विकारभरे भयानक) शरीर कुरुवंशी राजा युधिष्ठिरने देखे थे वे सब अदृश्य होगये और हे राजन् ! सुखदायक स्पर्श तथा पवित्र गन्धवाला, शुद्ध, अति शीतल देवताओंके समीपमें रहनेवाला वायु चलनेलगा इन्द्रके सहित मरुत्, वसु, दोनों अश्विनीकुमार, साध्य रुद्र, तथा आदित्य और दूसरे स्वर्गवासी, सिद्ध और परमऋषि ये सब जहाँ महातेजस्वी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े थे तहाँ आकर इकट्ठे होगये, तदनन्तर परमश्रीके साथ देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरको शान्ति देनेवाले ये वचन कहे, कि-हे महाबाहु युधिष्ठिर ! ये अक्षय लोक तुम्हारे ही हैं ॥५-१०॥ हे पुरुषव्याघ्र ! हे विभो !

मेतावता विभो। सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ११
न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम। अवश्यं नरक-
स्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥१२॥ शुभानामशुभानां च द्वौ राशी
पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेव सः ।१३।
पूर्वं नरकभाग्यस्तु पश्चात् स्वर्गमुपैति सः । भूयिष्ठं पापकर्मा यः
स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ १४ ॥ तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोर्थिना
नृप । व्याजेन हि त्वया द्रोण उपाचीर्णः सुतं प्रति ॥१५॥ व्या-
जेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव । यथैव त्वं तथा भीमस्तथा
पार्थो यमौ तथा ॥ १६ ॥ द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं
गता । आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥ १७ ॥
स्वपक्षाश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे । सर्वे स्वर्गमनुप्राप्ता-

आइये, आइये, बस इतना ही बहुत है, हे महाबाहो! आपको सिद्धि मिल चुकी है और अक्षय लोक भी तुम्हारे ही हैं॥ ११ ॥ तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये और तुम मेरी इस बातको सुनो, हे तात! सब राजाओंको एक वार नरक अवश्य देखना चाहिये ॥ १२ ॥ हे पुरुषसत्तम! शुभकर्मोंकी और अशुभ कर्मोंकी दो खाने हैं, जो पहले शुभ कर्मोंका फल भोगलेते हैं वे पीछेसे नरक भोगते हैं॥ १३ ॥ जिनके भाग्यमें पहले नरक है वे पीछे स्वर्गमें जाते हैं, जिनके पापकर्म अधिक होते हैं वे पहले स्वर्ग भोगते हैं॥ ४१ ॥ इस लिये हे राजन्! तेरा श्रेय चाहनेवाले मैंने तुझे पहले यहाँ भेजा है, क्यों कि -(तुझे याद होगा कि—) तूने छलसे द्रोणको उनके पुत्रके विषयमें धोखा दिया था॥ १५ ॥ इसकारण वैसे ही ढङ्गसे तुझे छलकर हे राजन! नरक दिखायागया है, जैसे ढोंगसे तू नरकमें गया इसप्रकार ही भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा कृष्णा द्रौपदीको भी छलसे नरकमें जाना पड़ा है, हे नर-शार्दूल! अब चल, वे सब भी पापसे मुक्त होगये हैं॥१६-१७॥

स्तान् पश्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥ कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः। स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे ॥ १९ ॥ तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो। स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥ २० ॥ भ्रातॄंश्चान्यांस्तथा पश्य स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान्। स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २१ ॥ कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतः प्रभृति कौरव। विहरस्व मया सार्द्धं गतशोको निरामयः ॥ २२ ॥ कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम्। दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पार्थिव ॥ २३ ॥ अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि। उपसेवन्तु कल्याणं विरजोऽम्बरभूषणाः ॥ २४ ॥ राजसूयजितान् लोकान् स्वयमे-

तथा तुम्हारे पक्षमें रहनेवाले जो जो राजे रणमें मारे गये थे उन सबोंको भी स्वर्ग मिला है. हे राजन्! उन सबोंको भी तू देख १८ तथा महाधनुषधारी, सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, कि–जिसके लिये तू इतना दुःखी होरहा है; उसको भी परमसिद्धि मिलचुकी है ॥ १९ ॥ हे विभो! उस पुरुषोंमें सिंहसमान सूर्यके पुत्रको तुम देखो, हे महाबाहो! वह अपने स्थानमें स्थित है उसको तुम देखो और हे नरेन्द्र!तुम शोकको त्यागदो ॥२०॥ अपने भाइयोंको तथा अपने पक्षके दूसरे राजाओंको क्रमसे अपना२स्थान वा लोक पाने वालोंको आप देखिये और अब आपके मनका संताप दूर हो॥२१॥ हे कुरुवंशी! तुम्हें पहले जिस दुःखका अनुभव करना चाहिये था उसको करचुके, अब शोकको त्याग कर और दुःखरहित होकर मेरे साथ विहार करो॥२२॥हे तात! हे महाबाहु राजन्! पुण्य कर्मोंके,अपने तपसे जीते हुए लोकोंके और दानोंके फलको प्राप्त कर२३आज स्वर्गमें निर्मल वस्त्रों और आभूषणोंवाले,देवता, गंधर्व और दिव्य अप्सरायें तुझ कल्याणकारीकी सेवामें खड़ेहोंगे॥२४॥ हे महाबाहो! राजसूयज्ञ करके पाये हुए लोकोंको और स्वयं तल-

वासि अर्द्धितान् । आप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च महाफलम् २५
उपर्युपरि राज्ञां हि तत्र लोका युधिष्ठिर । हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ
येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ २६ ॥ मान्धाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा
भगीरथः । दौष्यन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि ॥ २७ ॥
एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी । आकाशगङ्गा राजेन्द्र
तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥ २८ ॥ अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो
विगमिष्यति । गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥२६॥
एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् । धर्मो विग्रहवान् साक्षात्
उवाच सुतमात्मनः ॥ ३० ॥ भो भो राजन् महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि
तव पुत्रक । मद्भक्त्या सत्यवाक्येन क्षमया च दमेन च ॥ ३१ ॥
एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया । न शक्यसे चाल-

चारके बलसे (क्षत्रियोंके धर्मका पालन करनेसे) वृद्धिको प्राप्त हुए लोकोंको तथा तपके महाफलको प्राप्तकर ॥ २५ ॥ हे युधिष्ठिर ! तेरे लोक दूसरे राजाओंके लोकोंसे भी ऊपर हैं, हे पार्थ ! जिनमें तू राजा हरिश्चन्द्रकी समान विहार करेगा ॥ २६ ॥ जहाँ राजर्षि मान्धाता है, जहाँ राजा भागीरथ है जहाँ दुष्यन्तका पुत्र भरत है, तहाँ ही तू भी विहार करेगा ॥२७॥ हे राजेन्द्र युधिष्ठिर ! यह त्रिलोकीको पवित्र करने वाली पुण्यसलिला देवनदी गङ्गा है, इसमें स्नान करके तू वहाँ जासकेगा ॥ २८ ॥ इसमें स्नान करलेने पर तेरा मनुष्यपना जाता रहेगा और तू शोक—शून्य, परिश्रमहीन तथा निर्वैर होजायगा ॥ २६ ॥ इन्द्रने कौरवेन्द्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहा, तब साक्षात् शरीरधारी धर्मने अपने पुत्रसे कहा कि—॥ ३० ॥ भो भो राजन् ! हे महाराज ! हे पुत्र ! तूने मेरी भक्तिकी इसलिये, सत्य बोलनेसे, क्षमा रखनेसे और इन्द्रियोंका दमन करनेसे मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह मैंने तेरी तीसरी वार परीक्षा की है, हे पार्थ ! किसी प्रकारसे भी

यितुं स्वभावात् पार्थहेतुतः ।। ३२ ।। पूर्वं परीक्षितो हि त्वं प्रश्नात् द्वैतवने मया । अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ।।३३ ।। सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्यास्तत्र भारत। श्वरूपधारिणा पुत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ।। ३४ ।। इदं तृतीयं भ्रातृणामर्थे यत् स्थातुमिच्छसि । विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः ।।३५।। न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशाम्पते। मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता३६ अवश्यं नरकास्तात द्रष्टव्याः सर्वराजभिः । ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्त्तं दुःखमुत्तमम् ।। ३७ ।। न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ । कर्णो वा सत्यवाक् शूरो नरकार्हाश्चिरं नृप ।।३८।। न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा युधिष्ठिर । एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य

कोई तुझे तेरे स्वभावसे चलायमान नहीं कर सकता (यह मैंने जानलिया है) ॥ ३२ ॥ पहले द्वैतवनमें जब तू अरणी लेनेको आया था, उस समय प्रश्न करके मैंने तेरी परीक्षा ली थी, और उसमें तू पार उतर गया था ॥ ३३ ॥ हे भारत ! (स्वर्गारोहण के समय) द्रौपदीके सहित तेरे सहोदर भाइयोंका मरण होगया था, उस समय फिर कुत्तेका रूप धरकर मैंने तेरी परीक्षा ली थी३४ अब यह तीसरी परीक्षा हुई है, इसमें भाइयोंके लिये तूने नरकमें रहना स्वीकार किया (इस प्रकार तू इस परीक्षामें भी पार उतर गया) हे महाभाग ! तू परम शुद्ध है, सुखी है, निष्पाप है ३५ हे राजन् ! तेरे भाई नरकके योग्य नहीं हैं यह तो देवराज इन्द्रने माया की थी ॥ ३६ ॥ हे तात ! सब राजाओंको नरक अवश्य ही देखना चाहिये, इसलिये यहाँ तुझे एक मुहूर्त्तको ही महादुःख मिला है ।। ३७ ।। हे राजन् ! अर्जुन अथवा भीम या पुरुषोंमें श्रेष्ठ नकुल और सहदेव अथवा सत्य बोलनेवाला शूर कर्ण, इनमें से कोई भी नरकके योग्य नहीं है ।।३८।। तथा राजपुत्री द्रौपदी भी किसी प्रकार नरकके योग्य नहीं है, हे भरतसत्तम ! चल चल

गङ्गां त्रिलोकगाम् ॥ ३९ ॥ एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः। जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः ॥ ४० ॥ गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् । अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥४१॥ ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । निर्वैरो गतसन्तापो जले तस्मिन् समाप्लुतः ॥४२॥ ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः । धर्मेण सहितो धीमांस्तूयमानो महर्षिभिः ४३ यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शूरा विगतमन्यवः । पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरमानुष-
तनुत्यागे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्षिमरुद्गणैः-स्तूयमानो ययौ यत्र तत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १ ॥ ददर्श तत्र गोविन्दं

इन तीनों लोकोंमें जानेवाली गङ्गाको देख ॥ ३९ ॥ तेरे पूर्व पितामह उस राजर्षिसे धर्मने इस प्रकार कहा, तब वह राजर्षि, धर्मके तथा स्वर्गवासियोंके साथ, ऋषियोंने जिसकी उत्तम स्तुति की है ऐसी पावन करने वाली पवित्र देवनदी गङ्गाके ऊपर गये और तहाँ स्नान करके उस राजाने अपने मानुषी देहको त्याग दिया ॥ ४०–४१ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने उस जलमें स्नान करके अपने दिव्य शरीरको धारण किया और वैरभाव तथा सन्तापसे शून्य होगये ४२ तहाँसे बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिर, देवताओंसे घिरे, महर्षियोंसे स्तुति कियेहुए धर्मके साथ, जहाँ ये पुरुषोंमें सिंह समान, शूर और जिनका क्रोध जातारहा है ऐसे पाण्डव और धृतराष्ट्रके पक्षवाले अपने २ स्थानोंमें पहुँचे हुए थे तहाँ गये ॥ ४३–४४ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–तदनन्तर देवता, ऋषि और मरुद्गणोंसे स्तुति कियेजाते हुए राजा युधिष्ठिर, जहाँ कुरुओंमेंके

ब्राह्मेण वपुषान्वितम् । तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनैव सूचितम् ॥२॥
दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम् । चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः
पुरुषविग्रहैः॥३॥उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा । तथा स्व-
रूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम् ॥४॥तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य
युधिष्ठिरम्। यथावत् प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ॥५॥अपरस्मिन्नथो-
द्देशे कर्णं शस्त्रभृताम्वरम् । द्वादशादित्यसदृशं ददर्श कुरुनन्दनः ६
अथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं विभुम् । भीमसेनमथापश्यत्तेनैव
वपुषान्वितम् ॥ ७ ॥ वायोर्मूर्त्तिमतः पार्श्वे दिव्यमूर्त्ति-
समन्वितम् । श्रिया परमया युक्तं सिद्धिं परमिकाङ्गतम् ॥ ८ ॥
अश्विनोऽस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा । नकुलं सहदेवं

उत्तम पुरुष गये थे तहाँ पहुँचे ।१ । तहाँ उन्होंने ब्रह्मरूप शरीर-
धारी गोविन्दका दर्शन किया, कि—जो शरीर पहले देखनेमें
आया था वैसे ही शरीरसे वह पहचाने गये ॥ २ ॥ वह अपने
शरीरसे दिपरहे थे, दिव्य अस्त्र उनकी सेवा कररहे थे, चक्र आदि
भयानक अस्त्र दिव्य पुरुषका विग्रह धारण करके उनकी
सेवा कररहे थे ॥ ३२ ॥ सुन्दर तेजस्वी वीर अर्जुन उनकी उपा-
सना कररहा था, युधिष्ठिरने ऐसे रूपमें मधुसूदनका दर्शन
किया ॥ ४ ॥ पुरुषोंमें सिंहकी समान, देवताओंसे पूजित उन
दोनों जनोंने युधिष्ठिरको देखकर उनकी पूजा की और यथावत्
आदरके साथ अपने पास बैठाया । ५ । फिर युधिष्ठिरने दूसरे
स्थानमें जाकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णको बारह आदित्योंके
साथ बैठाहुआ देखा । ६ । तदनन्तर दूसरे भागमें मरुत्गणोंसे
घिरेहुए बलवान् भीमसेनको उस ही शरीरसे युक्त देखा । ७ ।
मूर्त्तिमान् वायुके समीपमें वह दिव्य मूर्त्तिवाला, परम श्रीवाला
और परम सिद्धिवाला मालूम होता था । ८ । युधिष्ठिरने दोनों
अश्विनीकुमारोंके स्थानमें अपने तेजसे दिपते हुए नकुल और

च ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ९ ॥ तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम् । वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम् ॥ १० ॥ अखिलं सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद्युधिष्ठिरः । ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट् ॥ ११ ॥ श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता । अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर ॥ १२ ॥ रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना । द्रुपदस्य कुले जाता भवद्भिश्चोपजीविता ॥१३॥ एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः । द्रौपद्यास्तनया राजन् युष्माकममितौजसः ॥ १४ ॥ पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् । एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः ॥१५॥ अयं ते पूर्वजो भ्राता कौन्तेयः पावकद्युतिः ।

सहदेवको देखा ॥ ९ ॥ तथा कमल और उत्पलोंकी माला वाली, अपने ही शरीरसे स्वर्गको पाकर खडी हुई, सूर्यकी समान तेजवाली द्रौपदीको उन्होंने देखा ॥१०॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने एक साथ उन सबोंसे बूझना चाहा, तदनन्तर देवराज भगवान् इन्द्रने उनसे कहना आरम्भ किया, कि–॥ ११ ॥ इस श्रीने तुम्हारे लिये द्रौपदीका मनुष्य शरीर धारण किया था, हे युधिष्ठिर ! पवित्र गन्धवाली, सबकी इच्छा की हुई यह कान्ता किसी योनिसे उत्पन्न नहीं हुई थी, ॥ १२ ॥ शूलपाणिने तुम्हारे मनोरञ्जनके लिये, इसको रचा था, द्रुपदके कुलमें यह प्रकट हुई थी और तुमने इसको भोगा था ॥ १३ ॥ ये पाँचों महाभाग्यशाली द्रौपदीके और तुम्हारे पुत्र हैं, ये बड़े प्रभावशाली हैं, ये अग्निकी समान तेजस्वी गन्धर्व हैं, ॥ १४ ॥ और महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्रको गन्धर्वोंका राजारूप देखो, इनको तुम अपने पितासे पहले उत्पन्न हुए उनको बड़े भ्राता जानो ॥१५॥ अग्निकी समान प्रकाशवाला यह कुन्तीका पुत्र (कर्ण) तेरा बडा भाई है, यह सूतपुत्रोंमें सबसे प्रथम, श्रेष्ठ और राधेय नामसे प्रसिद्ध

सूतपुत्रोऽग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः ॥१६॥ आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभम् । साध्यानामथ देवानां विश्वेषां मरुतामपि ॥१७॥ गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान् । सात्यकिप्रमुखान् वीरान् भोजांश्चैव महाबलान् ॥ १८ ॥ सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम् । अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १९ ॥ एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च सङ्गतः । विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥२०॥ वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम् । द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥२१॥ एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव । गन्धर्वैः सहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा २२ गुह्यकानां गतिं चापि केचित् प्राप्ता नराधिप । त्यक्त्वा देहं जितस्वर्गाः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः २३

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

था ॥ १६ ॥ देखो यह पुरुषश्रेष्ठ आदित्यके साथ जारहा है, साध्य विश्वदेवा और मरुतोंके गणोंमें हे राजेन्द्र ! वृष्णि और अन्धकोंके महारथियोंको, सात्यकी आदि वीरोंको और महाबली भोजोंको देखो ॥१७-१८॥ किसीसे न हारनेवाले महाधनुषधारी चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् सुभद्राके पुत्र अभिमन्युको सोमके साथ देखो॥१९॥कुन्ती और माद्रीके सहित तुम्हारे पिता यह महाधनुषधारी राजा पाण्डु विमानमें बैठकर सदा मेरे पास आते हैं २० शन्तनुके पुत्र भीष्मको वसुओंके साथमें देखो बृहस्पतिके पासमें इन अपने गुरु द्रोणको देखो ॥ २१ ॥ और हे पाण्डव ! ये दूसरे राजे तथा तुम्हारे योधा गन्धर्वोंके सहित तथा यक्षोंके और पुण्यजनोंके साथ जारहे हैं ॥ २२ ॥ कितने ही राजाओंने गुह्यकोंकी गति पायी है;इन्होंने अपने मनुष्य शरीरको छोडकर पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंसे स्वर्गको जीत लिया है २३ चौथा अध्याय समाप्त।

जनमेजय उवाच । भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः। विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १ ॥ धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित् । दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः॥२ कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः । घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्त्तिताः॥३॥ ये चान्ये कीर्त्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्त्तयः। स्वर्गे कालं कियन्तन्ते तस्थुस्तदपि शंस मे॥४॥ आहोस्वित् शाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम। अन्ते वा कर्मणां कान्ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः॥ ५ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम। तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६ ॥ सौतिरुवाच । इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना । व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । न शक्यं

जनमेजयने कहा, कि-भीष्म और द्रोण ये दोनों महात्मा राजा धृतराष्ट्र तथा विराट और द्रुपद ये दोनों तथा शङ्ख और उत्तर १ धृष्टकेतु राजा जयत्सेन और दुर्योधनके पुत्र तथा सुबलका पुत्र शकुनि ॥ २ और कर्णके पराक्रमी पुत्र, राजा जयद्रथ और घटोत्कच आदि जो दूसरे बताये हैं ॥ ३ ॥ तथा प्रकाशमान शरीरों वाले दूसरे जिन राजाओंकी बात कही है वे राजे स्वर्गमें कितने समय तक रहे यह भी मुझे सुनाइये ॥ ४ ॥ अथवा हे द्विजोत्तम ! क्या तहाँ उनका स्थान शाश्वत (सदाके लिए) है? और कर्मों का अन्त होने पर उन श्रेष्ठ पुरुषोंने कौनसी गति पायी ? । ५ । हे द्विजोत्तम ! आपका कहा हुआ यह वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ क्योंकि-जाज्वल्यमान तपके द्वारा आप इस सबको देखते हैं ॥ ६ ॥ सौति कहते हैं, कि-राजा जनमेजयने वैशम्पायनसे इस प्रकार बूझा, तब उन विप्रर्षिने महात्मा व्यासजीकी आज्ञा पाकर उस राजाको उत्तर देना आरंभ किया ॥ ७॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजन ! कर्मोंका अन्त होजाने पर सब फिर अपनी

कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप । प्रकृतिं किन्नु सम्यक्ते पृच्छैषा संप्रयोजिता ॥ ८ ॥ शृणु गुह्यमिदं राजन् देवानां भरतर्षभ । यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ॥९॥ मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः । अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् १० तेनोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम् । वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ॥ ११ ॥ अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ । बृहस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्यङ्गिरसां वरम् ॥ १२ ॥ कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान् । सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान् प्राप दुरासदान्।

प्रकृतिमें लीन होजायँ, यह नहीं होसकता, जो अपनी प्रकृतिमें लीन नहीं हुए हैं उनके उद्देश्यसे तेरा यह प्रश्न करना ठीक है ८ हे भरतसत्तम राजन् ! यह एक देवताओंकी गुप्त बात है, इसको तू सुन, कि-जिसके विषयमें हे कुरुवंशी राजन् ! महातेजस्वी दिव्य नेत्रवाले, प्रतापी, पुराणमुनि महाव्रतधारी अगाध बुद्धि, सबको जाननेवाले और सब कर्मोंके परिणामके ज्ञाता पराशरके पुत्र व्यासजीने यह बात कही है ॥ ९-१० ॥ उन्होंने ऐसा कहा है, कि- कर्मोंके अन्तमें कितने ही अपने मूल शरीरोंमें प्रवेश करते हैं (जैसे, कि-) महातेजस्वी और महाकान्तिवाले भीष्मने वसुओंमें प्रवेश किया है ॥ ११ ॥ क्योंकि-हे भरतसत्तम ! केवल आठ ही वसु देखनेमें आते हैं (यदि ऐसा नहीं होता तो भीष्म वसुओंके साथ एक हुए नहीं माने जाते, किन्तु वसुओंकी समान लोकको प्राप्त हुए माने जाते और भीष्मजी नवम वसु सरीखे दीखते) इसप्रकार ही अङ्गिराओंमें श्रेष्ठ द्रोणके बृहस्पतिमें प्रवेश किया १२ हृदीकके पुत्र कृतवर्माने मरुत्गणोंमें प्रवेश किया है, ऐसे ही प्रद्युम्न, जैसे आया था तैसे ही सनत्कुमारमें प्रवेश कर गया है ॥१३॥धृतराष्ट्र, कठिनसे प्राप्त होने योग्य कुबेरके लोकोंमें पहुँच

धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ॥ १४ ॥ पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ । विराट्द्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥ निशठाक्रूरसाम्बाश्च भानुकम्पो विदूरथः । भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः ॥ १६ ॥ कंसश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च । उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः १७ विश्वेषां देवतानान्ते विविशुर्नरसत्तमाः। वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥ १८ ॥ सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्। स युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित् १९ विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः । आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभः ॥ २० ॥ द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम् । धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः ॥ २१ ॥

गया है और धृतराष्ट्रके साथ यशस्विनी गान्धारी भी वहाँ ही गई है ॥१४॥ पाण्डु अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ महेन्द्रके स्थान में गया है तथा विराट और द्रुपद ये दोनों तथा राजा धृष्टकेतु ॥ १५ ॥ निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानुकम्प, विदुरथ, भूरिश्रवा तथा शल और राजा भूरि ॥ १६ ॥ कंस, उग्रसेन तथा वसुदेव और अपने भ्राता शङ्खके सहित नरश्रेष्ठ उत्तर ॥१७॥ इन सब मनुष्योंमें उत्तम पुरुषोंने विश्वेदेवाओंमें प्रवेश किया, महातेजस्वी प्रतापी वर्चा नामवाला सोमका पुत्र ॥ १८ ॥ मनुष्योंमें सिंहकी समान अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु हुआ था, वह क्षत्रियके धर्मानुसार इस प्रकार लडा, कि—जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं लडा था, ऐसा युद्ध करके वह सोममें मिलगया है और हे पुरुषसत्तम! कर्मोंके अन्तमें धर्मात्मा महारथी कर्णने मारेजाने पर सूर्यमें प्रवेश किया है ॥ १९-२० ॥ शकुनिने द्वापरमें, धृष्टद्युम्नने अग्निमें और धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंने अतिबली यातुधानोंमें प्रवेश किया है। २१ । ये सब ऋद्धिवाले महात्मा शस्त्रोंसे पवित्र होकर

ऋद्धिमन्तो महात्मानः शक्रपूता दिवं गताः । धर्ममेवाविशत् क्षत्ता
राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ अनन्तो भगवान् देवः प्रविवेश
रसातलम् । पितामहनियोगाद्धि यो योगाद्गामधारयत् ॥ २३ ॥ यः
स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः । तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्म-
णोऽन्ते विवेश ह ॥२४॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः ।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ॥ २५ ॥ तत्र त्यक्त्वा
शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः । ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेव-
मुपाविशन् ॥ २६ ॥ हतास्तस्मिन्महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः ।
घटोत्कचादयश्चैव देवान् यक्षांश्च भेजिरे ॥ २७ ॥ दुर्योधनसहा-
याश्च राक्षसाः परिकीर्त्तिताः । प्राप्तास्ते क्रमशो राजन् सर्वे लोका-
ननुत्तमान् ॥ २८ ॥ भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः । वरु-

स्वर्गमें गये हैं, विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्ममें प्रवेश किया
है ॥ २२ ॥ भगवान् अनन्तदेव (बलराम) ने पातालमें प्रवेश
किया है, पितामहकी आज्ञानुसार उन्होंने योगबलसे पृथ्वीको
धारण किया है२३जो प्रसिद्ध नारायण नामक सनातन देवदेव
हैं उनके ही अंशसे श्रीकृष्ण अवतरे थे और उन्होंने कार्य साधन
के अन्तमें श्रीनारायणमें ही प्रवेश किया है । २४ । हे जनमेजय !
श्रीकृष्णके रनवासमें सोलह सहस्र स्त्रियें(अनेकों प्रकारकी वृत्तियें)
थीं उनको कालने सरस्वती (ज्ञान) में डुबा दिया है॥ २५ ॥
तहाँ मनुष्य शरीरोंको त्यागकर वे फिर स्वर्गमें चढगयी हैं और
वे अप्सरायें बनकर भगवान्के समीप पहुँचगयी हैं ॥ २६ ॥ उस
महासंग्राममें जो२ वीर महारथी मारेगये वे देवता और यक्ष बन
गये हैं॥२७॥जिनकी बातें कहीजाचुकी हैं वे दुर्योधनके सहायक
राक्षस थे, हे राजन् ! उन सबोंने भी क्रमसे उत्तम लोक पाये
हैं ॥ २८ ॥ कितने ही श्रेष्ठ पुरुष इन्द्रके भवनमें, कितने ही बुद्धि-
मान् कुबेरके लोकोंमें और कितने ही वरुणके लोकोंमें गये हैं२९

णस्य तथा लोकान् विविशुः पुरुषर्षभाः ॥ २९ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते । कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ ३० ॥ सौतिरुवाच । एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः स राजा जनमेजयः । विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३१ ॥ ततः समापयामासुः कर्म तत्रास्य याजकाः । आस्तीकश्चाभवत् प्रीतः परिमोच्य भुजङ्गमान् ॥३२॥ ततो द्विजातीन् सर्वांस्तान् दक्षिणाभिरतोषयत् । पूजिताश्चापि ते राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतम् ॥३३॥ विसर्ज्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः।ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयम् ॥ ३४ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्त्तितम् । व्यासाज्ञया समाज्ञातं सर्पसत्रे नृपस्य हि ॥ ३५ ॥ पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रञ्चेदमुत्तमम् । कृष्णेन मुनिना विप्र निर्मितं सत्यवादिना ॥ ३६ ॥ सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञान-

---

हे महाकान्तिवाले भरतवंशी!कुरु और पाण्डवोंका यह सब चरित तुम्हें विस्तारसे सुनादिया ॥३०॥ सौति कहते हैं,कि-हे द्विजश्रेष्ठों ! यज्ञके कर्मोंके समय यह बात सुनकर राजा जनमेजय बड़े ही आश्चर्यमें होगया था ॥ ३१ ॥ फिर इसके यज्ञकराने वालोंने उसके कर्मकी समाप्ति करवायी और सर्पोंको छुटाकर आस्तीकभी प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥ फिर उसने सब ब्राह्मणोंको दक्षिणायें देकर सन्तुष्ट किया,वे भी राजासे सत्कार पाकर जहाँ२से आये थे तहाँ २ को ही लौटगये ॥ ३३ ॥ राजा जनमेजय भी उन ब्राह्मणोंको विदा करके तक्षशिला नामकी नगरीसे फिर हस्तिनापुरमें लौट आया ॥ ३४ ॥ उस राजाके सर्पयज्ञमें व्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनने यह कथा सुनायी थी वह मैंनें (सूतने) तुम्हें सुनायी है ॥३५॥ यह इतिहास पुण्यवान्,पवित्र और उत्तम है, हे विप्र ! इसको सत्यवादी कृष्णद्वैपायन मुनिने रचा है।३६। उन सर्वज्ञ विधिको जाननेवाले,धर्मके ज्ञाता, सत्पुरुष, इन्द्रियोंको

वता सता । अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना ॥ ३७ ॥ ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा । नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३८ ॥ कीर्त्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् । अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ ३९ ॥ यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि । धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४० ॥ कार्ष्णं वेदमिदं सर्वं शृणुयाद्यः समाहितः । ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति ४१ यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः। अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४२ ॥ अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा । महाभारतमाख्याय पश्चात् सन्ध्यां प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ यद्रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः । महाभारतमाख्याय पूर्वां सन्ध्यां

वशमें रखनेवाले, तपस्वी, भावितात्मा, ऐश्वर्यमें ही रहनेवाले सांख्य और योगके पारङ्गत और अनेकों तन्त्रोंके विद्वान् पवित्र पुरुषने दिव्य दृष्टिसे देखकर, महात्मा पाण्डवोंकी तथा अत्यन्त द्रव्यवाले बहुतसे तेजस्वी क्षत्रियोंकी कीर्त्तिको इस लोकमें फैलाने के लिये इस आख्यानको रचा है ॥३७–३९॥ जो कोई विद्वान् सदा प्रत्येक पर्व पर इसको सुनाता है उसके पाप धुलजाते हैं, स्वर्गको जीतलेता है और ब्रह्मभावको पानेमें समर्थ होजाता है ४० इस कृष्ण द्वैपायनके रचेहुए संपूर्ण (पाँचवें) वेदको जो ध्यान देकर सुनता है उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४१ ॥ जो कोई श्राद्धमें ब्राह्मणोंसे इस महाभारतके एक पादको भी सुनलेता है उसके पितर अक्षय अन्न और पान पाते हैं ॥ ४२ ॥ इन्द्रियोंसे या मनसे भी जो कोई दिनमें पाप करता है वह महाभारतका कीर्त्तन करके सन्ध्याके पश्चात् उस पापसे मुक्त होजाता है ॥ ४३ ॥ स्त्रियोंके समूहोंसे घिराहुआ ब्राह्मण रात्रिमें जो कुछ भी पाप करता है उससे महाभारत का

प्रमुच्यते४४भरतानां महज्जन्म तस्माद्भारतमुच्यते । महत्त्वाद्भारव-त्त्वाच्च महाभारतमुच्यते । निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते४५ अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः । वेदाः सांगास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम् ॥ ४६ ॥ श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः । अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥ ४७ ॥ त्रिभि-र्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।अखिलं भारतं चेदं चकार भग-वान् मुनिः ॥४८॥ आकर्ण्य भक्त्या सततं जयाख्यं भारतं महत्। श्रीश्च कीर्त्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा ॥ ४९ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ । यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहा-स्ति न कुत्रचित् ॥ ५० ॥ जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्ष-

कीर्त्तन करने पर प्रातःकालकी सन्ध्याके समय मुक्त होजाता है४४ इसमें भरतवंशी राजाओंके बड़ेभार चरित्र (जन्म) का वर्णन होनेसे यह महाभारत कहलाता है तथा बड़ा होनेसे और भारी होनेसे यह महाभारत कहलाया है, इस महाभारतके निर्वचन (तात्पर्य)को जो जानता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ४५ अठारहपुराण और सब धर्मशास्त्र तथा अङ्गों सहित सब वेद एक ओर हैं और एक ओर महाभारत है ॥४६॥ अठारह पुराणोंके कर्त्ता और वेदरूप महासागरका मथनकरने वाले महात्मा ऋषि वेदव्यासके इस सिंह समान नाद(महाभारत को सुनो ॥४७॥ भगवान् कृष्ण द्वैपायन समर्थ मुनिने इस सम्पूर्ण महाभारतको तीन वर्षमें पूरा किया है ॥४८॥ भक्तिके साथ इस जय नामक महाभारतको निरन्तर सुनकर (सुननेवालेके यहाँ) श्री, कीर्ति तथा विद्या सदा इकट्ठी रहती हैं ॥ ४९ ॥ हे भरतसत्तम ! वे श्री, कीर्त्ति और विद्या, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें (सदा हित-कारी होती हैं),जो इस महाभारतमें ही वहीं दूसरे ग्रन्थोंमें है, जो महाभारतमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है ॥ ५० ॥ मोक्ष चाहने वाले ब्राह्मणको, क्षत्रियको और गर्भिणी स्त्रीको इस जय नामके

मिच्छता । ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ५१ ॥ स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम् । गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम् ॥ ५२ ॥ अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः । सन्दर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ५३ षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम् । त्रिंशत्शतसहस्राणि देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५४ ॥ पित्र्ये पञ्चदश ज्ञेयं यक्षलोके चतुर्दश । एकं शतसहस्रन्तु मानुषेषु प्रभाषितम् ॥ ५५ ॥ नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् । रक्षोयक्षाञ्छुको मर्त्यान् वैशम्पायन एव तु ॥५६॥ इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम् । व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ५७ ॥ स नरः सर्वकामांश्च कीर्त्तिं प्राप्येह शौनक । गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे

इतिहासको सुनना चाहिये ॥ ५१ ॥ स्वर्गकी कामनावाला स्वर्ग पाता है जय चाहनेवाला जय पाता, गर्भिणी पुत्रको पाती है अथवा बडभागिनी कन्याको पाती है ५२ अनागत (नित्यसिद्ध) और मोक्षस्वरूप प्रभु कृष्ण द्वैपायनने धर्मकी कामनासे इस भारत-सन्दर्भको रचा है ।५३। उन्होंने साठ सौ हजार ६०,००,००० की एक संहिता रची, उसमेंसे तीस सौ हजार ३०,००,००० की संहिता देवलोकमें देदी॥५४॥पन्द्रहसौ हजार १५,००, ००० की संहिता पितृलोकमें और चौदह सौ हजार १४,००,००० की संहिता यक्षलोकमें तथा एक सौ हजार १,००,००० की संहिता मनुष्यलोकमें दी है ॥५५॥ नारदने देवताओंको, असित देवलने पितरोंको शुकने राक्षसोंको और यक्षोंको तथा वैशम्पायनने वह संहिता मनुष्योंको सुनायी ॥ ५६ ॥ यह पवित्र, बड़ेभारी अर्थसे भराहुआ और वेदोंका मान्य (अनुकूल) व्यासजीका कहाहुआ इतिहास जो ब्राह्मणको आगे रखकर सुनता है ।।५७॥ हे शौनक।वह मनुष्य इस लोकमें सब कामनाओंको और कीर्तिको

नास्ति संशयः ॥५८॥ भारताध्ययनात् पुण्यादपि पादानधीयतः । श्रद्धया परया भक्त्या श्राव्यते चापि येन तु । य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥ ५९ ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च । संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥६०॥ हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च । दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ६१ ॥ ऊर्द्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे । धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥६२॥ न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः । नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ६३ इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६४ ॥ यथा समुद्रो भगवान् यथा च हिमवान्

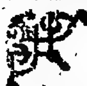
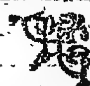
पाकर इस-लोकमें ही परमसिद्धि पालेता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ जो यह पवित्र संहिता (व्यासजीने) अपने पुत्र शुकदेवको पढायी थी, उन शुकदेवकी सीखी हुई इस संहिताके एक श्लोकके एक पादके सीखने वाले को तथा जो परमभक्ति और श्रद्धासे सुनता है उसको भी महाभारतके पवित्र अध्ययनका फल मिलता है५९हजारों माता पिता तथा सैंकडों पुत्र और स्त्रियें इस संसारमें अनुभवमें आये हैं और दूसरे आवेंगे६०(इस लोकमें)हर्ष के स्थान हजारों हैं और भयके स्थान सैंकडों हैं वे प्रतिदिन मूढ पुरुषोंमें प्रवेश करते हैं, परन्तु पण्डितको नहीं छूते ॥ ६१ ॥ मैं ऊँचा हाथ करके इस विषयमें पुकार कर कहरहा हूँ, परन्तु मेरी बात कोई नहीं सुनता, धर्मसे अर्थ और काम मिलता है तो उस धर्मका सेवन क्यों नहीं कियाजाता ? ॥ ६२ ॥ कामवश, भयके कारण, लोभवश तथा प्राणोंके लिये भी कभी कोई धर्मको न त्यागो, धर्म नित्य है और सुख दुःख ये दोनों अनित्य हैं, जीव नित्य है परन्तु उसका हेतु शरीर अनित्य है ॥ ६३ ॥ जो इस भारतरूपा सरस्वतीका प्रातःकालके समय उठकर पाठ करता

गिरिः । ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥६५॥ कार्ष्णं
वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते । इदं भारतमाख्यानं यः पठेत्
सुसमाहितः । स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः ६६
द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवञ्च । यो
भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ६७
यो गोशतं कनकशृंगमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।पुण्यां
च भारतकथां सततं शृणोति तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ६८

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां
स्वर्गारोहणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
समाप्तञ्च स्वर्गारोहणं पर्व.

है वह भारतके अध्ययनका फल पाकर परम ब्रह्मको पाता है६४ जैसे भगवान् समुद्र, जैसे हिमालय पर्वत ये दोनों रत्नोंकी खान माने गये हैं तैसे ही यह भारत भी रत्नोंका निधि कहलाताहै६५ कृष्णद्वैपायनके रचेहुए इस वेदको सुनाकर मनुष्य धन पाता है, जो मनुष्य अच्छे प्रकारसे ध्यान देकर इस भारतके आख्यानको पढता है वह परम-सिद्धिको पाता है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है॥६६॥द्वैपायनके ओष्ठपुटमेंसे निकले हुए, अप्रमेय, पुण्यदायक, पवित्र, पापोंको हरनेवाले और कल्याण करनेवाले, प्रवचनरूप कहलातेहुए इस भारतको जो निरन्तर विचारता है,उसको पुष्कर तीर्थके जलमें स्नान करनेसे क्या काम ?॥६७॥ वेदको जाननेमें विद्वान्, अत्यन्त अधिक शास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणको सोनेसे मढ़े सींगोंवाली सौ गौएं देनेवालेका फल-और निरन्तर इस भारतकी कथाको सुननेवालेका फल ये दोनों समान हैं ॥ ६८ ॥

श्रीमहाभारतका स्वर्गारोहणपर्व मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र-
गौड़वंश्य प०भोलानाथात्मज-ऋषिकुमार रामस्वरूपशर्माकृत
हिन्दी-भाषानुवादसहित
समाप्त.

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमहाभारत-श्रवणविधिः

जनमेजय उवाच । भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः । फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेऽविह ॥ १ ॥ देयं समाप्ते भगवन् किञ्च पर्वणि पर्वणि । वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद् ब्रवीहि मे ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात् । श्रुताद्भवति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ३ दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः । कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥ हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः । ऋषीणां देवतानाञ्च सम्भवं वसुधातले ॥५॥ अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः । आदित्याश्चाश्विनौ देवौ

जनमेजयने कहा, कि—हे भगवन् ! पण्डितोंको यह महाभारत किस विधिसे सुनना चाहिए, इसके सुननेका क्या फल है, और इसकी पारणा करनेमें किन २ देवताओंका पूजन करना चाहिये ? ॥ १ ॥ हे भगवन् ! पर्व२के समाप्त होने पर क्या देना चाहिये ? और इसकी कथाके लिए कैसा कथावाचक बुलाना चाहिये, यह मुझे सुनाइये ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजन् ! भारतको सुननेकी इस विधिको सुनो और हे राजेन्द्र ! भारतके सुननेसे जो फल होता है, जैसा कि—तूने मुझसे बूझा है, उसको भी सुन ॥ ३ ॥ हे राजन् ! स्वर्गमेंके देवता क्रीडा करनेके लिये पृथ्वी पर आये थे और वे इस कामको करके फिर स्वर्गमें पहुँचगये हैं ॥ ४ ॥ इस भूतल पर ऋषियोंके और देवताओंके जन्मके विषयमें तुझसे मैं जो कुछ कहता हूँ उसको अरे ! तू ध्यान देकर सुन ॥ ५ ॥ यहाँ रुद्र, साध्य, शाश्वत

लोकपाला महर्षयः ॥ ६ ॥ गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरा-स्तथा । सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥ ७ ॥ गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः । ग्रहाः सम्वत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥ स्थावरं जङ्गमञ्चैव जगत् सर्वं सुरासुरम् । भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९ ॥ तेषां श्रुत्वा प्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात् । कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥१०॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः । संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥ तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम् । ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरर्षभ ॥ १२ ॥ महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च । गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥१३॥ सर्वकामगुणोपेता

(सनातन कालके) विश्वेदेवा, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, लोकपाल तथा महर्षि, ॥ ६ ॥ और गुह्यक, गन्धर्व, नाग तथा विद्याधर, सिद्ध, स्वयं धर्म और स्वयंभू, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन७ पर्वत सागर, नदियें तथा अप्सराओंके समूह, ग्रह, सम्वत्सर, अयन तथा ऋतु । ८ । स्थावर और जङ्गम सकल जगत्, देवता और असुर हे भरतश्रेष्ठ ! इस भारतमें एक ही जगह इकट्ठे हुए प्रतीत होते हैं ॥ ९ ॥ उनकी प्रतिष्ठाकी कथाको सुनकर तथा उनके नाम और कर्मोंका कीर्त्तन करके मनुष्य चाहे जैसे घोर पातक करने पर भी उससे एक साथ मुक्त होजाता है ॥ १० ॥ मनुष्य मनको नियममें रखकर पवित्र होकर इस इतिहासको यथा विधि क्रमसे सुनकर और भारतके पार पहुँच ॥११॥ हे भरतवंशी हे भरतसत्तम! भारतको सुनकर उसमें सुनेहुए वीरोंके श्राद्धकरे और शक्ति तथा भक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको ॥ १२ ॥ भाँति२ के रत्न, गौएँ दूध दूनेके काँसीके पात्र तथा अच्छे प्रकार गहनों से सजी हुई और सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली गुणवती

यानानि विविधानि च । भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥ १४ ॥ वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः । शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥ यद्यद् गृहे वरं किञ्चिद् यद्यदस्ति महद्वसु । तत्तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ॥१६॥ श्रद्धया परया युक्तं क्रमशस्तस्य पारगः । शक्तितः सुमनाः हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥ १७ ॥ सत्यार्जवरतो दान्तः शुचिः शौचसमन्वितः । श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिध्यति तच्छृणु ॥१८॥ शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः । संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनुसूयकः ॥१९॥ रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः । दानमानगृहीतश्च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥ अविलम्बमना यस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम् । असं-

---

कन्यायें भाँति२की सवारियें, विचित्र स्थान, भूमि, वस्त्र और सुवर्णके बड़े२ दान देय ॥ १३–१४ ॥ तथा भाँति२के वाहन घोड़े और मतवाले हाथी, शय्याएँ,पालकियें और उत्तम रीतिसे सजे हुए रथोंके दान देय । १५ । घरमें जो२ वस्तु श्रेष्ठ और बड़ी हो वह ब्राह्मणोंको दानमें देय, अपना आपा, स्त्रियें तथा पुत्रोंको भी देदेय । १६ । परम श्रद्धासे क्रमानुसार उसके पार पहुँचनेवाला शुश्रषु निर्मल मन रखकर, प्रसन्न होते हुए, मन में विकल्प न करके, शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दान देय १७ मनुष्य सत्य और सरलताका प्रेमी,इन्द्रियोंका दमन करने वाला पवित्र चित्त पवित्र आचरणवाला, श्रद्धावान् और क्रोधको जीतने वाला कैसे होता है, उसको सुन । १८ । पवित्रतासे रहनेवाला, शीलवान् , आचारवान् , श्वेतवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारी, सब शास्त्रोंको जाननेवाला श्रद्धावान,किसीसे डाह न करनेवाला रूपवान् सौभाग्यवान् , मनको वशमें रखनेवाला,सत्यवादी जितेन्द्रिय और जिसको दान और मान मिलचुका हो, ऐसे मनुष्य

सक्ताक्षरपदं स्वरभावसमन्वितम् ॥ २१ ॥ त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्ट-
स्थानसमीरितम्।वाचयेद्व वाचकः स्वस्थः स्वासीनः सुसमाहितः२२
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो
जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥ ईदृशाद्वाचकाद् राजन् श्रुत्वा भारत भार-
तम् । नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥ २४ ॥
पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयन् । आग्निष्टोमस्य यज्ञस्य
फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते
नरः । प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥२६ ॥ द्वितीयं
पारणं प्राप्य सोऽतिरात्रफलं लभेत् । सर्वरत्नमयं दिव्यं विमान-
मधिरोहति ॥ २७ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।

को भारतका कथावाचक बनाना चाहिये । १६-२० । कथा कहनेवाला विलम्ब न लगावे, परिश्रम न माने, शीघ्रता न करे धैर्यवान् हो उत्साही हो, अक्षर और पदोंको उलझाकर न बोले अच्छे स्वरसे पढ़ सकता हो और भावार्थ समझा सके । २१ । तिरेसठ वर्णोंका, आठों स्थानोंसे अच्छे प्रकारसे उच्चारण कर सकता हो, ऐसा कथावाचक स्वस्थताके साथ सुन्दर आसन पर बैठकर बहुत सावधानीके साथ कथा सुनावे ॥ २२ ॥ नारायण, नरोंमें श्रेष्ठ नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके महाभारतका कीर्तन करे ॥२३॥ हे भरतवंशी राजन् ! ऐसे कथा बाँचनेवालेसे महाभारतकी कथा सुने, नियमोंका पालन करने वाला पवित्र श्रोता कथाको सुनकर इसप्रकार फल पाता है।२४। पहले पारणको पाकर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेवाला मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके फलको पाता है ॥ २५ ॥ उसको अप्सराओंके समूहोंसे भराहुआ बड़ाभारी विमान मिलता है और वह बड़ा हर्ष पाता हुआ एकध्यान होकर देवताओंके साथ स्वर्गमें जाता है ॥२६॥ जब दूसरा पारण आता है तब उसको अतिरात्रका फल मिलता

दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥ तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् । वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥ २९ ॥ चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् । उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥ विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति । वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ३१ षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् । कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥ परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् । विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥ सर्वाल्लोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः । अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥ चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।

है, वह रत्नोंसे पूरे जड़ेहुए विमानोंमें बैठकर जाता है ॥ २७ ॥ दिव्य मालायें और वस्त्रोंवाला, दिव्य गन्धोंसे शोभायमान और दिव्य बाजूबन्दोंको धारण करनेवाला वह नित्य देवलोकमें पूजा जाता है ॥ २८ ॥ तीसरे पारण पर पहुँचकर द्वादशाह यज्ञके फलको पाता है और देवताओंकी समान होकर दश हजार वर्ष तक स्वर्गमें बसता है ॥२९॥ चौथे पारण पर पहुँचकर वाजपेय यज्ञका और पाँचवें पारण पर दो वाजपेयका फल पाता है और उदय होतेहुए सूर्यकी समान तथा जलतेहुए अग्निकी समान दमकतेहुए विमानोंमें देवताओंके साथ चढ़कर स्वर्गमें जाता है और स्वर्गमें दश सहस्र वर्ष तक इन्द्रके भवनमें आनन्द भोगता है ॥३०—३१॥ छठे पारणके समय पाँचवेंसे दुगने और सातवें पारणके समय पाँचवेंसे त्रिगुण फलको पाता है और कैलासके शिखरके आकारवाले, वैदूर्यमणिकी वेदिकावाले, भाँति२के अनेकों मणि मूँगोंसे शोभायमान, इच्छानुसार चलनेवाले और अप्सराओंके झुंडोंसे भरे विमानमें बैठकर, दूसरा सूर्यसा सब लोकोंमें घूमता है, आठवें पारण पर उसको राजसूय यज्ञका फल मिलता है।३२-३४।

चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥३५॥ सेव्यमानो वरस्त्रीणां
चन्द्रात्कान्ततरैर्मुखैः । मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः॥
अङ्के परमनारीणां सुखसुप्तो विबोध्यते । नवमे क्रतुराजस्य वाजि-
मेधस्य भारत ॥ ३७ ॥ काञ्चनस्तम्भनिर्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८॥ सेवितं चाप्सरः-
संघैर्गन्धर्वैर्दिवि चारिभिः । विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया
ज्वलन् ॥३९॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दरूनपितः । मोदते
दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥४०॥ दशमं पारणं प्राप्य द्विजा-
तीनभिवन्द्य च । किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम्॥४१॥
रत्नवेदिकसम्बाधं वैदूर्यमणितोरणम् । हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवाल-

वह उदय होतेहुए चन्द्रमाकी समान रमणीय और चन्द्रमाकी किरणोंकी समान स्वेत तथा मनकी समान वेगवाले घोड़ोंसे जुते विमानमें बैठता है ॥३५॥ चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर मुखवाली स्त्रियोंमेंकी श्रेष्ठ स्त्रियें उसकी सेवा करती हैं और श्रेष्ठ स्त्रियोंकी गोदमें सुखसे सोयाहुआ वह,स्त्रियोंकी कमरमें पहरीहुई तागड़ीके शब्दसे तथा उनके पैरोंमें पहरेहुए नूपुरोंकी झनकारसे जागता है, हे भारत! जब नवम पारणके पार पहुँचजाता है तब यज्ञोंके राजा अश्वमेधके फलको पाता है ॥ ३६–३७ ॥ सोनेके खंभोंवाली, वैदूर्यमणिसे बनी वेदीवाले,सुवर्णकी दिव्य गोखोंसे चारों ओरसे घिरेहुए और अप्सरायें, गन्धर्व तथा आकाशमें बिचरनेवाले जिसमें सेवा करते हैं ऐसे विमानमें परमशोभासे प्रकाशित होता हुआ बैठकर दिव्य मालायें और वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा दिव्य चन्दनसे लिप्त हुआ वह पुरुष मानो दूसरा इन्द्र देवता हो, इसप्रकार स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द करता है ॥३८–४०॥ दशवाँ पारण पाकर और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, घूँघरुओंकी झालरके प्रकाशवाले,पताका और ध्वजाओंसे शोभायमान,रत्नोंकी

वलभीमुखम् ॥ ४२ ॥ गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिश्च शोभितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥ मुकुटेनाग्निवर्णेन
जाम्बूनदविभूषिणा । दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभू-
षितः ॥ ४४ ॥ दिव्याँल्लोकान् विचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः ।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥ ४५ ॥ अथ वर्षगणा-
नेवं स्वर्गलोके महीयते। ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः॥४६
पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते । दिव्ययानविमानेषु लोकेषु
विविधेषु च ॥ ४७ ॥ दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा।
ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥ ४८ ॥ शिवस्य भवने
राजन् विष्णोर्याति सलोकताम् । एवमेतन्महाराज नात्र कार्या
विचारणा॥४९॥श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम । वाचकस्य तु

बैठकोंसे भरे, वैदूर्यमणिकी तोरण तथा सुनहरी जालवाले,मूँगोंकी
छज्जोंमें लगी मैनवाले, गानेमें चतुर गन्धर्व और अप्सराओंसे
शोभायमान तथा पुण्यवानोंका निवासस्थानरूप विमान उसको
मिलता है॥४१–४३॥अग्निकी समान रङ्गके मुकुटसे और सोनेके
आभूषणोंसे शोभायमान, दिव्य चन्दनसे लिप्त अङ्गोंवाला,दिव्य
मालाओंसे सजाहुआ ॥४४॥ देवताओंकी कृपासे दिव्य भोगोंको
भोगताहुआ और परम श्रीसे युक्त वह पुरुष दिव्य लोकमें विचरता
है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार बहुतसे वर्षों तक स्वर्गमें उसकी प्रतिष्ठा
होती है, फिर गन्धर्वोंके साथ इकीस हजार वर्षों तक ॥ ४६ ॥
इन्द्रके रमणीय नगरमें इन्द्रके साथ आनन्द करता है, दिव्य
सवारियें और विमानोंमें तथा अनेकों लोकोंमें दिव्य स्त्रियोंसे
घिराहुआ वह तहाँ एक देवताकी समान निवास करता है,
फिर सूर्यके भवनमें फिर तिसीप्रकार चन्द्रमाके भवनमें ४७–४८
तथा शिवके लोकमें रहता है और हे राजन् ! अन्तमें विष्णुके
लोकमें जाता है,हे राजन् ! यह ठीक ही है,इसमें जरा भी विचार

दातव्यं मनसा यद्द यदिच्छति ॥ ५० ॥ हस्त्यश्वरथयानानि वाहनानि विशेषतः । कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथाऽपरम् ॥५१ ॥ वस्त्रं चैव विचित्रञ्च गन्धं चैव विशेषतः । देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ५२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते । वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥ ५३ ॥ जातिं देशं च सत्यञ्च महात्म्यं भरतर्षभ । धर्मं वृत्तिञ्च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥५४ ॥ स्वस्तिवाच्य द्विजानादौ ततः कार्ये प्रवर्तिते । समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद् द्विजान् ॥५५॥ आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् । विधिवद्भोजयेद् राजन् मधुपायसमुत्तमम् ॥ ५६ ॥ ततो मूलं फलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा । आस्तीके भोजयेद्राजन्

नहीं करना चाहिये ॥४९॥ श्रद्धावान् पुरुषके लिये ऐसा ही होता है, यह बात मुझसे मेरे गुरुने कही है और कथा कहनेवालेके मनमें जो इच्छा हो उसको वह पदार्थ देना चाहिये ॥५०॥ हाथी, घोड़ा,रथ,सवारी, मुख्यरूपसे वाहन, कड़े, कुण्डल तथा ब्रह्मसूत्र, वस्त्र तथा विशेषरूपसे भाँति२ के सुगन्धित पदार्थ देय, उसकी देवताकी समान पूजा करे तो विष्णुलोक मिलता है ।५१–५२। हे राजन! तदनन्तर जिस समय भारतकी कथा बाँची जारही हो उस समय पर्व २ पर ब्राह्मणोंको जो दान दिये जाते हैं, उनके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ ॥५३॥ हे भरतसत्तम राजन् ! उनकी जाति, देश सत्यवादीपन, और माहात्म्यको तथा क्षत्रियोंके धर्म और आजीविकाको जानकर, उनसे स्वस्तिवाचन करावे, फिर कार्यका आरम्भ करे, तदनन्तर जब एक २ पर्व पूरा होताजाय उस समय ब्राह्मणोंका पूजन करे ।।५४–५५॥ हे राजन् ! प्रारम्भमें तो वाचकको वस्त्र और गन्धसे पूजकर विधिपूर्वक मिष्टान्न और खीरका भोजन करावे ॥ ५६ ॥ फिर (आदिपर्व, आस्तीकपर्वकी

दध्याच्चैव गुडौदनम् ॥ ५७ ॥ अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् । सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ५८ ॥ आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् । अरणीपर्व चासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥ तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च । सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥६०॥ विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च। उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ६१ ॥ भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् । भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्वा यानमनुत्तमम् ॥ ६२ ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ।द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ॥६३॥ शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ।

कथा होय उस समय मुख्यरूपसे फल,मूल,मिष्टान्न और घीके साथ खीरका भोजन करावे तथा हे राजन्!गुड़ भातका भोजन करावे५७ हे राजेन्द्र!जब सभापर्वकी कथा होती होय उस समय मालपुए पूरी और मोदकोंका हविष्य ब्राह्मणोंको जिमावे ॥ ५८ ॥ वनपर्वकी समाप्तिके समय उत्तम ब्राह्मणोंको फल मूल खिलाकर संतुष्ट करे, वनपर्व पूरा होनेके समय जलके भरेहुए कुम्भोंका दान करे ५९ तृप्त करनेवाले वनके मुख्य २ फल मूल और सकल गुणोंवाला भोजन ब्राह्मणोंको इच्छानुसार खिलावे ॥ ६० ॥ विराटपर्वकी समाप्ति होने पर भाँति २ के वस्त्र देय, हे भरतसत्तम ! उद्योगपर्वके अन्तमें सकल गुणोंवाला भोजन, गन्ध और मालाओंसे सजायेहुए ब्राह्मणोंको इच्छानुसार खिलावे,हे राजेन्द्र!भीष्मपर्वकी समाप्तिमें उत्तम सवारियें देय ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर सब प्रकारके गुणोंवाला और उत्तम प्रकारसे राँधाहुआ अन्न देय, द्रोणपर्व पूरा होनेके समय ब्राह्मणोंको अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन देय॥६३॥ हे राजेन्द्र! कर्णपर्वके अन्तमें मनको संयममें रखकर बाण, धनुष, उत्तम तलवारें तथा सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाला

कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ।। ६४ ।। विप्रेभ्य संस्कृतं सम्यग्दद्यात् संयतमानसः । शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदकैः ६५ अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् । गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ६६ स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्। घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत्पुनः ।। ६७ ।। ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् । शान्तिपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ।।६८।। आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् । तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ।। ६९ ।। मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ।। महाप्रस्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम् ।। ७० ।। स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान् । हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद्

भोजन अच्छे प्रकारसे राँध कर ब्राह्मणोंको अच्छे प्रकारसे देय और हे राजेन्द्र! शल्यपर्वके अन्तमें, लड्डू, गुड़, भात, मालपुए और तृप्त करनेवाला अन्न देय तथा गदापर्वके अन्तमें मूँग मिलाहुआ अन्न देय ।। ६४ ।। ६६ ।। स्त्रीपर्वके अन्तमें उत्तम ब्राह्मणोंको रत्नोंसे सन्तुष्ट करे और ऐषीकपर्वके अन्तमें पहले घृत और भात देय फिर सकल प्रकारके गुणोंवाला और उत्तम प्रकारसे राँधाहुआ अन्न देय,फिर शान्तिपर्वके अन्त में ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे ।।६७-६८।। फिर आश्वमेधिकपर्व आवे तब सकल कामनायें पूरी करनेवाला भोजन करावे तथा आश्रमवासिकपर्वके अन्तमें ब्राह्मणोंको हविष्यका भोजन करावे ।। ६९ ।। मौसलपर्वके अन्तमें सब प्रकारके गुणोंवाला भोजन जिमाये तथा गन्ध और मालाओंसे ब्राह्मणोंका पूजन करे, महाप्रस्थानिकपर्वके अन्तमें तैसा ही सब प्रकारके गुणोंवाला।७०और स्वर्गपर्वके।अन्तमें भी ब्राह्मणोंको तैसेही हविष्यका भोजन करावे,हरिवंशकी समाप्तिके समय-एकहजार ब्राह्मणों

द्विजान् ॥ ७१ ॥ गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ॥ ७२ ॥ प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः । सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ ७३ ॥ हरिवंशे पर्वणि तथा पायसं तत्र भोजयेत् । पारणे पारणे राजन् यथावद्भरतर्षभ ॥ ७४ ॥ समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः । शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृताः ॥७५॥ शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः । अर्चयेत यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥ संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः सुसमाहितः । भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ॥ ७७ ॥ हिरण्यं च सुवर्णं च दक्षिणामथ दापयेत् । सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥ तदर्धं

भोजन करावे ॥ ७१ ॥ हरएक ब्राह्मणको सुवर्णके एक सिक्केके साथ एक गौ देय और हे राजन् ! दरिद्र भी इससे आधा देय७२चतुर मनुष्य हरएक पर्वकी समाप्तिके समय वाचकको एक सोनेके सिक्केके साथ कोई एक पुस्तक देय ॥ ७३ ॥ जब हरिवंश-पर्वकी समाप्ति होय उस समय ब्राह्मणोंको खीरका भोजन करावे, हे भरतसत्तम राजन् ! हरएक पारण पर उचित रीतिसे भोजन करावे७४शास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला पवित्र पुरुष सब संहिताओंको समाप्त करके, रेशमी वस्त्रमें लपेट शुभ स्थानमें पधरावे ॥ ७५ ॥ स्वयं श्वेत वस्त्र धारण कर, माला पहरकर,पवित्र और आभूषणोंसे सजाहुआ होकर गन्ध माला आदिसे उनका नियमानुसार अलग२ पूजन करे ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! नियमसे रहता हुआ उन संहिताओंकी बड़ी सावधानीसे पूजा करे, फिर भोजनके पदार्थ मालायें, पीनेके पदार्थ,भाँति२के पवित्र कामनायें पूर्ण करनेवाले पदार्थोंके,सहित हिरण्यकी और सुवर्णकी दक्षिणायें देय, नियमोंका पालन करनेवाला सब अवसरों पर तीन

पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् । यद्यदेवात्मनोऽभीष्टं तत्तद् देयं द्विजात्मने ॥ ७९ ॥ सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः । देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८० ॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् । तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८१ ॥ अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ८२ वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः । भविष्यं श्रावयेद् विद्वान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८३ ॥ भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत्संप्रदापयेत् । वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८४ ॥ वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा । ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ८५ ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ । सर्वकामैर्यथान्यायं साधु-

पल (बारह तोला) सोना दान करे ॥ ७७-७८ ॥ धनका लोभ छोड़कर उसका आधा या चौथाई सुवर्ण देय ॥ ७९ ॥ अपने कथावाचक गुरुको भक्तिसे सदा सन्तुष्ट करे, सकल देवताओंका तथा नर नारायणका कीर्त्तन करे ॥ ८० ॥ फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गन्ध और मालाओंसे सजाकर कामना पूरी करने वाले भाँति २ के छोटे और बड़े दान देकर पूजे ॥ ८१ ॥ ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र—यज्ञका फल मिलता है, तथा हर पर्व पर एक २ यज्ञका फल मिलता है ॥ ८२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! कथावाचक अक्षर, पद और स्वरको स्पष्ट कहने वाला होना चाहिये तथा विद्वान् होना चाहिये हे भरतसत्तम ! वही भारत सुना सकता है ॥ ८३ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा कर उनको यथाविधि दान देनेके अनन्तर हे भरतसत्तम ! अच्छे प्रकारसे सजाये हुए वाचकको भोजन करावे ॥ ८४ ॥ कथा बाँचनेवाले जब अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं तो उनको उत्तम और पवित्र आनन्द होता है, ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होने पर सब देवता

भिश्च पृथग्विधैः ॥८६॥ इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदाम्वर । श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८७ ॥ भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम । सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ८८ ॥ भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् । भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ८९ ॥ भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः । भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ९० भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ । भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९१ ॥ महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् । ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन्नावसीदति ॥ ९२ ॥ वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ । आदौ चान्ते च मध्ये च

प्रसन्न होजाते हैं ॥ ८५ ॥ हे भरतसत्तम ! नियमानुसार सब कामनाओंसे और अच्छे प्रकार भाँतिरकी विधियोंसे ब्राह्मणोंके वरण करनेका काम करे॥८६॥ हे नरश्रेष्ठ ! तूने जो मुझसे बूझा था यह वही विधि मैंने तुझे सुनादी है, यह विधि मनुष्यको श्रद्धा के साथ करनी चाहिये८७हे राजाओंमें श्रेष्ठ राजन्! अपना श्रेय चाहने वालेको भारतका श्रवण करनेमें तथा इसका पारण करनेमें सदा यत्न करना चाहिये॥८८॥भारतको नित्य सुने भारतका खूब कीर्त्तन करे,जिसके घरमें भारत होता है विजय उसके हाथमें है८९ भारत परमपुण्य देनेवाला है, भारतमें भाँतिरकी कथायें हैं,देवता भारतकी सेवा करते हैं, भारत ही परम पद है ॥९०॥ हेभरतसत्तम ! सब शास्त्रोंमें भारत उत्तम शास्त्र है, भारतसे मोक्ष मिलती है यह तत्त्व मैं तुझसे कहता हूँ ॥ ९१ ॥ जो पुरुष इस महाभारत आख्यानकी, पृथिवीकी, गौकी, सरस्वतीकी,ब्राह्मणों की और केशवकी कीर्त्तिको गाता है उसको पछताना नहीं पडता है ॥९२॥ हे भरतसत्तम ! वेदमें, रामायणमें और पवित्र भारत में आदि, मध्य और अन्तमें श्रीहरिकी कीर्त्ति गाथी है ॥९३॥

हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९३ ॥ यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च
सनातनाः । तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९४ ॥ एत-
त्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् । एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमि-
च्छता ॥९५॥ कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् । तत्सर्वं
नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९६ ॥ अष्टादशपुराणानां
श्रवणाद्यत् फलं भवेत्। तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः९७
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः । स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः
श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ९८ ॥ दक्षिणा चात्र देया वै निष्कं
पञ्चसुवर्णकम् । वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ९९
स्वर्णशृङ्गी च कपिला सवत्सा वस्त्रसंवृता । वाचकाय च दद्या हि

जिसमें विष्णुकी दिव्य कथायें तथा सनातन श्रुतियें गायी हैं उस (भारत) का इस लोकमें परम पदकी चाहनावालेको श्रवण करना चाहिये ॥९४। यह परम पवित्र है, यह धर्मका निदर्शन (नमूना) है और यह सकल गुणोंसे युक्त है, ऐश्वर्य चाहनेवाले को इसका श्रवण करना चाहिये॥९५॥जैसे सूर्यका उदय होने पर अन्धकारका नाश होजाता है, ऐसे ही कायाका, वाणीका और मनका किया हुआ जो कुछ भी कर्म होता है वह सब भारतके श्रवणसे नष्ट होजाता है ॥ ९६ ॥ अठारह पुराणोंको सुननेसे जो फल मिलता है वही फल इस महाभारतके श्रवणसे विष्णुके भक्त को मिलता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ९७ ॥ स्त्रियोंको तथा पुरुषोंको इस महाभारतके श्रवणसे विष्णु भगवान्का धाम मिलता है, इसलिये पुत्रकी कामनावाली स्त्रियोंको इस विष्णु भगवान्के यशकी कथाको सुनना चाहिये ॥ ९८ ॥ और ऊपर कहे हुए फलकी इच्छा रखनेवालेको (भारतकी कथा सुनकर) वाचकको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये तथा सोनेके पाँच सिक्के दानकरके देने चाहियें९९अपने आत्माका कल्याण चाहने

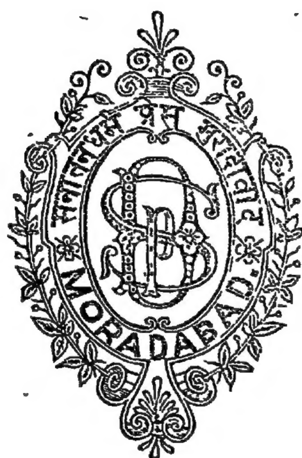
आत्मनः श्रेय इच्छता ॥ १०० ॥ अलङ्कारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ । कर्णस्याभरणं दद्याद्धनं चैव विशेषतः ॥ १०१ ॥ भूमिदानं समादद्याद्वाचकाय नराधिप । भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ १०२ ॥ शृणोति श्रावयेद्वापि सततं चैव यो नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ १०३ ॥ पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् । आत्मानं स्वसुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥ १०४ ॥ दर्शांशश्चैव होमोऽपि कर्तव्योऽत्र नराधिप । इदं मया तवाग्रे च प्रोक्तं सर्वं नरर्षभ ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां हरिवंशपर्वणि भारतश्रवणविधिनामकोऽध्यायः समाप्तः

* हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः *

वालेको, जिसके सींग सोनेसे मढे हों और जिसके नीचे बछड़ा हो ऐसी झूल ओढेहुए कपिला गौ वाचकको देनी चाहिये १०० हे भरतसत्तम ! हाथोंके गहने, कानोंके गहने और विशेषकर धन दान करके देय ॥ १०१ ॥ हे राजन् ! कथावाचकको भूमिका दान देय भूमिदानकी समान न दूसरा दान हुआ है न होगा ॥ १०२ ॥ जो मनुष्य निरन्तर भारतका श्रवण करता है और कराता है वह सब पापोंसे पूर्ण मुक्त होकर विष्णु भगवान्के धामको पाता है १०३ हे भरतसत्तम ! वह अपनी ग्यारवीं पीढी तकके पितरोंका, अपना अपने पुत्रोंका तथा स्त्रियोंका उद्धार करता है ॥ १०४ ॥ और हे राजन् ! इस भारतसंहिताको पूरी बाँचलेनेके अनन्तर दशांश होम भी करना चाहिये, हे नरसत्तम ! यह सब मैंने तुम्हें सुनादिया ॥ १०५ ॥

॥ भारतश्रवणफलाध्याय समाप्त ॥


सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद
MORADABAD.